Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

।। कोबातीर्थमंडन श्री महावीरस्वामिने नमः ।।

।। अनंतलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामिने नमः ।।

।। गणधर भगवंत श्री सुधर्मास्वामिने नमः ।।

।। योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

।। चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

पुनितप्रेरणा व आशीर्वाद

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

जैन मुद्रित ग्रंथ स्केनिंग प्रकल्प

ग्रंथांक : १

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-३८२००७ (गुजरात)
(079) 23276252, 23276204
फेक्स : 23276249
Websiet : www.kobatirth.org
Email : Kendra@kobatirth.org

शहर शाखा

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
शहर शाखा
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
त्रण बंगला, टोलकनगर
परिवार डाइनिंग हॉल की गली में
पालडी, अहमदाबाद – ३८०००७
(079) 26582355

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साङ्ख्यदर्शनम् ।

महर्षि-श्रीकपिल-प्रणीतम् ।

विज्ञानभिक्षु-विरचित-भाष्यसहितम् ।

पण्डितकुलपतिना

वि, ए उपाधिधारिणा

श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्य्येण

संस्कृतं प्रकाशितञ्च ।

द्वितीयसंस्करणम् ।

कलिकातानगरे

सरस्वतीयन्त्रे

मुद्रितम् ।

आ श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा

आ. क्र. १८८३

প্রকাশক শ্রীজীবানন্দবিদ্যাসাগর বি, এ,

২ নং রমানাথমজুমদারের ষ্ট্রীট্ কলিকাতা।

প্রিণ্টর শ্রীক্ষেত্রমোহনমুখোপাধ্যায়

৫৫ নং আমৃহাষ্ট ষ্ট্রীট্ কলিকাতা।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पण्डितकुलपतिः
श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्य्य बि, ए,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एतानि मुद्रितसंस्कृतपुस्तकानि ।

१ सारस्वत व्याकरणम्	२
२ अष्टकम् पाणिनीयम्	॥०
३ उणादिसूत्रम् सटीक	२
४ कविकल्पद्रुम (धातुपा:)	।०
५ कलापव्याकरणं वा कातन्त्र	२
६ धातुरूपादर्श:	१॥०
७ परिभाषेन्दुशेखर सटीक	१
८ मुग्धबोधव्याकरणम् सटीक	१॥०
९ वाक्यमञ्जरी (बङ्गाक्षरै:)	।०
१० वैयाकरणभूषणसार	॥।०
११ लघुकौमुदीव्याकरणम्	॥०
१२ लिङ्गानुशासनं सटीक	।०
१३ शब्दरूपादर्श:	॥०
१४ शब्दार्थरत्नम्	॥।०
१५ सारस्वतव्याकरण सटीक पूर्वार्द्धम्	१
१६ सारस्वतव्याकरणं सटीक उत्तरार्द्धं	२
१७ सिद्धान्तकौमुदी सरलासहिता	१०
१८ ऋतुसंहार काव्य सटीक	।/
१९ काव्यसंग्रह मूलमात्र	५
२० काव्यसंग्रह सटीक प्रथमभाग:	३
२१ काव्यसंग्रह सटीक द्वितीयभाग:	२
२२ काव्यसंग्रह सटीक तृतीयभाग:	२
२३ किरातार्जुनीयकाव्य सटीक	१॥०
२४ कुमारसम्भवकाव्यपूर्वखण्ड सटीक	॥०
२५ कुमारसम्भवकाव्य उत्तरखण्डसटीक	॥
२६ गीतगोविन्द काव्य सटीक	॥०
२७ चन्द्रशेखरचम्पू काव्य	३
२८ नलोदय काव्य सटीक	।/
२९ नैषधचरितम् काव्य सम्पूर्ण सटीक	५
३० नैषधकाव्य नवमसर्गपर्य्यन्त सटीक	२॥
३१ पुष्पबाणविलास काव्य सटीक	॥०
३२ विद्वन्मोदतरङ्गिणी (चम्पू काव्य)	॥०
३३ भट्टिकाव्य टीकाद्वयसहित	२
३४ भामिनीविलासकाव्य सटीक	॥०
३५ भामिनीविलास संक्षिप्तटीकासह	।०
३६ चम्पू रामायणम् सटीक	१
३७ (चम्पू रामायणम्) भोजचम्पू	॥०
३८ शतकावलि:	॥०
३९ माधवचम्पू काव्य	।०
४० मेघदूत मल्लिनाथकृत टीकासहित	।/
४१ मेघदूत सटीक सुलभमूल्यकम्	/०
४२ रघुवंश काव्य सटीक	१॥०
४३ रघुवंश मूलमात्र ७,८,१२ सर्गा:	/०
४४ राजप्रशस्ति सटीक	/
४५ शिशुपालवधकाव्य सटीक (माघ)	२
४६ गद्यकथासरित्सागर सम्पूर्ण	६
४७ कादम्बरी विस्तृतव्याख्यासहिता	३
४८ दशकुमारचरितगद्यकाव्य सटीक	१
४९ द्वात्रिंशत्पुत्तलिकासिंहासन	१
५० पञ्चतन्त्रम् विष्णुशर्मकृत सटीक	१
५१ बहुविवाहवाद	।०
५२ वासवदत्ता गद्यकाव्य सटीक	१
५३ वेतालपञ्चविंशति: (सरलगद्य)	॥।०
५४ शङ्करविजय	१॥०
५५ भोजप्रबन्ध सरल गद्य	॥०
५६ हर्षचरित सटीक बाणभट्टकृत	२॥०
५७ हर्षचरितबाणभट्टकृतगद्य	१
५८ संस्कृतशिक्षामञ्जरी प्रथमभाग:	/
६९ संस्कृतशिक्षामञ्जरी द्वितीयभाग:	।०
६० संस्कृतशिक्षामञ्जरी तृतीयभाग:	॥०
६१ संस्कृतशिक्षामञ्जरी चतुर्थभाग:	।०
६२ हितोपदेश सटीक	॥।०
६३ अमरकोष	॥०
६४ वाचस्पत्यम् (बृहदभिधान)	१००
६५ मेदिनीकोष	१
६६ शब्दस्तोममहानिधि:	८
६७ अनर्घराघवनाटक सटीक [मुरारि]	२
६८ अनर्घराघवनाटक मूलमात्र	१

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६९ उत्तररामचरितनाटक सटीक १
७० कर्पूरमञ्जरीनाटिका सटीक ॥०
७१ चण्डकौशिकनाटक सटीक ॥०
७२ चैतन्यचन्द्रोदयनाटक सटीक २
७३ धनञ्जयविजयनाटक सटीक ।०
७४ नागानन्दनाटक सटीक ॥०
७५ नागानन्दनाटक मूल ।०
७६ प्रबोधचन्द्रोदयनाटक सटीक १
७७ प्रसन्नराघवनाटक जयदेवकृत १
७८ प्रियदर्शिका नाटिका सटीक ॥०
७९ वसन्ततिलक भाण नाटक ।॰
८० बालरामायणनाटक सटीक ३
८१ विक्रमोर्वशी नाटक (सटीक) १
८२ विद्धशालभञ्जिकानाटिका सटीक॥०
८३ वेणीसंहारनाटक सटीक ॥०
८४ मल्लिकामारुतनाटक सटीक २
८५ महानाटक हनुमन्नाटक सटीक १॥
८६ महानाटकम् (हनुमन्नाटकम्) ॥०
८७ महावीरचरितनाटक सटीक १॥०
८८ महावीरचरितनाटक मूलमात्र ॥०
८९ मालतीमाधवनाटक सटीक ॥०
९० मालविकाग्निमित्रनाटक सटीक १
९१ मुद्राराक्षसनाटक सटीक १
९२ मृच्छकटिकनाटक सटीक १॥०
९३ रत्नावलीनाटिका सटीक ॥०
९४ शकुन्तलानाटक सटीक १
९५ काव्यप्रकाश अलङ्कार सटीक ४
९६ काव्यादर्श सटीक (अलङ्कार) १
९७ काव्यदीपिका अलङ्कार सटीक ॥०
९८ कुवलयानन्द अलङ्कार सटीक २
९९ चन्द्रालोक प्राचीन अलङ्कार ।०
१०० दशरूपकम् (अलङ्कार) १
१०१ साहित्यदर्पण सटीक अलङ्कार १॥
१०२ साहित्यदर्पणम् (मूलमात्र) ॥०

१०३ काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिवामनकृत ॥०
१०४ वाग्भटालङ्कार ।०
१०५ सरस्वतीकण्ठाभरण सटीक ३
१०६ सङ्गीतपारिजात[सङ्गीतशास्त्र]१॥०
१०७ छन्दोमञ्जरी वृत्तरत्नाकर सटीक ॥
१०८ श्रुतबोध: (छन्दोग्रन्थ) सटीक ॰
१०९ पिङ्गलछन्द: शास्त्र वृत्तिसहित १॥
११० महानिर्वाणतन्त्रम् सटीक ४
१११ शारदातिलक तन्त्रम् ३
११२ मन्त्रमहोदधि तन्त्र सटीक ३
११३ रुद्रयामल तन्त्र ३
११४ इन्द्रजालविद्यासंग्रह: ३
११५ कामन्दकी नीतिसार: ॥०
११६ चाणक्यशतकम् सटीक ॰
११७ शुक्रनीतिसार: सटीक २
११८ गयाश्राद्धादिपद्धति: १
११९ तुलादानादिपद्धति: (बङ्गाक्षरै:)४
१२० धर्मशास्त्रसंग्रह: १०
१२१ वीरमित्रोदय (स्मृतिशास्त्र) ५
१२२ मनुसंहिता कुल्लूकभट्टकृत टीका-
सहित ३
१२३ वेदान्तदर्शन सभाष्य सटीक ६
१२४ भामती(वेदान्त)वाचस्पतिमिश्रकृत
१२५ वेदान्तपरिभाषा ॥०
१२६ वेदान्तसार सटीक ॥०
१२७ विवेकचूडामणि वेदान्त ।॰
१२८ पञ्चदशी (सटीक) वेदान्त १॥०
१२९ सिद्धान्तबिन्दुसार: (वेदान्त) ॥०
१३० पूर्णप्रज्ञदर्शनम् सभाष्य ॥०
१३१ साङ्ख्यदर्शन (भाष्यसहित) २
१३२ सांख्यसूत्र अनिरुद्धवृत्तिसहित ॥०
१३३ साङ्ख्यसार ।०
१३४ सांख्यतत्त्वकौमुदी सटीक २
१३५ सांख्यकारिका गौड़पादभाष्य ॥०

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१३६ मीमांसादर्शनम् भाष्यसहित १२
१३७ मीमांसापरिभाषा ।०
१३८ शाण्डिल्यसूत्र सभाष्य ॥०
१३९ जैमिनीय (न्यायमालाविस्तर:) ६
१४० अर्थसंग्रह (लौगाक्षिमीमांसा) ।०
१४१ न्यायदर्शन सभाष्य सवृत्ति २॥०
१४२ भाषापरिच्छेद: मुक्तावली ॥०
१४३ भाषापरिच्छेदमुक्तावली दिनकरी१॥
१४४ शब्दशक्तिप्रकाशिका (न्याय) ॥।०
१४५ कुसुमाञ्जलि सटीक (न्याय) ।०
१४६ उपमानचिन्तामणि: /
१४७ आत्मतत्त्वविवेक (बौद्धाधिकार) २
१४८ अनुमानचिन्तामणि: सटीक ४॥
१४९ तर्कामृत (जगदीशकृत) न्याय ।०
१५० तर्कसंग्रह इं अनुवादसहित ॥०
१५१ पातञ्जलदर्शन (सभाष्य सटीक) २
१५२ पातञ्जलदर्शन भोजवृत्तिसहित १
१५३ वैशेषिकदर्शनम् सटीक ३
१५४ सर्वदर्शनसंग्रह: [दर्शनशास्त्र] १
१५५ आथर्वणोपनिषद् सभाष्य ३
१५६ आरण्यसंहिता सभाष्य ॥०
१५७ ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डूक्य
उपनिषद् (सटीक सभाष्य) ३
१५८ गायत्री व्याख्या ॥०
१५९ गोपथब्राह्मण (अथर्ववेदस्य) १
१६० छान्दोग्य उपनिषद् सटीक सभाष्य३
१६१ तैत्तिरीय ऐतरेय श्वेताश्वतर सभाष्य२
१६२ दैवत तथा षड्विंशब्राह्मणसभाष्य२
१६३ निरुक्त सभाष्य सटीक १२
१६४ नृसिंहतापनी सभाष्य २
१६५ बृहदारण्यक सटीक सभाष्य ७
१६६ मुक्तिकोपनिषत् /
१६७ शुक्लयजुर्वेदसंहिता सभाष्य ४

१६८ शुक्लयजुर्वेदस्य प्रातिशाख्य
सभाष्य ३
१६९ सामवेदसंहिता सभाष्य ४
१७० अग्निपुराणम् २
१७१ अध्यात्मरामायणम् सटीक २
१७२ कल्किपुराणम् १
१७३ गरुड़पुराणम् २
१७४ सटीक वाल्मीकिरामायण
बालकाण्डम् १
१७५ विष्णुपुराणम् सटीक ३
१७६ ब्रह्मवैवर्त्तपुराण सम्पूर्ण ४
१७७ मत्स्यपुराणम् २
१७८ मार्कण्डेयपुराणम् १॥०
१७९ लिङ्गपुराणम् २
१८० श्रीमद्भगवद्गीता सभाष्य सटीक ४
१८१ अष्टाङ्गहृदय (वाग्भट) वैद्यक ३
१८२ चक्रदत्त (वैद्यक) १॥०
१८३ चरकसंहिता (वैद्यक) सम्पूर्ण ६
१८४ माधवनिदान सटीक १॥०
१८५ भावप्रकाश (वैद्यक) ५
१८६ मदनपालनिर्घण्टु: (वैद्यक) ॥०
१८७ रसेन्द्रचिन्तामणितथारसरत्नाकर६
१८८ शार्ङ्गधरसंहिता (वैद्यक) १
१८९ सुश्रुतसंहिता सटीक (वैद्यक) १०
१९० सुश्रुतसंहिता मूलमात्र (वैद्यक) ४
१९१ चिकित्सासारसंग्रह वङ्गसेनकृत ५
१९२ गणिताध्याय: भास्कराचार्य्यकृत १
१९३ गोलाध्याय: भास्कराचार्य्यकृत ॥०
१९४ बृहत्संहिता वा वाराहीसंहिता २
१९५ भावकुतूहल (ज्योतिष) ॥०
१९६ लीलावती भास्कराचार्य्यरचित ॥०
१९७ वीजगणित भास्कराचार्य्यरचित ॥०
१९८ सूर्य्यसिद्धान्त सटीक १

कलिकाता संस्कृतविद्यामन्दिरे बि, ए, उपाधिधारिण:
श्रीजीवानन्दविद्यासागर-भट्टाचार्य्यस्य सकाशात् लभ्यानि।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१९९	दायभाग जीमूतवाहनकृत स्मृतिशास्त्र श्रीकृष्ण-तर्कालङ्कारकृत व्याख्यासहित	३
२००	अश्वशास्त्र तथा अश्ववैद्यक जयदत्तकृत	१॥०
२०१	आश्वलायन गृह्यसूत्र सभाष्य	३
२०२	अष्टाविंशति तत्त्व स्मृतिशास्त्र रघुनन्दनकृत	५
२०३	प्रायश्चित्तविवेक शूलपाणिकृत स्मृतिशास्त्र सटीक	३
२०४	गोभिल गृह्यसूत्र	५
२०५	प्राणतोषिणी तन्त्रशास्त्र	८
२०६	कविकल्पलता	१
२०७	विवादरत्नाकर	२॥/०
२०८	तैत्तिरीय प्रातिशाख्य	१৶०
२०९	दत्तकचन्द्रिका दत्तकमीमांसा सटीक	१।||०
२१०	मिताक्षरा (याज्ञवल्क्यस्मृ त)	५
२११	तत्त्वचिन्तामणिः प्रत्यक्ष खण्ड	६
२१२	आपस्तम्ब श्रौतसूत्रम्	४॥०
२१३	ऐतरेय आरण्यक [सभाष्य]	१॥৶०
२१४	कूर्मपुराण	३।||०
२१५	देवीभागवतम्	१२
२१६	वाल्मीकि रामायण (सम्पूर्ण सटीक)	१०
२१७	वराहपुराणम्	५
२१८	महाभारतम् सटीकम्	३५
२१९	हरिवंश (सटीक)	१०
२२०	आयुर्वेदविज्ञान १म+२य भाग सम्पूर्ण	४
२२१	भैषज्यरत्नावली	२
२२२	हारीतसंहिता	२
२२३	श्रीमद्भागवतं तथा श्रीधरस्वामिकृत टीकासहित	१२

श्रीजीवानन्द-विद्यासागर बि, ए,

संस्कृत-विद्यामन्दिर।

कलिकाता।

For Private And Personal Use Only

साङ्ख्यदर्शनम्।

एकोऽद्वितीय इति वेदवचांसि पुंसि
सर्वाभिमानविनिवर्त्तनतोऽस्य मुक्त्यै।
वैधर्म्यलक्षणभिदा विरहं वदन्ति
नाखण्डतां ख इव धर्म्मगताविरोधात्॥
तस्य श्रुतस्य मननार्थमथोपदेष्टुं
सद्युक्तिजालमिह साङ्ख्यकृदाविरासीत्।
नारायणः कपिलमूर्त्तिरशेषदुःख-
हानाय जीवनिवहस्य नमोऽस्तु तस्मै॥
नानोपाधिषु यन्नानारूपं भात्यनलार्कवत्।
तत् समं सर्वभूतेषु चित्सामान्यमुपास्महे॥
ईश्वरानीश्वरत्वादि चिदेकरसवस्तुनि।
विमूढा यत्र पश्यन्ति तदस्मि परमं महः॥
कालार्कभक्षितं साङ्ख्यशास्त्रं ज्ञानसुधाकरम्।
कलावशिष्टं भूयोऽपि पूरयिष्ये वचोऽमृतैः॥
चिदचिद्ग्रन्थिभेदेन मोचयिष्ये चितोऽपि च।
साङ्ख्यभाष्यमिषेणास्मात् प्रीयतां मोक्षदो हरिः॥
तत् त्वमेव त्वमेवैतदेवं श्रुतिशतोदितम्।
सर्वात्मनामवैधर्म्यं शास्त्रस्यास्यैव गोचरः॥

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इत्यादिश्रुतिषु परमपुरुषार्थसाधनस्याधनस्यात्मसाक्षात्कारस्य हेतुतया श्रवणादित्रयं विहितम्। तत्र श्रवणादावुपाया-काङ्क्षायां स्मर्य्यते।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः॥

इति। ध्येयो योगशास्त्रप्रकारेणेति शेषः। तत्र श्रुतिभ्यः श्रुतेषु पुरुषार्थतद्धेतुज्ञानतद्विषयात्मस्वरूपादिषु श्रुत्यविरोधिनीरुपपत्तीः षड्ध्यायीरूपेण विवेकशास्त्रेण कपिलमूर्त्तिर्भगवानुपदिदेश। ननु न्यायवैशेषिकाभ्यामप्येतेष्वर्थेषु न्यायः प्रदर्शित इति ताभ्यामस्य गतार्थत्वं सगुणनिर्गुणत्वादिविरुद्धरूपैरात्मसाधकतया तद्युक्तिभिरत्रत्ययुक्तीनां विरोधेनोभयोरपि दुर्घटं च प्रामाण्यमिति। मैवम्। व्यावहारिकपारमार्थिकरूपविषयभेदेन गतार्थत्वविरोधयोरभावात्। न्यायवैशेषिकाभ्यां हि सुखिदुःख्याद्यनुवादतो देहादिमात्रविवेकेनात्मा प्रथमभूमिकायामनुमापितः। एकदा परसूक्ष्मे प्रवेशासम्भवात्। तदीयं च ज्ञानं देहाद्यात्मतानिरसनेन व्यावहारिकं तत्त्वज्ञानं भवत्येव। यथा पुरुषे स्थाणुभ्रमनिरासकतया करचरणादिमत्त्वज्ञानं व्यवहारतस्तत्त्वज्ञानं तद्वत्। अतएव।

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥

इति गीतायां कर्त्तृत्वाभिमानिनस्तार्किकस्याकृत्स्नवित्त्वमेव कृत्स्नवित्सांख्यापेक्षयोक्तम्। न तु सर्वथैवाज्ञत्वमिति। तथा तदीयमपि ज्ञानमपरवैराग्यद्वारा परम्परया मोक्षसाधनं भवत्येवेति। तज्ज्ञानापेक्षयापि च सांख्यज्ञानमेव पारमार्थिकं परवैराग्यद्वारा साक्षान्मोक्षसाधनं च भवति। उक्तगीतावाक्येनात्माकर्त्तृत्वावित्त्वस्यैव कृत्स्नावित्त्वसिद्धेः। तीर्णो हि तदा भवति हृदयस्य शोकान् कामादिकं मन एव मन्यमानः सन्नुभौ लोकावनुसञ्चरति ध्यायतीव लेलायतीव स यदत्र किञ्चित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवतीत्यादितात्त्विकश्रुतिशतैः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥
निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः।
दुःखाज्ञानमया धर्माः प्रकृतेस्ते तु नात्मनः॥

इत्यादितात्त्विकस्मृतिशतैश्च। न्यायवैशेषिकोक्तज्ञानस्य परमार्थभूमौ बाधितत्वाच्च। न चैतावता न्यायाद्यप्रामाण्यम्। विवक्षितार्थे देहाद्यतिरिकांशे बाधाभावाद् यत्परः शब्दः स शब्दार्थ इति न्यायात्। आत्मनि सुखादिमत्त्वस्य लोकसिद्धतया तत्र प्रमाणान्तरानपेक्षणेन तदंशस्यानुवादत्वान्न शास्त्रतात्पर्य्यविषयत्वमिति। स्यादेतत्। न्यायवैशेषिकाभ्यामत्राविरोधो भवतु। ब्रह्ममीमांसायोगाभ्यां तु विरोधोऽस्त्येव। ताभ्यां नित्येश्वरसाधनात्। अत्र चेश्वरस्य प्रतिषिध्यमानत्वात्। न चात्रापि व्यावहारिकपारमार्थिकभेदेन सेश्वरनिरीश्वरवादयोरविरोधोऽस्तु सेश्वरवादस्योपासनापरत्वसम्भवादिति वाच्यम्। विनिगमकाभावात्। ईश्वरो हि दुर्ज्ञेय इति निरीश्वरत्वमपि लोकव्यवहारसिद्धमैश्वर्य्यवैराग्यायानुवदितुं शक्यत आत्मनः सगुणत्वमिव न तु क्वापि श्रुत्यादावीश्वरः स्फुटं प्रतिषिध्यते येन सेश्वरवादस्यैव व्यावहारिकत्वमवधार्य्येतेति। अत्रोच्यते। अत्रापि व्यावहारिकपारमार्थिकभावो भवति।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।

इत्यादिशास्त्रैर्निरीश्वरवादस्य निन्दितत्वात्। अस्मिन्नेव शास्त्रे व्यावहारिकस्यैवेश्वरप्रतिषेधस्यैश्वर्य्यवैराग्याद्यर्थमनुवादत्वौचित्यात्। यदि हि लौकायतिकमतानुसारेण नित्यैश्वर्य्यं न प्रतिषिध्येत तदा परिपूर्णनित्यनिर्दोषैश्वर्य्यदर्शनेन तत्र चित्तावेशतो विवेकाभ्यासप्रतिबन्धः स्यादिति सांख्याचार्य्याणामाशयः। नेश्वरवादस्य न क्वापि निन्दादिकमस्ति। येनो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मासनादिपरतया तत् शास्त्रं सङ्कोच्येत। यत् तु।

नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्।
अत्र वः संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम्॥

इत्यादि वाक्यम्। तद्विवेकांश एव सांख्यज्ञानस्य दर्शनान्तरेभ्य उत्कर्षं प्रतिपादयति न त्वीश्वरप्रतिषेधांशेऽपि। तथा पराशराद्यखिलशिष्टसंवादादपि सेश्वरवादस्यैव पारमार्थिकत्वमवधार्य्यते। अपि च।

अक्षपादप्रणीते च काणादे सांख्ययोगयोः।
त्याज्यः श्रुतिविरुद्धोऽंशः श्रुत्येकशरणैर्नृभिः॥
जैमिनीये च वैयासे विरुद्धांशो न कश्चन।
श्रुत्या वेदार्थविज्ञाने श्रुतिपारं गतौ हि तौ॥

इति पराशरोपपुराणादिभ्योऽपि ब्रह्ममीमांसाया ईश्वरांशे बलवत्त्वम्। तथा।

न्यायतन्त्राण्यनेकानि तैस्तैरुक्तानि वादिभिः।
हेत्वागमसदाचारैर्यद्युक्तं तदुपास्यताम्॥

इति मोक्षधर्मवाक्यादपि पराशराद्यखिलशिष्टव्यवहारेण ब्रह्ममीमांसान्यायवैशेषिकाद्युक्त ईश्वरसाधकन्याय एव ग्राह्यो बलवत्त्वात्। तथा।

यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः सांख्या अपि महेश्वरम्।
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज॥

इत्यादिकौर्मादिवाक्यैः सांख्यानामीश्वराज्ञानस्यैव नारायणादिना प्रोक्तत्वाच्च। किञ्च ब्रह्ममीमांसाया ईश्वर एव मुख्यो विषय उपक्रमादिभिरवधृतः। तत्रांशे तस्य बाधे शास्त्रस्यैवाप्रामाण्यं स्याद् यत्परः शब्दः स शब्दार्थ इति न्यायात्। सांख्यशास्त्रस्य तु पुरुषार्थतत्साधनप्रकृतिपुरुषविवेकावेव मुख्यो विषय इतीश्वरप्रतिषेधांशबाधेऽपि नाप्रामाण्यं यत्परः शब्दः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

म शब्दार्थ इति न्यायात्। अतः सावकाशतया सांख्यमेवेश्वरप्रतिषेधांशे दुर्बलमिति। न च ब्रह्ममीमांसायामपीश्वर एव मुख्यो विषयो न तु नित्यैश्वर्यमिति वक्तुं शक्यते। स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गरूपपूर्वपक्षस्यानुपपत्त्या नित्यैश्वर्यविशिष्टत्वेनैव ब्रह्ममीमांसाविषयत्वावधारणात्। ब्रह्मशब्दस्य परब्रह्मण्येव मुख्यतया तु अथातः परब्रह्मजिज्ञासेति न सूत्रितमिति। एतेन सांख्यविरोधाद् ब्रह्मयोगदर्शनयोः कार्य्येश्वरपरत्वमपि न शङ्कनीयम्। प्रकृतिस्वातन्त्र्यापत्त्या रचनानुपपत्तेश्च नानुमानमित्यादिब्रह्मसूत्रपरम्परानुपपत्तेश्च। तथा स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदादिति योगसूत्रतदीयव्यासभाष्याभ्यां स्फुटमीशनित्यतावगमाच्चेति। तस्मादभ्युपगमवादप्रौढ़िवादादिनैव सांख्यस्य व्यावहारिकेश्वरप्रतिषेधपरतया ब्रह्ममीमांसायोगाभ्यां सह न विरोधः। अभ्युपगमवादश्च शास्त्रे दृष्टः। यथा विष्णुपुराणे।

एते भिन्नदृशां दैत्य विकल्पाः कथिता मया।
कृत्वाभ्युपगमं तत्र संक्षेपः श्रूयतां मम॥

इति। अस्तु वा पापिनां ज्ञानप्रतिबन्धार्थमास्तिकदर्शनेष्वप्यंशतः श्रुतिविरुद्धार्थव्यवस्थापनम्। तेषु तेष्वंशेष्वप्रामाण्यं च। श्रुतिस्मृत्यविरुद्धेषु तु मुख्यविषयेषु प्रामाण्यमस्त्येव। अत एव पद्मपुराणे ब्रह्मयोगदर्शनातिरिक्तानां दर्शनानां निन्दाप्युपपद्यते। यथा तत्र पार्वतीं प्रतीश्वरवाक्यम्।

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्।
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि॥
प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः संप्रोक्तानि ततः परम्॥
कणादेन तु सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गौतमेन तथा न्यायं सांख्यन्तु कपिलेन वै ॥
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमयार्थतः।
निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम्।
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम्।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा ॥
बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम्।
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च ॥
मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा।
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयल्लोकगर्हितम् ॥
कर्मस्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते।
सर्वकर्मपरिभ्रंशान्नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते ॥
परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते।
ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया ॥
सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं कलौ युगे।
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ॥
मयैव कथितं देवि! जगतां नाशकारणात् ॥

इति। अधिकं तु ब्रह्ममीमांसाभाष्ये प्रपञ्चितमस्माभिरिति। तस्मादास्तिकशास्त्रस्य न कस्याप्यप्रामाण्यं विरोधो वा। स्वस्वविषयेषु सर्वेषामबाधात्। अविरोधाच्चेति। नन्वेवं पुरुषबहुत्वांशेऽप्यस्य शास्त्रस्याभ्युपगमवादत्वं स्यात्। न स्यात्। अविरोधात्। ब्रह्ममीमांसायामप्यंशो नानाव्यपदेशादित्यादिसूत्रजातैर्जीवात्मबहुत्वस्यैव निर्णयात्। सांख्यसिद्धपुरुषाणामात्मत्वं तु ब्रह्ममीमांसया बाध्यत एव। आत्मेति तूपयन्तीति तत्सूत्रेण परमात्मन एव परमार्थभूमावात्मत्वावधारणात्। तथापि च सांख्यस्य नाप्रामाण्यम्। व्यावहारिकात्मनो जीवस्येतरविवेकज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वे विवक्षितार्थे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बाधाभावात्। एतेन श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धयोर्नानात्मैकात्मत्वयोर्व्यावहारिकपारमार्थिकभेदेनाविरोध इति ब्रह्ममीमांसायां प्रपञ्चितमस्माभिरिति दिक्। नन्वेवमपि तत्त्वसमासाख्यसूत्रैः सहास्याः षड्ध्याय्याः पौनरुक्त्यमिति चेत्। मैवम्। संक्षेपविस्तररूपेणोभयोरप्यपौनरुक्त्यात्। अत एवास्याः षड्ध्याय्या योगदर्शनस्येव सांख्यप्रवचनसंज्ञा युक्ता। तत्त्वसमासाख्यं हि यत् संक्षिप्तं सांख्यदर्शनं तस्यैव प्रकर्षेणास्यां निर्वचनमिति। विशेषस्त्वयं यत् षड्ध्याय्यां तत्त्वसमासाख्योक्तार्थविस्तरमात्रं योगदर्शने त्वाभ्यामभ्युपगमवादप्रतिषिद्धस्यैवेश्वरस्य निरूपणेन न्यूनतापरिहारोऽपीति। अस्य च सांख्यसंज्ञा सान्वया।

संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन सांख्याः प्रकीर्त्तिताः॥

इत्यादिभ्यो भारतादिवाक्येभ्यः। संख्या सम्यग्विवेकेनात्मकथनमित्यर्थः। अतः सांख्यशब्दस्य योगरूढतया तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यमित्यादिश्रुतिषु।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।

इत्यादिस्मृतिषु च। सांख्यशब्देन सांख्यशास्त्रमेव ग्राह्यम्। न पुनरर्थान्तरं कल्पनीयमिति। तदिदं मोक्षशास्त्रं चिकित्साशास्त्रवच्चतुर्व्यूहम्। यथा हि रोग आरोग्यं रोगनिदानं भैषज्यमिति चत्वारो व्यूहाः समूहाश्चिकित्साशास्त्रस्य प्रतिपाद्यास्तथैव हेयं हानं हेयहेतुर्हानोपायश्चेति चत्वारो व्यूहा मोक्षशास्त्रस्य प्रतिपाद्या भवन्ति। मुमुक्षुभिर्जिज्ञासितत्वात्। तत्र त्रिविधं दुःखं हेयम्। तदत्यन्तनिवृत्तिर्हानम्। प्रकृतिपुरुषसंयोगद्वारा चाविवेको हेयहेतुः। विवेकख्यातिस्तु हानोपाय इति। व्यूहशब्देन चैषामुपकरणसंग्रहः। तत्र चादौ फलत्वेनाभ्यर्हितं हानं तत्प्रतियोगिविधयैव च हेयं

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रतिपादयिष्यन् शास्त्रकारः शिष्यावधानाय शास्त्रारम्भं प्रतिजानीते।

प्रथमोऽध्यायः।

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः॥१॥

अथशब्दोऽयमुच्चारणमात्रेण मङ्गलरूपः। अतएव मङ्गलाचरणं शिष्टाचारादिति स्वयमेव पञ्चमाध्याये वक्ष्यति। अर्थस्त्वत्राथशब्दस्याधिकार एव। प्रश्नानन्तर्य्यादीनां पुरुषार्थेन सहान्वयासम्भवात्। ज्ञानाद्यानन्तर्य्यस्य च सूत्रैरेव वक्ष्यमाणतया तत्प्रतिपादनवैयर्थ्यात्। अधिकारभिन्नार्थत्वे शास्त्रारम्भप्रतिज्ञाद्यलाभप्रसङ्गाच्च। तस्मात्पुरुषार्थस्योपक्रमोपसंहारदर्शनादधिकारार्थत्वमेवोचितम्। तदुच्छित्तिः पुरुषार्थ इत्युपसंहारो भविष्यतीति। अधिकारश्चाधिक्येन प्राधान्येनारम्भणम्। आरम्भश्च यद्यपि साक्षाच्छास्त्रस्यैव तथापि तद्द्वारा शास्त्रार्थतद्विचारयोरपीति। तथा च साधनाद्युपकरणसहितो यथोक्तपुरुषार्थोऽधिकृतः प्राधान्येन निरूपयितुमस्माभिः प्रारब्ध इति सूत्रवाक्यार्थः। त्रिविधमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च दुःखम्। तत्रात्मानं स्वसङ्घातमधिकृत्य प्रवृत्तमित्याध्यात्मिकम्। शारीरं मानसं च। तत्र शारीरं व्याध्याद्युत्थम्। तथा भूतानि प्राणिनोऽधिकृत्य प्रवृत्तमित्याधिभौतिकम्। व्याघ्रचोराद्युत्थम्। देवानग्निवाय्वादीनधिकृत्य प्रवृत्तमित्याधिदैविकम्। दाहशीताद्युत्थमिति भावः। यद्यपि सर्वमेव दुःखं मानसं तथापि मनोमात्रजन्यत्वाजन्य-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वाभ्यां मानसत्वामानसत्वविशेषः। एषां त्रिविधदुःखानां यात्यन्तनिवृत्तिः स्थूलसूक्ष्मसाधारण्येन निःशेषतो निवृत्तिः। सोऽत्यन्तः परमः पुरुषार्थः पुरुषाणां बुद्धेरिष्ट इत्यवान्तरवाक्यार्थः। तत्र स्थूलं दुःखं वर्त्तमानावस्थं तच्च द्वितीयक्षणादुपरि स्वयमेव नङ्क्ष्यति। अतो न तत्र ज्ञानापेक्षा। अतीतं तु प्रागेव नष्टमिति न तत्र साधनापेक्षेति परिशेषादनागतावस्थसूक्ष्मदुःखनिवृत्तिरेव पुरुषार्थतया प्रकृते पर्य्यवस्यति। तथा च योगसूत्रम्। हेयं दुःखमनागतमिति। निवृत्तिश्च न नाशोऽपित्वतीतावस्था ध्वंसप्रागभावयोरतीतानागतावस्थास्वरूपत्वात् सत्कार्य्यवादिभिरभावानङ्गीकारात्। ननु कदाचिदप्यवर्त्तमानमनागतं दुःखमप्रामाणिकम्। अतः खपुष्पनिवृत्तिवत् तन्निवृत्तेर्न पुरुषार्थत्वं युक्तमिति। मैवम्। सर्व्वं हि स्वस्वकार्य्यजननशक्तियावद्व्यस्थायिनीति पातञ्जले सिद्धं दाहादिशक्तिशून्यस्याग्न्यादेः क्वाप्यदर्शनात्। सा च शक्तिरनागतावस्थतत्तत्कार्य्यरूपा। इयमेव चोपादानकारणस्वरूपयोग्यतेत्यपि गीयते। अतो यावच्चित्तसत्ता तावदेवानागतदुःखसत्तानुमीयते तन्निवृत्तिश्च पुरुषार्थ इति। जीवन्मुक्तिदशायां च प्रारब्धकर्मफलातिरिक्तानां दुःखानामनागतावस्थानां वीजाख्यानां दाहो विदेहकैवल्ये तु चित्तेन सह विनाश इत्यवान्तरविशेषः। वीजदाहश्चाविद्यासहकार्य्युच्छेदमात्रं ज्ञानस्याविद्यामात्रोच्छेदकत्वस्य लोके सिद्धत्वात्। अतएव चित्तेन सहैव दुःखस्य नाशः। ज्ञानस्य साक्षाद्दुःखादिनाशकत्वे प्रमाणाभावादिति। ननु तथापि दुःखनिवृत्तिर्न पुरुषार्थः सम्भवति दुःखस्य चित्तधर्मत्वेन पुरुषे तन्निवृत्त्यसम्भवात्। दुःखनिवृत्तिशब्दस्य दुःखानुत्पादार्थकत्वेऽपि पुरुषे तस्य नित्यसिद्धत्वात्। यत् तु कण्ठचामीकरवत् सिद्धेऽप्यसिद्धत्वभ्रमात्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुरुषार्थता स्यादिति। तन्न। एवमपि पुमान्निर्दुःख इति श्रवणमननोत्तरं दुःखहानार्थं निदिध्यासनादौ प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। बह्वायाससाध्ये ह्युपाये फलनिश्चयादेव प्रवृत्तिर्भवति प्रकृते तु श्रवणमननाभ्यां सिद्धत्वज्ञानान्नाप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितः फलस्यासिद्धत्वनिश्चयोऽस्तीति। किञ्च भवतु कदाचित् भ्रमादिना पुरुषेच्छाविषयत्वं दुःखाभावस्य श्रुतिस्तु मोहनाशिनी कथं सिद्धस्य फलत्वं प्रतिपादयेत्। तरति शोकमात्मविद्विद्वान् हर्षशोकौ जहातीत्यादिरिति। अत्रोच्यते। न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृत इति हेयहेत्ववधारकसूत्रेणैवायं पूर्वपक्षः समाधास्यते। तथाहि। प्रतिबिम्बरूपेण पुरुषेऽपि सुखदुःखे स्तः। अन्यथा तयोर्भोग्यत्वानुपपत्तेः। सुखादिग्रहणं हि भोगः। ग्रहणं च तदाकारता। सा च कूटस्थचितौ बुद्धेरर्थाकारवत् परिणामो न सम्भवतीत्यगत्या प्रतिबिम्बस्वरूपतायामेव पर्य्यवस्यति। अयमेव बुद्धिवृत्तिप्रतिबिम्बो वृत्तिसारूप्यमितरत्रेति योगसूत्रेणोक्तः। सत्त्वेऽनुतप्यमाने तदाकारानुरोधात् पुरुषोऽप्यनुतप्यत इव दृश्यत इति योगभाष्ये च तदाकारानुरोधशब्देन विशिष्यैव तापादिदुःखस्य प्रतिबिम्ब उक्तः। अत एव च पुरुषस्य बुद्धिवृत्त्युपरागे स्फटिकं दृष्टान्तं सूत्रकारो वक्ष्यति। कुसुमवच्च मणेरिति। वेदान्तिभिरपि चेतनेऽध्यस्ततयैव दृश्यभानमुच्यते। स चाध्यासः प्रतिबिम्बं विना न घटेत ज्ञानमात्रस्याध्यासत्वे आत्माश्रयात्। अध्यासाज्ज्ञानं ज्ञानमेव चाध्यास इति। तदेतत् स्मर्य्यतेऽपि।

तस्मिंश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः।
इमास्ताः प्रतिबिम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः॥

इति। अत्र हि दृष्टिशब्दो बुद्धिवृत्तिसामान्यपरो युक्तिसाम्यात्। प्रतिबिम्बश्च तत्तदुपाधिषु बिम्बाकारश्चित्तपरिणाम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति। तस्मात् प्रतिविम्बरूपेण पुरुषे दुःखसम्बन्धो भोगाख्योऽस्ति। अतस्तेनैव रूपेण तन्निवृत्तेः पुरुषार्थत्वं युक्तम्। अत एव दुःखं मा भुञ्जीयेति प्रार्थनाप्यापामरं दृश्यते। तच्च दुःखभोगनिवृत्तेः पुरुषार्थत्वमन्यशेषतया न सम्भवतीति सैव स्वतः पुरुषार्थः। दुःखनिवृत्तिस्तु कण्टकादिनिवृत्तिवत् तादर्थ्येन न स्वतः पुरुषार्थः। एवं सुखमपि न स्वतः पुरुषार्थः। किन्तु तद्भोग एव स्वतः पुरुषार्थत्वं यातीति। तदिदं दुःखभोगनिवृत्तेः पुरुषार्थत्वं योगभाष्ये व्यासदेवैरुक्तम्। तस्मिन् निवृत्ते पुरुषः पुनरिदं तापत्रयं न भुङ्क्त इति। अतः श्रुतावपि दुःखनिवृत्तेः पुरुषार्थत्वं विषयतासम्बन्धेनैव बोध्यम्। तदेतद्योगवार्त्तिके प्रपञ्चितमस्माभिरिति दिक्। तदेवमनेन सूत्रेण व्यूहद्वयं संक्षेपेणोद्दिष्टं विस्तरस्त्वनयोः पश्चाद्भवितेति॥ १॥

अतः परं वक्ष्यमाणस्य हानोपायव्यूहस्याकाङ्क्षार्थं तदितरेषां हानोपायत्वं प्रत्याचष्टे सूत्रजातेन।

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात् ॥२॥

लौकिकादुपायाद्धनादेरत्यन्तदुःखनिवृत्तिसिद्धिर्नास्ति। कुतः। धनादिना दुःखे निवृत्ते पश्चाद्धनादिक्षये पुनरपि दुःखानुवृत्तिदर्शनादित्यर्थः। तथा च श्रुतिः। अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेत्यादिः॥ २॥

नन्वेवं धनाद्यर्जनस्य कुञ्जरशौचवद् दुःखानिवर्त्तकत्वे कथं तत्र प्रवृत्तिस्तत्राह।

प्रात्यहिकक्षुत्प्रतीकारवत् तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम् ॥ ३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दृष्टसाधनजन्यायां दुःखनिवृत्तावत्यन्तपुरुषार्थत्वमेव नास्ति। यथाकथञ्चित् पुरुषार्थत्वं त्वस्त्येव। कुतः। प्रात्यहिकस्य क्षुद्दुःखस्य निराकरणवदेव तेन धनादिना दुःखनिराकरणस्य चेष्टनादन्वेषणादित्यर्थः। अतो धनाद्यर्जने प्रवृत्तिरुपपद्यत इति भावः। कुम्भकशौचादिकमप्यापातदुःखनिवर्त्तकतया मन्दपुरुषार्थो भवत्येवेति ॥ ३ ॥

स च दृष्टसाधनजो मन्दपुरुषार्थो विवेकिभिर्हेय इत्याह।

सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि सत्त्वासम्भवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ॥ ४ ॥

स च दृष्टसाधनजो दुःखप्रतीकारो दुःखादुःखविवेकशास्त्राभिज्ञैर्हेयो दुःखपक्षे निक्षेपणीयः। कुतः। सर्वासम्भवात्। सर्वदुःखेषु दृष्टसाधनैः प्रतीकारासम्भवात्। यत्रापि सम्भवस्तत्रापि प्रतिग्रहपापाद्युत्थदुःखावश्यकत्वमाह। सम्भवेऽपीति। सम्भवेऽपि दृष्टोपायनान्तरीयकादिदुःखसम्पर्कावश्यम्भावादित्यर्थः। तथा च योगसूत्रम्। परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वमेव दुःखं विवेकिन इति ॥ ४ ॥

ननु दृष्टसाधनजन्ये सर्वस्मिन्नेव दुःखप्रतीकारे दुःखसम्भेदनियमोऽप्रयोजकः। तथा च स्मर्य्यते।

यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं च तत् सुखं स्वःपदास्पदम् ॥

इति। तत्राह।

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ॥ ५ ॥

दृष्टसाधनासाध्यस्य मोक्षस्य दृष्टसाध्यराज्यादिभ्य उत्कर्षात् तेषु दुःखसत्तावधार्य्यते। अपिशब्दात् त्रिगुणात्मकत्वा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देरपि। मोक्षस्योत्कर्षे प्रमाणं सर्वोत्कर्षश्रुतेरिति। न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति। अशरीरं वा वसन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशत इत्यादिना विदेहकैवल्यस्योत्कर्षश्रुतेरित्यर्थः॥ ५॥

ननु मा भवतु दृष्टसाधनादत्यन्तदुःखनिवृत्तिः। अदृष्टसाधनात् तु वैदिककर्मणः स्यात्। अपाम सोममसृता अभूमेत्यादिश्रुतेरिति तत्राह।

अविशेषश्चोभयोः॥ ६॥

उभयोरेव दृष्टादृष्टयोरत्यन्तदुःखनिवृत्त्यसाधकत्वे यथोक्तहेतुत्वे चाविशेष एव मन्तव्य इत्यर्थः। एतदेव कारिकायामुक्तम्।

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।

इति। गुरोरनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदः। तद्विहितयागादिरानुश्रविकः। स दृष्टोपायवदेवाशुद्ध्या हिंसादिपापेन विनाशिसातिशयफलकत्वेन च युक्त इत्यर्थः। ननु वैधहिंसायाः पापजनकत्वे बलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनत्वरूपस्य विध्यर्थस्यानुपपत्तिरिति चेन्न। वैधहिंसाजन्यानिष्टस्येष्टोत्पत्तिनान्तरीयकत्वेनेष्टोत्पत्तिनान्तरीयकदुःखाधिकदुःखाजनकत्वरूपस्य बलवदनिष्टाननुबन्धित्वस्य विध्यंशस्याक्षतेः। यत् तु वैधहिंसातिरिक्तहिंसाया एव पापजनकत्वमिति तदसत् सङ्कोचे प्रमाणाभावात्। युधिष्ठिरादीनां स्वधर्मेऽपि युद्धादौ ज्ञातिवधादिप्रत्यवायपरिहाराय प्रायश्चित्तश्रवणाच्च।

तस्माद्यास्याम्यहं तात! दृष्ट्वेमं दुःखसन्निधिम्।
त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किम्पाकफलसन्निभम्॥

इति मार्कण्डेयवचनाच्च। अहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीर्थेभ्य इति श्रुतिस्तु वैधातिरिक्तहिंसानिवृत्तेरिष्टसाधनत्वमेव वक्ति न तु वैधहिंसाया अनिष्टसाधनत्वाभावमपीत्यादिकं योगवार्त्तिके द्रष्टव्यमिति दिक्। न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुरिति तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेत्यादिश्रुतिविरोधेन तु सोमपानादिभिरमृतत्वं गौणमेव मन्तव्यम्।

आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाष्यते।

इति विष्णुपुराणात् ॥ ६ ॥

तदेवं दृष्टादृष्टोपाययोः साक्षात्परमपुरुषार्थासाधनत्वे साधिते तदुपायाकाङ्क्षायां विवेकज्ञानमुपायो वक्तव्यः। तत्र विवेकज्ञानमविवेकाख्यदुःखहेतूच्छेदद्वारैव ज्ञानोपाय इत्याशयेनादावपि विवेकमेवेतरप्रतिषेधेन हेयहेतुतया परिशेषयति प्रघट्टकेन।

न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः ॥ ७ ॥

दुःखात्यन्तनिवृत्तेर्मोक्षत्वस्योक्ततया बन्धोऽत्र दुःखयोग एव। तस्य बन्धस्य पुरुषे न स्वाभाविकत्वं वक्ष्यमाणलक्षणमस्ति यतो न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षाय साधनोपदेशस्य श्रौतस्य विधिरनुष्ठानं नियोज्यानां घटते। न ह्यग्नेः स्वाभाविकादौष्ण्यान्मोक्षः सम्भवति। स्वाभाविकस्य यावद्द्रव्यभावित्वादित्यर्थः। तदुक्तमीश्वरगीतायाम्।

यद्यात्मा मलिनोऽस्वच्छो विकारी स्यात् स्वभावतः।
न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि ॥

इति। यस्मिन् सति कारणविलम्बादिजन्यो यस्योत्पत्तौ न भवति तस्य तत् स्वाभाविकमिति स्वाभाविकत्वलक्ष-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शम्। ननु सर्वदोपलब्धापत्तेर्दुःखस्य स्वाभाविकत्वशङ्कैव नास्तीति चेन्न। त्रिगुणात्मकत्वेन चित्तस्य दुःखस्वभावत्वेऽपि सत्त्वाधिक्येनाभिभवात् सदा दुःखानुपलब्धिवदात्मनोऽपि तदनुपलब्धिसम्भवात्। दुःखस्वाभाविकत्ववादिभिर्बौद्धैश्चित्तस्यैवात्मताभ्युपगमाच्च। अथैवमात्मनाशादेव मोक्षोऽस्त्विति चेन्न। अहं बद्धो विमुक्तः स्यामिति बन्धसामानाधिकरण्येनैव मोक्षस्य पुरुषार्थत्वादिति ॥ ७ ॥

भवत्वननुष्ठानं तेन किमित्यत आह।

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम् ॥ ८ ॥

स्वभावस्य यावद्द्रव्यभावित्वान्मोक्षासम्भवेन तत्साधनोपदेशश्रुतेरननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यं स्यादित्यर्थः ॥ ८ ॥

ननु श्रुतिबलादेवानुष्ठानं स्यात् तत्राह।

नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टेऽप्यनुपदेशः ॥ ९ ॥

नाशक्याय फलायोपदेशस्यानुष्ठानं सम्भवति। यत उपदिष्टेऽपि विहितेऽप्यशक्यस्योपाये स उपदेशो न भवति। किन्तूपदेशाभास एव बाधितमर्थं वेदोऽपि न बोधयतीति न्यायादित्यर्थः ॥ ९ ॥

अत्र शङ्कते।

शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ॥ १० ॥

ननु स्वाभाविकस्याप्यपायो दृश्यते। यथा शुक्लपटस्य स्वाभाविकं शौक्ल्यं रागेणापनीयते। यथा च वीजस्य स्वाभाविक्यप्यङ्कुरशक्तिरग्निनापनीयते। अतः शुक्लपटवद्बीजवच्च

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वाभाविकस्य बन्धस्याप्यपायः पुरुषे सम्भवतीति तद्वदेव तत्साधनोपदेशः स्यादिति चेदित्यर्थः ॥ १० ॥

समाधत्ते ।

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः॥११॥

उक्तदृष्टान्तयोरपि नाशक्याय स्वाभाविकायापायोपदेशो लोकानां भवति। कुतः। शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्याम्। दृष्टान्तद्वये हि शौक्ल्यादेराविर्भावतिरोभावावेव भवतः। न तु शौक्ल्याङ्कुरशक्त्योरभावो भवति। रजकादिव्यापारैर्योगिसङ्कल्पादिभिश्च रक्तपटभृष्टबीजयोः पुनः शौक्ल्याङ्कुरशक्त्याविर्भावादित्यर्थः। नन्वेवं पुरुषेऽपि दुःखशक्तितिरोभाव एव मोक्षोऽस्त्विति चेन्न दुःखात्यन्तनिवृत्तेरेव लोके पुरुषार्थत्वानुभवात् श्रुतिस्मृत्योः पुरुषार्थत्वसिद्धेश्च। न तु दृष्टान्तयोरिव तिरोभावमात्रस्येति। किञ्च दुःखशक्तितिरोभावमात्रस्य मोक्षत्वे कदाचिद्योगीश्वरसङ्कल्पादिना शक्त्युद्भवस्य भृष्टबीजेष्विव मुक्तेष्वपि सम्भवेनानिर्मोक्षापत्तिरिति ॥ ११ ॥

स्वभावतो बन्धं निराकृत्य निमित्तेभ्योऽपि बन्धमपाकरोति सूत्रजातेन। पुरुषे दुःखस्य नैमित्तिकत्वेऽपि ज्ञानाद्यपायोच्छेद्यत्वं न घटेत। अनागतावस्थसूक्ष्मदुःखस्य यावद्द्रव्यभावित्वादित्याशयेन नैमित्तिकत्वं निराक्रियते।

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ॥ १२ ॥

नापि कालसम्बन्धनिमित्तकः पुरुषस्य बन्धः। कुतः। व्यापिनो नित्यस्य कालस्य सर्वावच्छेदेन सर्वदा मुक्तामुक्तसकलपुरुषसम्बन्धात्। सर्वावच्छेदेन सदा सकलपुरुषाणां बन्धापत्तेरित्यर्थः। अत्र च प्रकरणे कालदेशकर्मादीनां

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निमित्तत्वसामान्यं नापलप्यते श्रुतिस्मृतियुक्तिभिः सिद्धत्वात्। किन्तु यन्नैमित्तिकत्वं पाकजरूपादिवन्निमित्तजन्यत्वं तदेव बन्धे प्रतिषिध्यते पुरुषे बन्धस्यौपाधिकत्वाभ्युपगमात्। ननु कालादिनिमित्तकत्वेऽपि सहकार्य्यन्तरसम्भवासम्भवाभ्यां व्यवस्था स्यादिति चेत्। एवं सति यत् संयोगि सत्यवश्यं बन्धस्तत्रैव सहकारिणि लाघवाद्बन्धो युक्तः पुरुषे बन्धव्यवहारस्यौपाधिकत्वे नाप्युपपत्तेरिति कृतं नैमित्तिकत्वेनेति॥ १२॥

न देशयोगतोऽप्यस्मात्॥ १३॥

देशयोगतोऽपि न बन्धः। कुतः। अस्मात् पूर्वसूत्रोक्तान्मुक्तामुक्तसर्वपुरुषसम्बन्धात्। मुक्तस्यापि बन्धापत्तेरित्यर्थः॥१३॥

नावस्थातो देहधर्मत्वात् तस्याः॥ १४॥

सङ्घातविशेषरूपताख्या देहरूपा यावस्था न तन्निमित्ततोऽपि पुरुषस्य बन्धः। कुतः। तस्या अवस्थाया देहधर्मत्वात्। अचेतनधर्मत्वादित्यर्थः। अन्यधर्मस्य साक्षादन्यबन्धकत्वेऽतिप्रसङ्गात्। मुक्तस्यापि बन्धापत्तेरित्यर्थः॥ १४॥

ननु पुरुषस्याप्यवस्थायां किं बाधकं तत्राह।

असङ्गोऽयं पुरुष इति॥ १५॥

इतिशब्दो हेत्वर्थे। पुरुषस्यासङ्गत्वादवस्थाया देहमात्रधर्मत्वमिति पूर्वसूत्रेणान्वयः। पुरुषस्यावस्थारूपविकारस्वीकारे विकारहेतुसंयोगाख्यः सङ्गः प्रसज्येतेति भावः। असङ्गत्वे च श्रुतिः। स यदत्र किञ्चित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवति असङ्गो ह्ययं पुरुष इति। सङ्गश्च संयोगमात्रं न भवति। कालदेशसम्बन्धस्य पूर्वमुक्तत्वात्। श्रुतिस्मृतिषु पद्मपत्रस्थज-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लेनैव पद्मपत्रस्यासङ्गतायाः पुरुषासङ्गतायां दृष्टान्तताश्रवणाच्च ॥ १५ ॥

न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ॥ १६ ॥

न हि विहितनिषिद्धकर्मणापि पुरुषस्य बन्धः। कर्मणामनात्मधर्मत्वात्। अन्यधर्मेण साक्षादन्यस्य बन्धे च मुक्तस्यापि बन्धापत्तेः। ननु स्वस्वोपाधिकर्मणा बन्धाङ्गीकारे नायं दोष इत्याशयेन हेत्वन्तरमाह। अतिप्रसक्तेश्चेति। प्रलयादावपि दुःखयोगरूपबन्धापत्तेश्चेत्यर्थः। सहकार्य्यन्तरविलम्बतो विलम्बकल्पनं च प्रागेव निराकृतं न कालयोग इत्यादिसूत्र इति ॥१६॥

नन्वेवं दुःखयोगरूपोऽपि बन्धः कर्मसामानाधिकरण्यानुरोधेन चित्तस्यैवास्तु। दुःखस्य चित्तधर्मतायाः सिद्धत्वात्। किमर्थं पुरुषस्यापि कल्प्यते बन्ध इत्याशङ्कायामाह।

विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ॥ १७ ॥

दुःखयोगरूपबन्धस्य चित्तमात्रधर्मत्वे विचित्रभोगानुपपत्तिः। पुरुषस्य हि दुःखयोगं विनापि दुःखसाक्षात्काराख्यभोगस्वीकारे सर्वपुरुषदुःखादीनां सर्वपुरुषभोग्यता स्यान्नियामकाभावात्। ततश्चायं दुःखभोक्तायं च सुखभोक्तेत्यादिरूपभोगवैचित्र्यं नोपपद्येतेत्यर्थः। अतो भोगवैचित्र्योपपत्तये भोगनियामकतया दुःखादियोगरूपो बन्धः पुरुषेऽपि स्वीकार्य्यः। स च पुरुषे दुःखयोगः प्रतिबिम्बरूप एवेति प्रागेवोक्तम्। प्रतिबिम्बश्च स्वोपाधिवृत्तेरेव भवतीति न सर्वपुंसां सर्वदुःखभोग इति भावः। चित्तवृत्तिबोधे पुरुषस्यानादिः स्वस्वामिभावः सम्बन्धो हेतुरिति योगभाष्यादयं सिद्धान्तः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिद्धः। चित्ते च पुरुषस्य स्वत्वं स्वभुक्तवृत्तिवासनावत्त्वमिति। यत् तु चित्तस्यैव बन्धमोक्षौ न पुरुषस्येति श्रुतिस्मृतिषु गीयते तद्बिम्बरूपदुःखयोगरूपं पारमार्थिकं बन्धमादाय बोध्यम् ॥१७॥

साक्षात् प्रकृतिनिमित्तकत्वमपि बन्धस्यापाकरोति।

प्रकृतिनिबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ॥ १८ ॥

ननु प्रकृतिनिमित्ताद्बन्धो भवत्विति चेन्न। यतस्तस्या अपि बन्धकत्वे संयोगपारतन्त्र्यमुत्तरत्र वक्ष्यमाणमस्ति। संयोगविशेषं विनापि बन्धकत्वे प्रलयादावपि दुःखबन्धप्रसङ्गादित्यर्थः। प्रकृतिनिबन्धना चेदिति पाठे तु प्रकृतिनिबन्धना चेद्बन्धनेत्यर्थः ॥ १८ ॥

अतो यत्परतन्त्रा प्रकृतिर्बन्धकारणं सम्भवेत् तस्मादेव संयोगविशेषादौपाधिको बन्धोऽग्निसंयोगाज्जलौष्ण्यवदिति स्वसिद्धान्तमनेनैव प्रसङ्गेनान्तराल एवावधारयति।

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ॥ १९ ॥

तस्मात् तद्योगादृते प्रकृतिसंयोगं विना न पुरुषस्य तद्योगो बन्धसम्पर्कोऽस्ति। अपि तु स एव बन्धः। बन्धस्यौपाधिकत्वलाभाय नञ्द्वयेन वक्रोक्तिः। यदि हि बन्धः प्रकृतिसंयोगजन्यः स्यात् पाकजरूपवत् तदा तद्वदेव तद्वियोगेऽप्यनुवर्त्तेत। न च द्वितीयक्षणादेर्दुःखनाशकत्वं कल्प्यं कारणनाशस्य कार्य्यनाशकतायाः क्लृप्तत्वेन तेनैवोपपत्तावस्माभिस्तदकल्पनात्। वृत्तिर्हि दुःखादेरुपादानम्। अतो दीपशिखावत् क्षणभङ्गुराया वृत्तेराशुविनाशित्वेनैव तद्धर्माणां दुःखेच्छादीनां

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विनाशः सम्भवतीति। अतः प्रकृतिवियोगे बन्धाभावादौपाधिक एव बन्धो न तु स्वाभाविको नैमित्तिको वेति। तथा संयोगनिवृत्तिरेव साक्षाद्धानोपाय इत्यपि वक्रोक्तिफलम्। तथा च स्मृतिः।

यथा ज्वलद्गृहाश्लिष्टगृहं विच्छिद्य रक्ष्यते।
तथा सदोषप्रकृतिविच्छिन्नोऽयं न शोचति॥

इति। वैशेषिकाणामिव पारमार्थिको दुःखयोग इति भ्रमो मा भूदित्येतदर्थं नित्येत्यादि। यथा स्वभावशुद्धस्य स्फटिकस्य रागयोगो न जपायोगं विना घटते तथैव नित्यशुद्धादिस्वभावस्य पुरुषस्योपाधिसंयोगं विना दुःखसंयोगो न घटते स्वतो दुःखाद्यसम्भवादित्यर्थः। तदुक्तं सौरे।

यथा हि केवलो रक्तः स्फटिको लक्ष्यते जनैः।
रञ्जकाद्यप्रधानेन तद्वत् परमपूरुषः॥

इति। नित्यत्वं कालानवच्छिन्नत्वम्। शुद्धादिस्वभावत्वं च नित्यशुद्धत्वादिकम्। तत्र नित्यशुद्धत्वं सदा पापपुण्यशून्यत्वम्। नित्यबुद्धत्वमलुप्तचिद्रूपत्वम्। नित्यमुक्तत्वं सदा पारमार्थिकदुःखायुक्तत्वम्। प्रतिबिम्बरूपदुःखयोगस्त्वपारमार्थिको बन्ध इति भावः। आत्मनो नित्यशुद्धत्वादौ च श्रुतिः। अयमात्मा सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरित्यादिः। नन्वस्य मननशास्त्रत्वादत्रार्थे युक्तिरपि वक्तव्येति चेत् सत्यम्। न तद्योगस्तद्योगादृत इत्यनेन नित्यशुद्धत्वादौ युक्तिरप्युक्तैव। तथाहि आत्मनि नित्यत्वविभुत्वादिकं तावन्न्यायादिदर्शनेष्वेव साधितम्। तत्र नित्यस्य विभोरात्मनो यद्योगं विना दुःखाद्यखिलविकारैर्योगो न भवति तस्यैवान्तःकरणस्य सर्वसम्मतकारणस्य तदुपादानकारणत्वमेव युक्तं लाघवात्। सर्वविकारेष्वन्तःकर-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यस्यैवान्वयव्यतिरेकाभ्याञ्च। न पुनरक्तविकारेषु मनसो निमित्तत्वमात्मनश्चोपादानत्वं युक्तं कारणद्वयकल्पने गौरवात्। नन्वहं सुखी दुःखी करोमीत्याद्यनुभवादात्मनो विकारोपादानत्वसिद्धिरिति चेन्न। अहं गौर इत्यादिभ्रमशतान्तःपातित्वेनाप्रामाण्यशङ्कास्कन्दिततयोक्तप्रत्यक्षाणामुक्ततर्कानुगृहीतानुमानापेक्षया दुर्बलत्वात्। आत्मनश्चिन्मात्रत्वे तु युक्तिरग्रे वक्ष्यत इति दिक्। अस्य सूत्रस्यैवार्थः कारिकयाप्युक्तः।

तस्मात् तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः॥

इति। कर्तृत्वमात्रं दुःखित्वादिसकलविकारोपलक्षणम्। तथा योगसूत्रेऽप्यस्य सूत्रस्यैवार्थ उक्तः। द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुरिति। गीतायां च।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।

इति। प्रकृतिस्थः प्रकृतौ संयुक्तः। तथा च श्रुतावपि।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।

इति। न च कालादिवदेव प्रकृतिसंयोगोऽपि मुक्तामुक्तपुरुषसाधारणतया कथं बन्धहेतुरिति वाच्यम्। जन्मापरनाम्नः स्वस्वबुद्धिभावापन्नप्रकृतिसंयोगविशेषस्यैवात्र संयोगशब्दार्थत्वात्। योगभाष्ये व्यासैस्तथा व्याख्यातत्वात्। बुद्धिवृत्त्युपाधिनैव पुरुषे दुःखयोगाच्च। वैशेषिकादिवदेव भोगजनकतावच्छेदकत्वेनान्तःकरणसंयोगे वैजात्यं चास्माभिरपीष्टम्। अतो न सुषुप्त्यादौ बन्धप्रसङ्गः। स्वस्वभुक्तवृत्तिवासनावद्यत्किञ्चिद्वृत्तितत्संस्कारप्रवाहोऽप्यनादिरतः स्वस्वामिभावव्यवस्थितिः। कश्चित् तु प्रकृतिपुरुषयोः संयोगाङ्गीकारे पुरुषस्य परिणामसङ्गौ प्रसज्येयाताम्। अतोऽत्राविवेक एव योगशब्दार्थो न तु संयोग इति। तन्न। तद्योगोऽप्यविवे-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कादिति सूत्रेणाविवेकस्य योगहेतुताया एव सूत्रकारेण वक्ष्यमाणत्वात् । स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगस्तस्य हेतुरविद्येति सूत्राभ्यां पतञ्जलेऽपि संयोगहेतुत्वस्यैवाविद्याया उक्तत्वाच्च । किञ्च विवेकाभावरूपस्याविवेकस्य संयोगत्वे प्रलयादावपि प्रकृतिपुरुषसंयोगसत्त्वेन भोगाद्यापत्तिः । मिथ्याज्ञानरूपस्याविवेकस्य च संयोगत्वे आत्माश्रयः पुम्प्रकृतिसंयोगस्याज्ञानादिहेतुत्वादिति । तस्मादविवेकातिरिक्तो योगो वक्तव्यः । स च संयोग एवान्यस्याप्रामाणिकत्वात् । संयोगश्च न परिणामः सामान्यगुणातिरिक्तधर्मोत्पत्त्यैव परिणामित्वव्यवहारात् । अन्यथा कूटस्थस्य सर्वगतत्वरूपविभुत्वानुपपत्तेः । नापि संयोगमात्रं सङ्गः परिणामहेतुसंयोगस्यैव सङ्गशब्दार्थताया वक्तव्यत्वादिति । ननु तथापि कथं नित्ययोः प्रकृतिपुरुषयोर्महदादिहेतुरनित्यः संयोगो घटत इति चेन्न । प्रकृतेः परिच्छिन्नापरिच्छिन्नत्रिविधगुणसमुदायरूपतया परिच्छिन्नगुणावच्छेदेन पुरुषसंयोगोत्पत्तेः सम्भवात् । श्रुतिस्मृतिसिद्धत्वात् प्रकृतिसंयोगस्योभयोरिति । एतच्च योगवार्त्तिके प्रपञ्चितमस्माभिः । अपरस्तु भोग्यभोक्तृयोग्यतैवानयोः संयोग इत्याह । तदपि न । योग्यताया नित्यत्वे ज्ञाननिवर्त्यत्वानुपपत्तेः । अनित्यत्वे किमपराद्धं संयोगेन परिणामित्वापत्तेः समानत्वात् । भोग्यभोक्तृयोग्यतायाः संयोगरूपत्वस्य सूत्रादिष्वनुक्तत्वेनाप्रामाणिकत्वाच्चेति । तस्मात् संयोगविशेष एवात्र बन्धाख्यहेयहेतुतया सूत्रकाराभिप्रेत इति स्वयं बन्धहेतुरवधारितः ॥ १६ ॥

इदानीं नास्तिकाभिप्रेता अपि बन्धहेतवो निराकर्त्तव्याः । तत्र ।

षड्भिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इत्यनुश्रवसनादिसिद्धाः क्षणिकविज्ञानात्मवादिनो बौद्ध-प्रभेदा एवमाहुः। नास्ति प्रकृत्यादि बाह्यं वस्त्वन्यत्। येन तत्संयोगादौपाधिकस्तात्त्विको वा बन्धः स्यात्। किन्तु क्षणिकविज्ञानसन्तानमात्रमद्वितीयं तत् त्वमन्यत् सर्वं सांवृत्तिकं संवृत्तिश्चाविद्यामिथ्याज्ञानाख्या तत एव बन्ध इति। तथा च तैरुक्तम्।

अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा विपर्य्यासनिदर्शनैः।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥

इति। तन्मतमादौ निराक्रियते।

नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात् ॥२०॥

अपिशब्दः पूर्वोक्तकालाद्यपेक्षया। अविद्यातोऽपि न साक्षाद्बन्धयोगः। अद्वैतवादिनां तेषामविद्याया अप्यवस्तुत्वेन तया बन्धानौचित्यात्। न हि स्वाप्नरज्ज्वा बन्धनं दृष्टमित्यर्थः। बन्धोऽप्यवास्तव इति चेन्न। स्वयं सूत्रकारेण निराकरिष्यमाणत्वात्। विज्ञानाद्वैतश्रवणोत्तरं बन्धनिवृत्तये योगाभ्यासाभ्युपगमविरोधाच्च। बन्धमिथ्यात्वश्रवणेन, बन्धनिवृत्त्याख्यफलसिद्धत्वनिश्चयात् तदर्थं बह्वायाससाध्ययोगाङ्गानुष्ठानासम्भवादिति ॥ २० ॥

वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः ॥ २१ ॥

यदि चाविद्याया वस्तुत्वं स्वीक्रियते तदा स्वाभ्युपगतस्याविद्यानृतत्वस्य हानिरित्यर्थः ॥ २१ ॥

विजातीयद्वैतापत्तिश्च ॥ २२ ॥

किञ्चाविद्याया वस्तुत्वे क्षणिकविज्ञानसन्तानाद्विजातीयं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वैतं प्रसज्येत । तच्च भवतामनिष्टमित्यर्थः । सन्तानान्तःपातिव्यक्तीनामानन्त्यात् सजातीयद्वैतमिष्यत एवेत्याशयेन विजातीयेति विशेषणम् । नन्वविद्याया अपि ज्ञानविशेषत्वाद॰ विद्ययापि कथं विजातीयद्वैतमिति चेन्न ; ज्ञानरूपाविद्याया बन्धोत्तरकालीनतया वासनारूपाविद्याया एव तैर्बन्धहेतुत्वाभ्युपगमात् । वासना तु ज्ञानाद्विजातीयैवेति । एभिश्च सूत्रैर्ब्रह्ममीमांसासिद्धान्तो निराक्रियत इति भ्रमो न कर्त्तव्यः । ब्रह्ममीमांसायां केनापि सूत्रेणाविद्यामात्रतो बन्धस्यानुक्तत्वात् । अविभागो वचनादित्यादिसूत्रैर्ब्रह्ममीमांसाया अभिप्रेतस्याविभागलक्षणाद्वैतस्याविद्यादिवास्तवत्वेऽप्यविरोधाच्च । यत् तु वेदान्तिब्रुवाणामाधुनिकस्य मायावादस्यात्र लिङ्गं दृश्यते तत् तेषामपि विज्ञानवाद्येकदेशितया युक्तमेव ।

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च ।
मयैव कथितं देवि ! कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥

इत्यादिपद्मपुराणस्थशिववाक्यपरम्पराभ्यः । न तु तद्वेदान्तमतम् ।

वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ।

इति तद्वाक्यशेषादिति । मायावादिनोऽत्र च न साक्षात् प्रतिवादित्वं विजातीयेति विशेषणवैयर्थ्यात् । मायावादे सजातीयाद्वैतस्याप्यनभ्युपगमादिति । तस्मादत्र प्रकरणे विज्ञानवादिनां बन्धहेतुव्यवस्थैव साक्षान्निराक्रियते । अनयैव च रीत्या नवीनानामपि प्रच्छन्नबौद्धानां मायावादिनामविद्यामात्रस्य तुच्छस्य बन्धहेतुत्वं निराकृतं वेदितव्यम् । अस्मन्मते त्वविद्यायाः कूटस्थनित्यतारूपपारमार्थिकत्वाभावेऽपि घटादिवद्वास्तवत्वेन वक्ष्यमाणसंयोगद्वारा बन्धहेतुत्वे यथोक्तबाधानवकाशः । एवं योगमते ब्रह्ममीमांसामतेऽपीति ॥ २२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शङ्कते।

विरुद्धोभयरूपा चेत् ॥ २३ ॥

ननु विरुद्धं यदुभयं सदसच्च सदसद्विलक्षणं वा तद्रूपैवाविद्यावक्तव्याती न तया पारमार्थिकाद्वैतभङ्ग इति चेदित्यर्थः। स्वयं तु सदसत्त्वं प्रपञ्चस्य वक्ष्यति तत्र सत्त्वासत्त्वे व्यक्ताव्यक्तत्वरूपत्वाद्विरुद्धे एव न भवत इति सूचयितुं विरुद्धपदोपादानम् ॥ २३ ॥

परिहरति।

न तादृक् पदार्थाप्रतीतेः ॥ २४ ॥

सुगमम्। अपि चाविद्यायाः साक्षादेव दुःखयोगाख्यबन्धहेतुत्वे ज्ञानेनाविद्याक्षयानन्तरं प्रारब्धभोगानुपपत्तिः। बन्धपर्य्यायस्य दुःखभोगस्य कारणनाशादिति। अस्मदादिमते तु नायं दोषः संयोगद्वारैवाविद्याकर्मादीनां बन्धहेतुत्वात्। जन्माख्यश्च संयोगः प्रारब्धसमाप्तिं विना न नश्यतीति ॥ २४ ॥

पुनः शङ्कते।

न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् ॥२५॥

ननु वैशेषिकाद्यास्तिकवन्न वयं षट्षोड़शादिनियतपदार्थवादिनः। अतोऽप्रतीतोऽपि सदसदात्मकः सदसद्विलक्षणो वा पदार्थोऽविद्येत्यभ्युपेयमिति भावः ॥ २५ ॥

परिहरति।

अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम् ॥ २६ ॥

पदार्थनियमो मास्तु तथापि भावाभावविरोधेन युक्तिविरुद्धस्य सदसदात्मकपदार्थस्य संग्रहो भवद्वचनमात्राच्छि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ष्याणां न सम्भवति। अन्यथा बालकाद्युक्तस्याप्ययौक्तिकस्य संग्रहः स्यादित्यर्थः। श्रुत्यादिकं चास्मिन्नर्थे स्फुटं नास्ति युक्ति-विरोधेन च सन्दिग्धश्रुतेरर्थान्तरसिद्धिरिति भावः।

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका।
सदसद्भ्यामनिर्वाच्या मिथ्याभूता सनातनी॥

इत्यादिसौरादिवाक्यानां त्वयमर्थः।

विकारजननीं मायामष्टरूपामजां ध्रुवाम्॥

इत्यादिश्रुतिसिद्धा मायाख्या प्रकृतिः परमार्थसती न भवति पूर्वपूर्वविकाररूपैः प्रतिक्षणमपायात्। नापि परमार्थासती भवत्यर्थक्रियाकारित्वेन शशशृङ्गविलक्षणत्वात्। नापि तदुभयात्मिका विरोधाच्च। अतः सदसद्भ्यामनिर्वाच्या सत्येवेत्यसत्येवेति च निर्धार्योपदेष्टुमशक्या। किन्तु मिथ्याभूता लयाख्यव्यावहारिकासत्त्ववती परिणामिनित्यतारूपव्यावहारिकसत्त्ववती चेति। एतच्चाग्रे प्रपञ्चयिष्याम इति दिक्। एतत्प्रकरणोपन्यस्तानि च सर्वाण्येव दूषणान्याधुनिकेऽपि मायावादे योजनीयानि॥ २६॥

अपरे नास्तिका आहुः क्षणिका बाह्यविषयाः सन्ति तेषां वासनया जीवस्य बन्ध इति तदपि दूषयति।

नानादिविषयोपरागनिमित्तकोऽप्यस्य ॥२७॥

अस्यात्मनः प्रवाहरूपेणानादिर्या विषयवासना तन्निमित्तकोऽपि बन्धो न सम्भवतीत्यर्थः। निमित्ततोऽप्यस्येति पाठस्तु समीचीनः॥ २७॥

अत्र हेतुमाह।

न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्रुघ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव॥२८॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तस्मात् परिच्छिन्नो देहान्तस्थ एवात्मा तस्याभ्यन्तरस्थ न बाह्यविषयेण सहोपरञ्ज्योपरञ्जकभावोऽपि सम्भवति । कुतः । सुघ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव देशव्यवधानादित्यर्थः । संयोगे सत्येव हि वासनाख्य उपरागो दृष्टः । यथा मञ्जिष्ठावस्त्रयोः यथा वा पुष्पस्फटिकयोरिति । अपिशब्देन स्वमतेऽपि संयोगाभावादिः समुच्चीयते । सुघ्नपाटलिपुत्रौ विप्रकृष्टौ देशविशेषौ ॥ २८ ॥

ननु भवतामिन्द्रियाणामिवास्माकमात्मनो विषयदेशे गमनाद्विषयसंयोगेन विषयोपरागो वक्तव्यस्तत्राह ।

द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न व्यवस्था ॥२९॥

द्वयोर्बद्धमुक्तात्मनोरेकस्मिन् विषयदेशे लब्धविषयोपरागान्न बन्धमोक्षव्यवस्था स्यात् । मुक्तस्यापि बन्धापत्तेरित्यर्थः ॥ २९ ॥

अत्र शङ्कते ।

अदृष्टवशाच्चेत् ॥ ३० ॥

नन्वेकदेशसम्बन्धेन विषयसंयोगसाम्येऽप्यदृष्टवशादेवोपरागलाभ इति चेदित्यर्थः ॥ ३० ॥

परिहरति ।

न द्वयोरेककालायोगादुपकार्य्योपकारकभावः ॥ ३१ ॥

क्षणिकत्वाभ्युपगमाद्द्वयोः कर्त्तृभोक्त्रोरेककालासत्त्वेन नोपकार्य्योपकारकभावः । न कर्त्तृनिष्ठादृष्टेन भोक्तृनिष्ठो विषयोपरागः सम्भवतीत्यर्थः ॥ ३१ ॥

शङ्कते ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुत्रकर्मवदिति चेत् ॥ ३२ ॥

ननु यथा पितृनिष्ठेन पुत्रकर्मणा पुत्रस्योपकारो भवति तद्वद्राधिकरणेनैवादृष्टेन विषयोपरागः स्यादित्यर्थः ॥ ३२ ॥

दृष्टान्तासिद्ध्या परिहरति।

नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना संस्क्रियते ॥ ३३ ॥

पुत्रेष्ट्यापि तन्मते पुत्रस्योपकारो न घटते हि यस्मात् तत्र तन्मते गर्भाधानमारभ्य जन्मपर्य्यन्तं स्थायी एक आत्मा नास्ति यो जन्मोत्तरकालीनकर्माधिकारार्थं पुत्रेष्ट्या संस्क्रियेतेति दृष्टान्तस्याप्यसिद्धिरित्यर्थः। अस्मन्मते तु स्थैर्य्याभ्युपगमात् तत्राप्यदृष्टसामानाधिकरण्यमेवास्ति पुत्रेष्ट्या जनितेन पुत्रोपाधिनिष्ठादृष्टेनैव पुत्रोपाधिद्वारा पुत्रस्योपकारादित्यस्मन्मतेऽपि न दृष्टान्तासिद्धिरिति भावः ॥ ३३ ॥

ननु बन्धस्यापि क्षणिकत्वादनियतकारणकोऽभावकारणको वा बन्धोऽस्त्वित्याशयेनापरो नास्तिकः प्रत्यवतिष्ठते।

स्थिरकार्य्यासिद्धेः क्षणिकत्वम् ॥ ३४ ॥

बन्धस्येति शेषः। भावस्तु क एव। अत्रायं प्रयोगः विवादास्पदं बन्धादि क्षणिकं सत्त्वाद्दीपशिखादिवदिति। न च घटादौ व्यभिचारस्तस्यापि पक्षसमत्वात्। एतदेवोक्तं स्थिरकार्य्यासिद्धेरिति ॥ ३४ ॥

समाधत्ते।

न प्रत्यभिज्ञाबाधात् ॥ ३५ ॥

न कस्यापि क्षणिकत्वमिति शेषः। यदेवाहमद्राक्षं तदे-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धार्ह सुग्रामीत्यादिप्रत्यभिज्ञया स्थैर्य्यसिद्धेः क्षणिकत्वस्य बाधात्। प्रतिपक्षानुमानेनेत्यर्थः। तद्यथा बन्धादि स्थिरं सत्त्वाद्घटादिवदिति। अस्मन्मत एवानुकूलतर्कसत्त्वेन न सत्प्रतिपक्षता। प्रदीपादौ च सूक्ष्मानेकक्षणानाकलनेन क्षणिकत्वभ्रम एव परेषामिति ॥ ३५ ॥

श्रुतिन्यायविरोधाच्च ॥ ३६ ॥

सदेव सौम्येदमग्र आसीत् तम एवेदमग्र आसीदित्यादिश्रुतिभिः कथमसतः सज्जायेतेत्यादिश्रौतादियुक्तिभिश्च कार्य्यकारणात्मकाखिलप्रपञ्चे क्षणिकत्वानुमानस्य विरोधान्न क्षणिकत्वं कस्यापीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

दृष्टान्तासिद्धेश्च ॥ ३७ ॥

प्रदीपशिखादिदृष्टान्ते क्षणिकत्वासिद्धेश्च न क्षणिकत्वानुमानमित्यर्थः ॥ ३७ ॥

किञ्च क्षणिकतावादिनां मृद्घटादिस्थलेऽपि कार्य्यकारणभावः प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यथानुपपत्तिसिद्धो नोपपद्येतेत्याह।

युगपज्जायमानयोर्न कार्य्यकारणभावः ॥ ३८ ॥

किं युगपज्जायमानयोः कार्य्यकारणभावः किं वा क्रमिकयोः। तत्र नाद्यो विनिगमकाभावादिभ्य इति भावः ॥३८॥

नान्त्य इत्याह।

पूर्वापाये उत्तरायोगात् ॥ ३९ ॥

पूर्वस्य कारणस्यापायकाल उत्तरस्य कार्य्यस्योत्पत्त्यनौचित्यादपि न क्षणिकवादे सम्भवति कार्य्यकारणभावः। उपादानकारणानुगततयैव कार्य्यानुभवादित्यर्थः ॥ ३९ ॥

उपादानकारणमधिकृत्यैव दूषणान्तरमाह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न ॥४०॥

यतः पूर्वस्य भावकाल उत्तरस्यासम्बन्धोऽत उभयव्यभिचारादन्वयव्यतिरेकव्यभिचारादपि न कार्य्यकारणभाव इत्यर्थः। तथाहि यदोपादेयोत्पत्तिस्तदोपादानं यदा चोपादानाभावस्तदोपादेयोत्पत्त्यभाव इत्यन्वयव्यतिरेकेणैवोपादानोपादेययोः कार्य्यकारणभावग्रहो भवति। तत्र क्षणिकत्वेन क्रमिकयोस्तयोर्विरुद्धकालतयान्वयव्यतिरेकव्यभिचाराभ्यां न कार्य्यकारणभावसिद्धिरिति ॥ ४० ॥

ननु निमित्तकारणस्येवोपादानकारणस्यापि पूर्वभावमात्रेणैव कारणतास्तु तत्राह।

पूर्वभावमात्रे न नियमः ॥ ४१ ॥

पूर्वभावमात्राभ्युपगमे चेदमेवोपादानमिति नियमो न स्यान्निमित्तकारणानामपि पूर्वभावाविशेषात्। उपादाननिमित्तयोर्विभागः सर्वलोकसिद्ध इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

अपरे तु नास्तिका आहुः। विज्ञानातिरिक्तवस्त्वभावेन बन्धोऽपि विज्ञानमात्रं स्वप्नपदार्थवत्। अतोऽत्यन्तमिथ्यात्वेन न तत्र कारणमस्तीति। तन्मतमपाकरोति।

न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ॥ ४२ ॥

न विज्ञानमात्रं तत्त्वं बाह्यार्थानामपि विज्ञानवत् प्रतीतिसिद्धत्वादित्यर्थः ॥ ४२ ॥

ननु लाघवतर्केण स्वप्नादिदृष्टान्तैर्दृश्यत्वहेतुकमिथ्यात्वानुमानेन बाह्यवस्त्वनुभवो बाधनीयोऽत्र भवतां श्रुतिस्मृती अपि स्तांस्त्वीदं सर्वं तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिरित्यादी इत्यतो दूषणान्तरमाह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ॥ ४३ ॥

तर्हि बाह्याभावे शून्यमेव प्रसज्येत न तु विज्ञानमपि। कुतः। तदभावे तदभावाद्बाह्याभावे विज्ञानस्याप्यभावप्रसङ्गाद्विज्ञानप्रतीतेरपि बाह्यप्रतीतिवदवस्तुविषयत्वानुमानसम्भवात्। विज्ञानप्रामाण्यस्य क्वाप्यसिद्धत्वाच्च। तथा विज्ञाने प्रमाणानामपि बाह्यतयापलापाच्चेत्यर्थः। नन्वनुभवे कस्यापि विवादाभावेन नास्ति तत्र प्रमाणापेक्षेति चेन्न शून्यवादिनामेव तत्र विवादात्। अथासतापि प्रमाणेन वस्तु सिध्यति विषयाबाधस्यैव प्रामाण्यप्रयोजकत्वान्न तु प्रमाणपारमार्थिकत्वस्येति चेन्न। एवं सत्यसत्प्रमाणस्य सर्वत्र सुलभत्वेन क्वाप्यर्थे प्रमाणान्वेषणस्यायोगात्। अथासन्मध्येऽपि व्यावहारिकसत्त्वरूपो विशेषः प्रमाणादिष्विष्टव्य इति चेत्। आयातं मार्गेण। किं पुनरिदं व्यावहारिकत्वम्। यदि परिणामित्वं तदास्माभिरपीष्टमेव सत्त्वं ग्राह्यग्राहकप्रमाणानामिष्टं शुक्तिरजतादितुल्यत्वस्यैव प्रपञ्चेऽस्माभिः प्रतिषेधात्। यदि पुनः प्रतीयमानतामात्रं तदापि तादृशैरेव प्रमाणैर्बाह्यार्थस्यापि सिद्धिप्रसङ्गात्। लाघवतर्कानुगृहीतेन यथाकथञ्चिदनुमानेनैव बाधस्तु विज्ञानेऽपि समान इति। एतेनाधुनिकानां वेदान्तिब्रुवाणामपि मतं विज्ञानवादतुल्ययोगक्षेमतया निरस्तम्। विज्ञानमात्रसत्यताप्रतिपादकश्रुतिस्मृतयस्तु कूटस्थत्वरूपां पारमार्थिकसत्तामेव बाह्यानां प्रतिषेधन्ति। न तु परिणामित्वरूपां व्यावहारिकसत्तामपि।

यत् तु कालान्तरेणापि नान्यसंज्ञामुपैति वै।
परिणामादिसम्भूतां तद्वस्तु नृप! तच्च किम्॥
वस्तु राजेति यल्लोके यत् तु राजभटादिकम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथान्यच्च नृपेत्थं तु न सत् सङ्कल्पनामयम् ॥

इति विष्णुपुराणादिभ्यः परिणामित्वस्यैवासत्त्वावग-मादिति। सङ्कल्पनामयमीश्वरादिसङ्कल्परचितम्। एतेन।

विज्ञानमयमेवैतदशेषमवगच्छत।

इत्यादिना विष्णुपुराणे मायामोहरूपिणा विष्णुनासुरेभ्योऽपि तत्त्वमेवोपदिष्टम्। ते त्वनधिकारादिदोषैर्विपरीतार्थग्रहणेन विज्ञानवादिनो नास्तिका बभूवुरित्यवगन्तव्यम्। तदेतत् सर्वं ब्रह्ममीमांसाभाष्ये मायावादनिरसनप्रसङ्गतो विस्तारितमस्माभिः॥ ४३॥

नन्वेवं भवतु शून्यमेव तत्त्वं तदा सुतरामेव बन्धकारणान्वेषणं न युक्तं तुच्छत्वादिति नास्तिकशिरोमणिः प्रत्यवतिष्ठते।

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ॥ ४४ ॥

शून्यमेव तत्त्वं यतः सर्वोऽपि भावो विनश्यति यश्च विनाशी स मिथ्या स्वप्नवत्। अतः सर्ववस्तूनामाद्यन्तयोरभावमात्रत्वान्मध्ये क्षणिकसत्त्वं सांवृत्तिकं न पारमार्थिकं बन्धादि। ततः किं केन बध्येतेत्याशयः। भावानां विनाशित्वे हेतुर्वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्येति। विनाशस्य वस्तुस्वभावत्वात्। स्वभावं तु विहाय न पदार्थस्तिष्ठतीत्यर्थः ॥४४॥

परिहरति।

अपवादमात्रमबुद्धानाम् ॥ ४५ ॥

भावत्वाद्विनाशित्वमिति मूढानामपवादमात्रं मिथ्यावाद एव। नाशकारणाभावेन निरवयवद्रव्याणां नाशासम्भवात्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कार्य्याणामपि विनाशासिद्धेश्च। घटो जीर्ण इति प्रत्ययवदेव घटोऽतीत इत्यादिप्रतीत्या घटादेरतीताख्याया अवस्थाया एव सिद्धेः। अव्यक्ततायाश्च कार्य्यातीतताभ्युपगमेऽस्मन्मत-प्रवेश एव। किञ्च विनाशस्य प्रपञ्चतत्त्वाभ्युपगमेऽपि विनाश एव बन्धस्य पुरुषार्थः सम्भवत्येवेति। कश्चित् तु व्याचष्टे। शून्यं तत्त्वमित्यज्ञानां कुत्सितवादमात्रं न पुनरत्र युक्तिरस्ति। प्रमाणसत्त्वासत्त्वविकल्पासहत्वात्। शून्ये प्रमाणाङ्गीकारे तेनैव शून्यताक्षतिः। अनङ्गीकारे प्रमाणाभावान्न शून्यसिद्धिः। स्वतः सिद्धौ च चिद्रूपताद्यापत्तिरित्यर्थ इति। न च।

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥
सर्वशून्यं निरालम्बं स्वरूपं यत्र चिन्त्यते।
अभावयोगः स प्रोक्तो येनात्मानं प्रपश्यति॥

इति श्रुतिस्मृतिभ्यामपि शून्यं तत्त्वतया प्रतिपाद्यत इति वाच्यम्। पुरुषाणां निरोधाद्यभावस्यैव तादृशीषु श्रुतिषु तत्त्वतयोक्तत्वात्। पूर्वोत्तरवाक्याभ्यां पुरुषस्यैव प्रकरणात्। विलीनविश्वचिदाकाशस्यैवैतादृशस्मृतिषु तत्त्वतया प्रतिपाद-नाच्च।

त्रैलोक्यं गगनाकारं नभस्तुल्यं वपुः स्वकम्।
वियद्गामि मनो ध्यायन् योगी ब्रह्मैव गीयते॥

इत्यादिवाक्यान्तरैरेकवाक्यत्वात्। आकाशशून्ययोः पर्य्या-यत्वादिति। मनोमहत्तत्त्वाद्यखिलान्तःकरणं वियद्गामि चिदाकाशे लीनम्॥ ४५॥

दूषणान्तरमाह।

उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि॥ ४६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षणिकबाह्यविज्ञानोभयपक्षयोः समानक्षेमत्वात् तुल्य-निरसनहेतुकत्वादयमपि पक्षो विनश्यतीत्यनुषङ्गः। क्षणिक-पक्षनिरासहेतुर्हि प्रत्यभिज्ञानुपपत्त्यादिः शून्यवादेऽपि समानः। तथा विज्ञानपक्षनिरासहेतुर्बाह्यप्रतीत्यादिरप्यत्र समान इत्यर्थः॥ ४६॥

यदपि दुःखनिवृत्तिरूपतया तत्साधनतया वा शून्यतै-वास्तु पुरुषार्थ इति तैर्मन्यते तदपि दुर्घटमित्याह।

अपुरुषार्थत्वमुभयथा॥ ४७॥

उभयथा स्वतः परतश्च शून्यतायाः पुरुषार्थत्वं न सम्भ-वति। स्वनिष्ठत्वेनैव सुखादीनां पुरुषार्थत्वात्। स्थिरस्य च पुरुषस्यानभ्युपगमादित्यर्थः॥ ४७॥

तदेवं बन्धकारणविषये नास्तिकमतानि दूषितानि। इदानीं पूर्वनिरस्तावशिष्टान्यास्तिकसम्भाव्यान्यप्यन्यानि बन्धकारणानि निरस्यन्ते।

न गतिविशेषात्॥ ४८॥

प्रकरणाद्बन्धो लभ्यते। न गतिविशेषात् शरीरप्रवेशा-दिरूपादपि पुरुषस्य बन्ध इत्यर्थः॥ ४८॥

अत्र हेतुमाह।

निष्क्रियस्य तदसम्भवात्॥ ४९॥

निष्क्रियस्य विभोः पुरुषस्य गत्यसम्भवादित्यर्थः॥ ४९॥

ननु श्रुतिस्मृत्योरिहलोकपरलोकगमनागमनश्रवणात् पुरुषस्य परिच्छिन्नत्वमेवास्तु। तथा च श्रुतिरपि। अङ्गुष्ठ-मात्रः पुरुषोऽन्तरात्मेत्यादिरित्याशङ्कामपाकरोति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूर्त्तत्वाद्घटादिवत् समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः ॥ ५० ॥

यदि च घटादिवत् पुमान् मूर्त्तः परिच्छिन्नः स्वीक्रियते। तदा सावयवत्वविनाशित्वादिना घटादिसमानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः स्यादित्यर्थः ॥ ५० ॥

गतिश्रुतिमुपपादयति ।

गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ॥ ५१ ॥

या च गतिश्रुतिरपि पुरुषेऽस्ति सा विभुत्वश्रुतिस्मृतियुक्त्यनुरोधेनाकाशस्येवोपाधियोगादेव मन्तव्येत्यर्थः । तत्र च प्रमाणम् ।

घटसंवृतमाकाशं नीयमाने घटे यथा ।
घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः ॥

बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः ।

इत्यादिश्रुतिः । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरित्यादिका च स्मृतिः । मध्यमपरिमाणत्वे सावयवत्वापत्त्या विनाशित्वमणुत्वे च देहव्यापिज्ञानाद्यनुपपत्तिरित्यादिश्च युक्तिरिति । अत एव ।

प्रकृतिः कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ।
प्रकृतिश्च तदश्नाति त्रिषु लोकेषु कामगा ॥

इत्यादिस्मृतिभिः प्रकृतेरेव विशिष्य क्रियारूपा गतिः स्मर्य्यत इति ॥ ५१ ॥

न कर्मणाप्यतद्धर्मत्वात् ॥ ५२ ॥

कर्मणा दृष्टेनापि साक्षान्न पुरुषस्य बन्धः । कुतः । पुरुषधर्मत्वाभावादित्यर्थः । पूर्वं विहितनिषिद्धव्यापाररूपेण कर्मणा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बन्धो निराकृतः। अत्र तु तज्जन्यादृष्टेनेत्यार्थिकविभागादपौनरुक्त्यम्॥ ५२॥

नन्वन्यधर्मेणाप्यन्यस्य बन्धः स्यात् तत्राह।

अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे॥ ५३॥

बन्धतत्कारणयोर्भिन्नधर्मत्वेऽतिप्रसक्तिर्मुक्तस्यापि बन्धापत्तिरित्यर्थः॥ ५३॥

किं बहुना। स्वभावादिकर्मान्तैरन्येन वा केनापि पुरुषस्य बन्धोत्पत्तिर्न घटते श्रुतिविरोधादिति साधारणं बाधकमाह।

निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति॥ ५४॥

पुरुषबन्धस्यानौपाधिकत्वे साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चेत्यादिश्रुतिविरोधश्चेत्यर्थः। इतिशब्दो बन्धहेतुपरीक्षासमाप्तौ॥ ५४॥

तदेवं न स्वभावतो बद्धस्येत्यादिना प्रघट्टकेनेतरप्रतिषेधतः प्रकृतिपुरुषसंयोग एव साक्षाद्बन्धहेतुरवधारितः। तत्रेयमाशङ्का। ननु प्रकृतिसंयोगोऽपि पुरुषे स्वाभाविकत्वादिविकल्पग्रस्तः कथं न भवति संयोगस्य स्वाभाविकत्वकालादिनिमित्तकत्वे हि मुक्तस्यापि बन्धापत्तिरित्यादिदोषा यथायोग्यं समाना एवेति। तामिमामाशङ्कां परिहरति।

तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम्॥ ५५॥

पूर्वोक्ततद्योगोऽपि पुरुषस्याविवेकाद्वक्ष्यमाणादविवेकादेव हि निमित्तात् संयोगो भवति। अतो नोक्तदोषाणां समानत्वमस्तीत्यर्थः। स चाविवेको मुक्तेषु नास्तीति न तेषां पुनः संयोगो भवतीति। नन्वविवेकोऽत्र न प्रकृतिपुरुषाभेद-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साक्षात्कारः । संयोगात्प्रागसत्त्वात् । किन्तु विवेकप्रागभावो विवेकाख्यज्ञानवासना वा तदुभयमपि न पुरुषधर्मः । किन्तु बुद्धिधर्म एवेत्यन्यधर्मेणान्यत्र संयोगेऽतिप्रसङ्गदोषसाम्यमस्त्येवेति चेत् । नैवम् । विषयतासम्बन्धेनाविवेकस्य पुरुषधर्मत्वात् । तथा च प्रकृतिर्बुद्धिरूपा सती यस्मै स्वामिपुरुषाय तत्त्वं विविच्य न दर्शितवती स्ववृत्तिदर्शनार्थं तदीयबुद्धिरूपेण तत्रैव पुरुषे संयुज्यत इति व्यवस्थयातिप्रसङ्गाभावात् । तदुक्तं कारिकया ।

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥

इति । स्वामिने पुरुषाय प्रधानेन दर्शयितुं तयोः कैवल्यार्थं चेत्यर्थः । अविवेकस्य वृत्तिरूपत्वं तु वाह्यत्वं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेरित्यागामिसूत्रे वक्ष्यामः । अविवेकस्य संयोगद्वारैव बन्धकारणं प्रलये बन्धादर्शनात् । अविवेकनाशेऽपि जीवन्मुक्तस्य दुःखभोगदर्शनाच्च । अतः साक्षादेवाविवेको बन्धकारणं प्राङ्नोक्तः । ननु भोग्यभोक्तृभावनियामकत्वेन स्वस्वामिभावस्य कर्मादीनां वा संयोगहेतुत्वमस्तु किमित्यविवेकोऽपि संयोगहेतुरिष्यत इति चेन्न ।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

इति गीतायां सङ्गाख्याभिमानस्य संयोगहेतुत्वस्मरणात् । वक्ष्यमाणाद्विवाक्ययुक्तिभ्यस्तान्यथा ज्ञानतामोक्षस्य श्रुतिस्मृतिसिद्धस्यानुपपत्तेश्च । यथैवमपि स्वोपाधिकर्मादिकमपि संयोगकारणं भवति तद्विहाय कथमविवेक एव केवलं तत्र कारणमुच्यत इति । उच्यते । अविवेकापेक्षया कर्मादीनामपि परम्परयैव पुरुषसम्बन्धः । तथाविवेक एव पुरुषेण साक्षाच्छेत्तुं

४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रूयते कर्मादिकं त्वविवेकाख्यहेतूच्छेदद्वारैवेत्याशयेनाविवेक एव मुख्यतः संयोगहेतुतयोक्त इति। अयं चाविवेकोऽगृहीता-संसर्गकमुभयज्ञानमविद्याख्यलाभिषिक्त एव विवक्षितः। बन्धो विपर्ययाद्विपर्ययभेदाः पञ्चेत्यागामिसूत्रद्वयात्। तस्य हेतुरवि-द्येति योगसूत्रेऽप्यविद्याया एव पञ्चपर्याया बुद्धिपुरुषसंयोग-हेतुतावचनाच्चान्यथाख्यात्यनभ्युपगममात्र एव योगतोऽत्र विशेषौचित्यात्। न पुनरविवेकोऽत्राभावमात्रं विवेकप्रागभावो वा। मुक्तस्यापि बन्धापत्तेः। जीवन्मुक्तस्यापि भाविविवेक-व्यक्तिप्रागभावेन धर्माधर्मोत्पत्तिद्वारा पुनर्बन्धप्रसङ्गाच्च। तथा-गामिसूत्रस्थध्वान्तदृष्टान्तानुपपत्तेश्च। अभावस्य ध्वान्तवदा-वरकत्वासम्भवात्। तथा वृद्धिह्रासावप्यविवेकस्य श्रूयमाणौ नोपपद्येयातामिति। अस्मन्मते च वासनारूपस्यैवाविवेकस्य संयोगाख्यजन्महेतुतया तमोवदावरकत्ववृद्धिह्रासादिकमञ्ज-सैवोपपद्यते। तस्य हेतुरविद्येति पातञ्जलसूत्रे च भाष्यकारै-रविद्याशब्देनाविद्यावीजं व्याख्यातम्। ज्ञानस्य संयोगोत्तर-कालीनत्वेन संयोगाजनकत्वादिति। अपि च पुरुषः प्रकृ-तिस्थो हि भुङ्क्ते इत्यादिवाक्येष्वभिमानाख्यसंयोगस्यैव प्रकृतिस्थताख्यसंयोगहेतुतावगम्यते। अत एव चाविद्या नाभावोऽपि तु विद्याविरोधिज्ञानान्तरमिति योगभाष्ये व्यास-देवैः प्रयत्नेनावधृतम्। तस्मादविवेकाविद्ययोस्तुल्ययोगक्षेम-तयाविवेकस्यापि ज्ञानविशेषत्वमिति सिद्धम्। अयञ्चाविवेक-स्त्रिधा संयोगाख्यजन्महेतुः साक्षाद्धर्माधर्मोत्पत्तिद्वारा रागा-दिदृष्टद्वारा च भवति। सति मूले तद्विपाक इति योगसूत्रात् कर्त्तास्मीति निबध्यत इति स्मृतेः। वीतरागजन्मादर्शनादिति न्यायसूत्राच्च। तदुक्तं मोक्षधर्मेऽपि।

ज्ञानेन्द्रियाणीन्द्रियार्थो नोपसर्पन्त्यतर्षुलम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हीनश्च करणैर्देही न देहं पुनरर्हति ।
तस्मात् तर्षात्मकाद्रागाद्बीजाज्जायन्ति जन्तवः ॥

इति । रागस्त्वविवेककार्य्यं इति योगसूत्राभ्यामप्येतत् प्रत्येतव्यं समानतन्त्रन्यायात् । तच्च सूत्रद्वयं क्लेशमूलः क्लेशशाकर्माशयः । सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा इति क्लेशाविद्यादिपञ्चकमिति । अविवेकस्य बन्धजनने द्वारजातं च पिण्डीकृत्येश्वरगीतायामुक्तम् ।

अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद् दुःखं तथेतरत् ।
रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः ॥
कार्य्यो ह्यस्य भवेद्दोषः पुण्यापुण्यमिति श्रुतिः ।
तद्दोषादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः ॥

इति । एतदेव न्याये सूत्रितम् । दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग इति तदेवं संयोगाख्यजन्मद्वारा बन्धाख्यहेयस्य मूलकारणमविवेक इति हेयहेतुः प्रतिपादितः ॥ ५५ ॥

इतः परं क्रमप्राप्तं हानोपायव्यूहमतिविस्तरेणाशास्त्रसमाप्तिः प्रतिपादयति । अन्तरान्तरा चोक्तव्यूहानपि विस्तारयिष्यति ।

नियतकारणात् तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत् ॥५६॥

शुक्तिरजतादिस्थले लोकसिद्धं यन्नियतकारणं विवेकसाक्षात्कारस्तस्मात् तस्याविवेकस्योच्छित्तिर्भवति ध्वान्तवत् । यथा ध्वान्तमालोकादेव नियतकारणान्नश्यति नोपायान्तरेण तथैवाविवेकोऽपि विवेकादेव नश्यति न तु कर्मादिभ्यः साक्षादित्यर्थः । तदेतदुक्तं योगसूत्रेण विवेकख्यातिरविप्लवा हानो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पाय इति कर्मादीनि तु ज्ञानस्यैव साधनानि योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेरिति योगसूत्रेण स त्व-शुद्धिद्वारा ज्ञान एव योगाङ्गान्तर्गतसर्वकर्मणां साधनत्वाव-धारणादिति। प्राचीनास्तु वेदान्तिनो मोक्षेऽपि कर्मणो ज्ञानाङ्गत्वमाहुः। विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सहावि-द्ययामृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुत इति श्रुतौ सहकारित्वेन चेति वेदान्तसूत्रे चाङ्गाङ्गिभावेन ज्ञानकर्मणोः सहकारित्वा-वधारणात्।

ज्ञानिनाज्ञानिना वापि यावद्देहस्य धारणम्।
तावद्वर्णाश्रमप्रोक्तं कर्त्तव्यं कर्ममुक्तये॥

इत्यादिस्मृतेश्च। उपमर्दं चेति वेदान्तसूत्रेण तु कर्म-त्यागो योगारूढस्य न्यायप्राप्तोऽनूद्यत एव ज्ञानस्य मुख्यतो मोक्षहेतुत्वं व्यवस्थापयितुम्। यदि हि विक्षेपकत्वात् कर्म ज्ञानाभ्यासस्य विरोधि भवेत् तदा गुणलोपे न गुणिन इति न्यायेन प्रधानरक्षार्थमङ्गभूतं कर्मैव त्याज्यं जडभरतादिवदि-त्याशयादिति। तेषां मतेऽपि विवेकद्वारतां विना विवेकनाश-कत्वं कर्मणो नैव सिध्यतीति न तद्विरोधः। अत्र सूत्रे ध्वान्तस्यालोकनाश्यत्ववचनात् तमोऽपि द्रव्यमेव। न त्वालो-काभावः। असति बाधके नीलं तम इत्यादिप्रत्ययानां भ्रम-त्वानौचित्यात्। न च क्लृप्तेनैवोपपत्तावतिरिक्तकल्पनागौरव-मेव बाधकमिति वाच्यम्। एवं च सति विज्ञानमात्रेणैव स्वप्न-वत् सर्वव्यवहारोपपत्तावतिरिक्तकल्पनागौरवेण बाह्यार्थप्रती-तेरपि बाधापत्तेः। तस्मादत्र प्रामाणिकत्वाद्गौरवं न दोषा-येति। ननु विवेकज्ञानं विनाप्यविवेकाख्यज्ञानव्यक्तीनां स्वस्व-तृतीयक्षणेऽवश्यं विनाशाज्ज्ञानस्य तन्नाशकत्वं किमर्थमिष्यत इति चेत्। अविवेकशब्देन तद्वासनाया एव पूर्वसूत्रे व्याख्या-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्त्वात्। अनागतावस्थस्य अविवेकस्यास्मन्मते नाशसम्भवाच्चेति ॥ ५६ ॥

ननु प्रकृतिपुरुषाविवेक एव चेत्थं संयोगद्वारा बन्धहेतुस्तयोर्विवेक एव च मोक्षहेतुस्तर्हि देहाद्यभिमानसत्त्वेऽपि मोक्षः स्यात्। तच्च श्रुतिस्मृतिन्यायविरुद्धमिति तत्राह।

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम् ॥ ५७ ॥

पुरुषे प्रधानाविवेकात् कारणाद्योऽन्याविवेको बुद्ध्याद्यविवेको जायते कार्य्याविवेकस्य कार्य्यतयानादिकारणाविवेकमूलकत्वात् तस्य प्रधानाविवेकहाने सत्यवश्यं हानमित्यर्थः। यथा शरीरादात्मनि विविक्ते शरीरकार्य्येषु रूपादिष्वविवेको न सम्भवति तथा कूटस्थत्वादिधर्मैः प्रधानात् पुरुषे विविक्ते तत्कार्य्येषु परिणामादिधर्मकेषु बुद्ध्यादिष्वभिमानो नोत्पत्तुमुत्सहते तुल्यन्यायात् कारणनाशाच्चेति भावः। तदेतत् स्मर्य्यते।

चित्राधारपटत्यागे त्यक्तं तस्य हि चित्रकम्।
प्रकृतेर्विरमे चेत्थं ध्यायिनां के स्मरादयः॥

इति। विरमो विरामस्त्यागः। आदिशब्देन द्रव्यरूपा अपि विकारा ग्राह्या इति। यच्च बुद्धिपुरुषविवेकादेव मोक्ष इत्यपि क्वचिदुच्यते। तत्र स्थूलसूक्ष्मबुद्धिग्रहणात् प्रकृतेरपि ग्रहणम्। अन्यथा बुद्धिविवेकेऽपि प्रकृत्यभिमानसम्भवादिति। ननु बुद्ध्याद्यभिमानातिरिक्ते प्रकृत्यभिमाने किं प्रमाणमहमज्ञ इत्याद्यखिलाभिमानानां बुद्ध्यादिविषयत्वेनैवोपपत्तेरिति चेन्न।

मृत्वा मृत्वा पुनः स्रष्टौ स्वर्गी स्यां मा च नारकी।

इत्याद्यभिमानानां प्रधानविषयत्वं विनानुपपत्तेः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतीतानां बुद्ध्याद्यखिलकार्य्याणां पुनः सूक्ष्मभावात् प्रधानस्य त्विदमेव प्रलयानन्तरं जन्म यद्बुद्ध्यादिरूपैकपरिणामत्यागेनापरबुद्ध्यादिरूपतया परिणमनमिति। न चात्मनि जन्मादिज्ञानमभिमान एव न भवति पुरुषस्यापि लिङ्गशरीरसंयोगवियोगरूपयोर्जन्ममरणयोः पारमार्थिकत्वादिति वाच्यम्।

न जायते म्रियते वा कदाचित्।
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः॥

इत्यादिवाक्यैर्जन्मादिप्रतिषेधेनोत्पत्तिविनाशाभिमानरूपस्यात्मनि जन्मादिज्ञानस्य सिद्धेरप्रसक्तस्य प्रतिषेधायोगात्। किञ्च बुद्ध्यादिषु पुरुषाणामभिमानोऽनादिर्वक्तुं न शक्यते बुद्ध्यादीनां कार्य्यत्वात्। अतः कार्य्येष्वभिमानव्यवस्थार्थं नियामकाकाङ्क्षायां कारणाभिमान एव नियामकतया सिध्यति लोके दृष्टत्वात् कल्पनायाश्च दृष्टानुसारित्वात्। यथा लोके दृष्टः क्षेत्राभिमानात् क्षेत्रजन्यधान्यादिष्वभिमानः। सुवर्णाभिमानाच्च तज्जन्यकटकादिष्वभिमानः। तयोर्निवृत्त्या च तयोर्निवृत्तिरिति प्रधानाभिमानतद्वासनयोश्च बीजाङ्कुरवदनादित्वान्न तदभिमाने नियामकान्तरापेक्षेति॥ ५७॥

एवं प्रतिपादिते चतुर्व्यूहे पुनरियमाशङ्का। ननु पुरुषे चेद्बन्धमोक्षौ विवेकाविवेकौ स्वीकृतौ तर्हि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्येति स्वोक्तिविरोधः। तथा च।

न विरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

इत्यादिश्रुतिविरोधश्चेति। तां परिहरति।

वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः॥५८॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बन्धादीनां सर्वेषां चित्त एवावस्थानात् तत् पुरुषे वास्तवं सर्वं स्फटिकलौहित्यवत् प्रतिबिम्बमात्रत्वान्न तु तत्त्वं तस्य भावः। अनारोपितं जपालौहित्यवदित्यर्थः। अतो नोक्तविरोध इति भावः। स समानः सन्नुभौ लोकावनुसञ्चरति ध्यायतीव लेलायतीवेत्यादिश्रुतयस्त्वत्र प्रमाणम्। पुरुषः समानो लोकयोरेकरूपः। इवशब्दाभ्यां नानारूपत्वस्यौपाधिकत्वमुक्तम्। तथा चोक्तम्।

बन्धमोक्षौ सुखं दुःखं मोहापत्तिश्च मायया।
स्वप्ने यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी॥

इति। मायया मायाख्यप्रकृत्यौपाधिकौत्यर्थः। नन्वेवं तुच्छस्य बन्धस्य हानं कथं पुरुषार्थः कथं वान्यधर्माभ्यामविवेकविवेकाभ्यामन्यस्य बन्धमोक्षस्वीकारे कर्मादिभिरिव नाव्यवस्थेति चेदत्रोक्तप्रायमपि पुनः प्रपञ्च्यते। यद्यपि दुःखयोगरूपो बन्धो वृत्तिरूपौ च विवेकाविवेकौ चित्तस्यैव तथापि पुरुषे दुःखप्रतिबिम्ब एव भोग इत्यवस्तुत्वेऽपि तद्धानं पुरुषार्थः। दुःखं मा भुञ्जायेति प्रार्थनात्। एवं यस्मै पुरुषाय प्रकृतिरविवेकेनात्मानं दर्शितवती तद्वासनावशात् तमेव संयोगद्वारा बध्नाति नान्यम्। तथा यस्मै विवेकेनात्मानं दर्शितवती तमेव स्ववियोगद्वारा मोचयति। वासनोच्छेदादिति व्यवस्थापि घटत इति। कर्मादिभिर्बन्धाभ्युपगमे त्वेवं व्यवस्था न घटते। कर्मादीनां साक्षिभास्यत्वाभावेन साक्षात् पुरुषेष्वप्रतिबिम्बनादिति॥ ५८॥

ननु बन्धादिकं चेत् पुरुषे वास्तवं तर्हि श्रवणेन युक्त्या वा तस्य बाधो भवतु किमर्थं श्रुतिस्मृत्योः साक्षात्कारपर्य्यन्तं विवेकज्ञानमुपदिश्यते मोक्षहेतुतयेति। तत्राह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते ॥ ५९ ॥

युक्तिर्मननम् । अपिशब्दः श्रवणसमुच्चयार्थः । वाङ्मात्रमपि पुरुषस्य बन्धादिकं श्रवणमननमात्रेण न बाध्यते साक्षात्कारं विना यथा दिङ्मूढस्य जनस्य वाङ्मात्रमपि दिग्वैपरीत्यं श्रवणयुक्तिभ्यां न बाध्यते साक्षात्कारं विनेत्यर्थः । प्रकृते चेदमेव बाध्यत्वं यत्पुरुषे बन्धादिबुद्धिनिवृत्तिर्न त्वभावसाक्षात्कारः श्रवणादिना तदुत्पत्तिसम्भावनाया अप्यभावादिति । अथवेत्थं व्याख्येयम् । ननु नियतकारणात् तदुच्छित्तिरित्यनेन विवेकज्ञानमविवेकोच्छेदकमुक्तम् । तज्ज्ञानं किं श्रवणादिसाधारणमुतास्ति कश्चिद्विशेष इत्याकाङ्क्षायामाह । युक्तितोऽपीत्यादिसूत्रम् । अविवेको युक्तितः श्रवणतश्च न बाध्यते नोच्छिद्यते विवेकापरोक्षं विना दिङ्मोहवदित्यर्थः । साक्षात्कारभ्रमे साक्षात्कारविशेषदर्शनस्यैव विरोधित्वादिति ॥५९॥

तदेवं विवेकसाक्षात्कारान्मोक्षं प्रतिपाद्येतः परं विवेकः प्रतिपादनीयः । तत्रादौ प्रकृतिपुरुषादीनां विवेकतः सिद्धौ प्रमाणान्युपन्यस्यन्ते ।

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः ॥ ६० ॥

अचाक्षुषाणामप्रत्यक्षाणाम् । केचित् तावत् पदार्थाः स्थूलभूततत्कार्यदेहादयः प्रत्यक्षसिद्धा एव । प्रत्यक्षेणासिद्धानां प्रकृतिपुरुषादीनामनुमानेन प्रमाणेन बोधः पुरुषनिष्ठफलसिद्धिर्भवति यथा धूमादिभिर्जनितेनानुमानेन वह्नेः सिद्धिरित्यर्थः । अनुमानासिद्धमप्यागमात् सिध्यतीत्यपि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बोध्यम्। अस्य शास्त्रस्यानुमानप्राधान्यात् तु केवलानुमानस्य मुख्यतयैवोपन्यासो न त्वागमस्यानपेक्षेति। तथा च कारिका।

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्।
तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम्॥

इति। अनेन च सूत्रेणेदं मननशास्त्रमित्यवगम्यते॥६०॥

उक्तप्रमाणैः साध्यस्य विवेकस्य प्रतियोग्यनुयोगिपदार्थानां संग्रहसूत्रं वक्ष्यमाणानुमानोपयोगिकार्य्यकारणभावमपि प्रदर्शयति।

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥ ६१॥

सत्त्वादीनि द्रव्याणि न वैशेषिका गुणाः संयोगविभागवत्त्वात्। लघुत्वचलत्वगुरुत्वादिधर्मकत्वादिधर्मकत्वाच्च। तेष्वत्र शास्त्रे श्रुत्यादौ च गुणशब्दः पुरुषोपकरणत्वात् पुरुषपशुबन्धकत्रिगुणात्मकमहदादिरज्जुनिर्मातृत्वाच्च प्रयुज्यते। तेषां सत्त्वादिद्रव्याणां या साम्यावस्था न्यूनानतिरिक्तावस्था न्यूनाधिकभावेनासंहतावस्थेति यावत्। अकार्य्यावस्थेति निष्कर्षः। अकार्य्यावस्थोपलक्षितं गुणसामान्यं प्रकृतिरित्यर्थः। यथाश्रुते वैषम्यावस्थायां प्रकृतिनाशप्रसङ्गात्।

सत्त्वं रजस्तम इति एषैव प्रकृतिः सदा।
एषैव संसृतिर्जन्तोरस्याः पारे परं पदम्॥

इत्यादिस्मृतिभिर्गुणमात्रस्यैव प्रकृतित्ववचनाच्च। सत्त्वादीनामनुगमाय सामान्येति। पुरुषव्यावर्त्तनाय गुणेति। महदादिव्यावर्त्तनाय चोपलक्षितान्तमिति। महदादयोऽपि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हि कार्य्यसत्त्वादिरूपाः पुरुषोपकरणतया गुणाश्च भवन्तीति। तदत्र प्रकृतेः स्वरूपमेवोक्तम्। अस्या विशेषस्तु पश्चाद्वच्यते। प्रकृतेः कार्य्यो महान् महत्तत्त्वम्। महदादीनां स्वरूपं विशेषश्च वच्यते। महतश्च कार्य्योऽहङ्कारः। अहङ्कारस्य कार्य्यद्वयं तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं च। तत्रोभयमिन्द्रियं बाह्याभ्यन्तर-भेदेनैकादशविधम्। तन्मात्राणां कार्य्याणि पञ्च स्थूलभूतानि। स्थूलशब्दात् तन्मात्राणां सूक्ष्मभूतत्वमभ्युपगतम्। पुरुषस्तु कार्य्यकारणविलक्षण इति। इत्येवं पञ्चविंशतिर्गणः पदार्थ-व्यूह एतदतिरिक्तः पदार्थो नास्तीत्यर्थः। अथवा सत्त्वादीनां प्रत्येकव्यक्त्यानन्त्यं गणशब्दो वक्ति। अयं च पञ्चविंशतिको गणो द्रव्यरूप एव। धर्मधर्म्यभेदात् तु गुणकर्मसामान्यादी-नामत्रैवान्तर्भावः। एतदतिरिक्तपदार्थसत्त्वे हि ततोऽपि पुरु-षस्य विवेक्तव्यतया तदसंग्रहन्यूनतापद्येत। एतेन सांख्या-नामनियतपदार्थाभ्युपगम इति मूढप्रलाप उपेक्षणीयः। दिक्कालौ चाकाशमेव। दिक्कालावाकाशादिभ्य इत्यागामि-सूत्रात्। एत एव पदार्थाः परस्परप्रवेशाभ्यां क्वचित् तन्त्र एक-मेव क्वचित् तु षट् क्वचिच्च षोडश क्वचिच्च संख्यान्तरैरप्युप-दिश्यन्ते। विशेषस्तु साधर्म्यवैधर्म्यमात्र इति मन्तव्यम्। तथा चोक्तं भागवते।

एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च।
पूर्वस्मिन् वा परस्मिन् वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः॥
इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम्।
सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम्॥

इति। एते च पदार्थाः श्रुतिष्वपि गणिताः यथा गर्भोप-निषदि। अष्टौ प्रकृतयः षोडश विकारा इति। प्रश्नोपनि-षदि च पृथिवी च पृथिवीमात्रा चेत्यादिना। एवं मैत्रेयोप-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निषदादिष्वपि। अष्टौ च प्रकृतयः कारिकया व्याख्याताः।

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥

इति। एकमेवाद्वितीयं तत्त्वमिति श्रुतिस्मृतिप्रवादस्तु सर्वतत्त्वानां पुरुषे विलापनेन शक्तिशक्तिमदभेदेनेत्यविरोधः। लयस्तु सूक्ष्मीभावेनावस्थानं न तु नाश इति तदुक्तम्।

आसीज्ज्ञानमथोऽप्यर्थ एकमेवाविकल्पितम्।

अविकल्पितमविभक्तम्। एतच्च ब्रह्ममीमांसाभाष्येऽद्वैतप्रसङ्गतो विस्तरेणोपपादितम्। विशेषस्त्वयं यत् सेश्वरवादेऽन्यतत्त्वानां तत्रैवाविभागादीश्वरचैतन्यमेवैकं तत्त्वम्। निरीश्वरवादे तु विवेणिवदन्योन्याविभक्ततयैकस्मिन् कूटस्थे तेजोमण्डलवदादित्यमण्डले प्रकृत्याख्यसूक्ष्मावस्थया महदादेरविभागादात्मैवैकं तत्त्वमिति तथा च वक्ष्यति। नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वादिति॥ ६१॥

एतेषु पदार्थेष्वचाक्षुषाणामनुमानेन बोधं प्रतिपादयति सूत्रजातेन।

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य॥ ६२॥

बोध इत्यनुवर्त्तते स्थूलं तावच्चाक्षुषमेव तच्च तन्मात्रकार्य्यतयोक्तम्। ततः स्थूलभूतात् कार्य्यात् तत्कारणतया तन्मात्रानुमानेन स्थूलविवेकतो बोधः इत्यर्थः। आकाशसाधारणाय स्थूलत्वमत्र बाह्येन्द्रियग्राह्यगुणकत्वं शान्तादिविशेषवत्त्वं वा। तन्मात्राणि च यज्जातीयेषु शान्तादिविशेषत्रयं न तिष्ठति तज्जातीयानां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानामाधारभूतानि सूक्ष्मद्रव्याणि स्थूलानामविशेषाः।

तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रास्तेन तन्मात्रता स्मृता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषिणः॥

इति विष्णुपुरादिभ्यः। अस्यायमर्थः तेषु तेषु भूतेषु तन्मात्रास्तिष्ठन्तीति कृत्वा धर्मधर्म्यभेदाद्द्रव्याणामपि तन्मात्रता स्मृता। ते च पदार्थाः शान्तघोरमूढाख्यैः स्थूलगतशब्दादिविशेषैः शून्या एकरूपत्वात्। तथा च शान्तादिविशेषशून्यशब्दादिमत्त्वमेव भूतानां शब्दादितन्मात्रत्वमित्याशयः। अतोऽविशेषसंज्ञिता इति। शान्तं सुखात्मकं घोरं दुःखात्मकं मूढं मोहात्मकम्। तन्मात्राणि च देवादिमात्रभोग्यत्वेन केवलं सुखात्मकान्येव सुखाधिक्यादिति। अत्रेदमनुमानम्। अपकर्षकाष्ठापन्नानि स्थूलभूतानि स्वविशेषगुणवद्द्रव्योपादानकानि स्थूलत्वाद्घटपटादिवदिति। अत्रानवस्थापत्त्या सूक्ष्ममादायैव साध्यं पर्य्यवस्यति। अनुकूलतर्कश्चात्र कारणगुणक्रमेण कार्य्यगुणोत्पत्तेर्बाधकव्यतिरेकेणापरिहार्य्यत्वम्। श्रुतिस्मृतयश्चेति। प्रकृतेः शब्दस्पर्शादिमत्त्वे तु बाधकमस्ति।

शब्दस्पर्शविहीनं तद्रूपादिभिरसंयुतम्।
त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम्॥

इति विष्णुपुराणादिवाक्यजातम्। बुद्ध्यहङ्कारयोश्च शब्दस्पर्शादिमत्त्वे भूतकारणत्वश्रुतिस्मृतय एव बाधिकाः सन्ति। बाह्येन्द्रियग्राह्यजातीयविशेषगुणवत्त्वस्यैव भूतलक्षणत्वेन तयोरपि भूतत्वापत्त्या स्वस्य स्वकारणत्वानुपपत्तेरिति। नन्वेवं कारणद्रव्येषु रूपाद्यभावे तन्मात्ररूपादेः किं कारणमिति चेत् स्वकारणद्रव्याणां न्यूनाधिकभावेनान्योऽन्यं संयोगविशेष एव हरिद्रादीनां संयोगस्य तदुभयारब्धद्रव्ये रक्तरूपादिहेतुत्वदर्शनात्। दृष्टानुसारेण स्वाश्रयहेतुसंयोगानामेव रूपादिहेतुत्वसम्भवे तार्किकाणां परमाणुषु रूपकल्पनं तु हेयम्। सजातीयकारणगुणस्यैव कार्य्यगुणारम्भकतेति तु तेषामपि न

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नियमः। त्रसरेणुमहत्त्वादाववयवबहुत्वादेरेव तैरपि हेतुत्वाभ्युपगमादिति दिक्। इन्द्रियानुमानं चाकाशानुमानवद्दर्शनस्पर्शनवचनादिभिः प्रत्यक्षाभिर्वृत्तिभिरेवेति तदत्र नोक्तम्। तत्त्वान्तरेण तत्त्वान्तरानुमानानामिव प्रकृतत्वादिति न न्यूनता। तन्मात्राणां चोत्पत्तौ योगभाष्योक्तप्रक्रियैव ग्राह्या। यथाहङ्काराच्छब्दतन्मात्रं ततश्चाहङ्कारसहकृताच्छब्दतन्मात्राच्छब्दस्पर्शगुणकं स्पर्शतन्मात्रम्। एवं क्रमेणैकैकगुणवृद्ध्या तन्मात्राण्युत्पद्यन्त इति। या तु।

आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह।
बलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः॥

इत्यादिना विष्णुपुराणे स्पर्शादितन्मात्रसृष्टिराकाशादिस्थूलभूतचतुष्टयादुक्ता। सा भूतरूपेण परिणमनरूपैव मन्तव्या। आकाशादीनि जलान्तानि हि स्थूलभूतानि स्वस्वोत्तरभूतरूपेण स्वानुगततन्मात्राः स्वोपष्टम्भतः परिणमयन्तीति ॥ ६२ ॥

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहङ्कारस्य ॥ ६३ ॥

बाह्याभ्यन्तराभ्यामिन्द्रियाभ्यां तैः पञ्चतन्मात्रैश्च कार्य्यैस्तत्कारणतयाहङ्कारस्यानुमानेन बोध इत्यर्थः। अहङ्कारश्चाभिमानवृत्तिकमन्तःकरणद्रव्यं नत्वभिमानमात्रं द्रव्यस्यैव लोके द्रव्योपादानत्वदर्शनात्। सुषुप्त्यादावहङ्कारवृत्तिनाशेन भूतनाशप्रसङ्गाद्वासनाश्रयत्वेनैवाहङ्काराख्यद्रव्यसिद्धेश्चेति। अत्रेत्थमनुमानम्। तन्मात्रेन्द्रियाण्यभिमानवद्द्रव्योपादानकान्यभिमानकार्य्यद्रव्यत्वात्। यन्नैवं तन्नैवम्। यथा पुरुषादिरिति। नन्वभिमानवद्द्रव्यमेवासिद्धमिति चेदहं गौर इत्यादिवृत्त्युपादानतया चक्षुरादिवत् तत्सिद्धेः। अनेन चानुमानेन मन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आद्यतिरिक्तमात्रस्य तत्कारणतया प्रसाध्यत्वात्। अत्र चाय-मनुकूलस्तर्कः बहु स्यां प्रजायेयेत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यस्तावद्-भूतादिसृष्टेरभिमानपूर्वकत्वाद्बुद्धिवृत्तिपूर्वकसृष्टौ कारण-तयाभिमानः सिद्धः। तत्र चैकार्थसमवायप्रत्यासत्त्यैवाभि-मानस्य सृष्टिहेतुत्वं लाघवात् कल्प्यत इति। नन्वेवं कुला-लाहङ्कारस्यापि घटोपादानत्वापत्त्या कुलालमुक्तौ तदन्तः-करणनाशे तन्निर्मितघटनाशः स्यात्। न चेतद्युक्तम्। पुरुषा-न्तरेण स एवायं घट इति प्रत्यभिज्ञायमानत्वादिति। मैवम्। मुक्तपुरुषभोगहेतुपरिणामस्यैव तदन्तःकरणमोक्षोत्तरमुच्छे-दात्। न तु परिणामसामान्यस्यान्तःकरणस्वरूपस्य वोच्छेदः कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वादिति योगसूत्रे मुक्तपुरुषोपकरणस्याप्यन्यपुरुषार्थसाधकत्वसिद्धेरिति। अथवा घटादिष्वपि हिरण्यगर्भाहङ्कार एव कारणमस्तु न कुलालाद्य-हङ्कारस्तथापि सामान्यव्याप्तौ न व्यभिचारः समष्टिबुद्ध्याद्यु-पादानिकैव हि सृष्टिः पुराणादिषु सांख्ययोगयोश्च प्रतिपाद्यते न तु तदंशव्यष्टिबुद्ध्याद्युपादानिका यथा महापृथिव्या एव स्थावरजङ्गमाद्युपादानत्वं न तु पृथिव्यंशलोष्टादेरिति ॥६३॥

तेनान्तःकरणस्य ॥ ६४ ॥

तेनाहङ्कारेण कार्य्येण तत्कारणतया मुख्यस्यान्तःकरणस्य महदाख्यबुद्धेरनुमानेन बोध इत्यर्थः। अत्राप्ययं प्रयोगः। अहङ्कारद्रव्यं निश्चयवृत्तिमद्द्रव्योपादानकं निश्चयकार्य्यद्रव्य-त्वात्। यन्नैवं तन्नैवं यथा पुरुषादिरिति। अत्राप्ययं तर्कः सर्वोऽपि लोकः पदार्थमादौ स्वरूपतो निश्चित्य पश्चादभि-मन्यते। अहमहं मयेदं कर्त्तव्यमित्यादिरूपेणेति तावत् सिद्ध-मेव। तत्राहङ्कारद्रव्यकारणाकाङ्क्षायां वृत्त्योः कार्य्यकारण-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावेन तदाश्रययोरेव कार्य्यकारणभावो लाघवात् कल्प्यते कारणस्य वृत्तिलाभेन कार्य्यवृत्तिलाभस्यौत्सर्गिकत्वादिति। श्रुतावपि स ईचाञ्चक्रे तदैचतेत्यादौ सर्गाद्युत्पन्नबुद्धित एव तदितराखिलसृष्टिरवगम्यत इति। यद्यप्येकमेवान्तःकरणं वृत्तिभेदेन त्रिविधं लाघवात्।

गुणक्षोभे जायमाने महान् प्रादुर्बभूव ह।
मनो महांश्च विज्ञेय एकं तद्वृत्तिभेदतः॥

इति लैङ्गात्। पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यत इति वेदान्तसूत्रेण प्राणदृष्टान्तविधया मनसोऽपि वृत्तिमात्रभेदेन बहुत्वसिद्धेश्च। अन्यथा निश्चयादिवृत्तिभिरिव भ्रमसंशयनिद्राक्रोधादिवृत्तिभिरपि स्वसमसंख्यानन्तान्तःकरणापत्तेः। बुद्ध्यादिष्वव्यवस्थया मन आदिप्रयोगस्य पातञ्जलादिसर्वशास्त्रेष्वनुपपत्तेश्च। तथापि वंशपर्वस्विवावान्तरभेदमाश्रित्यान्तःकरणत्रये क्रमः कार्य्यकारणभावश्चोक्तः। योगोपयोगिश्रुतिस्मृतिपरिभाषानुसारादिति मन्तव्यम्। तदुक्तं वाशिष्ठे।

अहमर्थोदयो योऽयं चित्तात्मा वेदनात्मकः।
एतच्चित्तद्रुमस्यास्य वीजं विद्धि महामते!॥
एतस्मात् प्रथमोद्भिन्नादङ्कुरोऽभिनवाकृतिः।
निश्चयात्मा निराकारो बुद्धिरित्यभिधीयते॥
अस्य बुद्ध्यभिधानस्य याङ्कुरस्य प्रपीनता।
सङ्कल्परूपिणी तस्याश्चित्तचेतोमनोऽभिधा॥

इति। अहमर्थोऽन्तःकरणसामान्यम्। अत्र वाक्ये वीजाङ्कुरन्यायेनैकस्यैवान्तःकरणवृक्षस्य वृत्तिमात्ररूपेण चित्ताद्याख्यावस्थाभेदाः क्रमिकास्त्रिविधाः परिणामा उक्ता इति। सांख्यशास्त्रे च चिन्तावृत्तिकस्य चित्तस्य बुद्धावेवान्तर्भावः। अहङ्कारस्य चात्र वाक्ये बुद्धावन्तर्भावः॥ ६४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ततः प्रकृतेः ॥ ६५ ॥

ततो महत्तत्त्वात् कार्य्यात् कारणतया प्रकृतेरनुमानेन बोध इत्यर्थः। अन्तःकरणसामान्यस्यापि कार्य्यत्वं तावदेकदा पञ्चेन्द्रियज्ञानानुत्पत्त्या मध्यमपरिमाणतया देहादिवदेव सिद्धं श्रुतिस्मृतिप्रामाण्याच्च। तस्य च प्रकृतिकार्य्यत्वेऽयं प्रयोगः। सुखदुःखमोहधर्म्मिणी बुद्धिः सुखदुःखमोहधर्मकद्रव्यजन्या कार्य्यत्वे सति सुखदुःखमोहात्मकत्वात् कान्तादिवदिति कारणगुणानुसारेणैव कार्य्य गुणौचित्यं चात्रानुकूलस्तर्कः श्रुतिस्मृतयोऽपीति मन्तव्यम्। ननु विषयेषु सुखादिमत्त्वे प्रमाणं नास्ति। अहं सुखीत्याद्येवानुभवात् तत् कथं कान्तादिविषयो दृष्टान्त इति चेन्न। सुखाद्यात्मकबुद्धिकार्य्यतया स्रक्सुखं चन्दनसुखमित्याद्यनुभवेन च विषयाणामपि सुखादिधर्म्मकत्वसिद्धेः श्रुतिस्मृतिप्रामाण्याच्च। किञ्च यस्यान्वयव्यतिरेकौ सुखादिना सह दृश्येते तस्यैव सुखाद्युपादानत्वं कल्प्यते। तस्य निमित्तत्वं परिकल्प्यान्यस्योपादानत्वकल्पने कारणद्वयकल्पनागौरवात्। अपि चान्योऽन्यसंवादेन प्रत्यभिज्ञया च विषयेषु सर्वपुरुषसाधारणस्थिरसुखसिद्धिः। तत्सुखग्रहणायास्मन्नये वृत्तिनियमादिकल्पनागौरवं च फलमुखत्वान्न दोषावहम्। अन्यथा प्रत्यभिज्ञयावयव्यसिद्धिप्रसङ्गात् तत्कारणादिकल्पनागौरवादिति। विषयेऽपि सुखादिकञ्च मार्कण्डेये प्रोक्तम्।

> तत् सन्तु चेतस्यथवापि देहे
> सुखानि दुःखानि च किं ममात्र।

इति। अहं सुखीत्यादिप्रत्ययस्तु। अहं धनीत्यादिप्रत्ययवत् स्वस्वामिभावाख्यसम्बन्धविषयकस्तेषां प्रत्ययानां समवाय-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सम्बन्धविषयकत्वभ्रमनिरासार्थं तु सुखिदुःखिमूढेभ्यः पुरुषो विविच्यते शास्त्रेष्विति। शब्दादिषु च सुखाद्यात्मताव्यवहार एकार्थसमवायात्। अस्तु वा शब्दादिषु साक्षादेव सुखमुक्त-प्रमाणेभ्यः। विषयगतसुखादेश्च बुद्धिमात्रग्राह्यत्वं फलबलात्। यत् तु विषयासम्प्रयोगकाले शान्तिसुखं सात्त्विकं सुषुप्त्यादौ व्यज्यते तदेव बुद्धिधर्म आत्मसुखमुच्यत इति। यद्यपि वैशेषि-काद्या अपि तार्किकाः प्रपञ्चेऽन्यथापि कार्य्यकारणव्यवस्थाम-नुमिमते तथापि बहुलश्रुतिस्मृत्युपोद्बलनेनास्माभिरनुमितैव व्यवस्था मुमुक्षुभिरुपादेया मूलशैथिल्यदोषेण परानुमानानां दुर्बलत्वात्। अत एव तर्काप्रतिष्ठानादिति वेदान्तसूत्रेणा-प्रतिष्ठादोषतः केवलतर्कोऽपास्तः। तथा मनुनापि।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

इति वेदाविरुद्धतर्कस्यैवार्थनिश्चायकत्वमुक्तम्। तस्मात्।
श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।

इत्यादिवाक्येभ्यः श्रवणसमानार्थकमेव मननं बलवत्। अन्याकारं मननं तु परेषां दुर्बलम्। एवं पुरुषेऽपि सुखदुःखा-दिमत्त्वेन तेषामनुमानं बहुलश्रुत्यादिविरोधाद् दुर्बलमिति दिक्। प्रकृतिगतविशेषं च पश्चाद्वक्ष्यामः॥ ६५॥

नन्वखिलजडेभ्यः पुरुषविवेक एव मुक्तौ हेतुस्तत् किमर्थं जडानामन्योऽन्यविवेकोऽत्र दर्शित इति चेत्। प्रकृत्यादि-तत्त्वोपासनया सत्त्वशुद्ध्यर्थं विवेकस्याप्यपेक्षितत्वादिति। कार्य्यकारणमुद्रया प्रकृतिपर्य्यन्तस्यानुमानेन विवेकतः सिद्धि-मुक्ता। यथोक्तकार्य्यकारणभावशून्यस्य पुरुषस्य प्रकारान्तरेणा-नुमानतस्तथा सिद्धिमाह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य ॥ ६६ ॥

संहननमारम्भकसंयोगः स चावयवावयव्यभेदात् प्रकृतिकार्य्यसाधारणः। तथा च संहतानां प्रकृतितत्कार्य्याणां परार्थत्वानुमानेन पुरुषस्य बोध इत्यर्थः। तद्यथा विवादास्पदं प्रकृतिमहदादिकं परार्थं स्वेतरस्य भोगापवर्गफलकं संहतत्वात् शय्यासनादिवदित्यनुमानेन प्रकृतेः परोऽसंहत एव पुरुषः सिध्यति तस्यापि संहतत्वेऽनवस्थापत्तेः। पातञ्जले च परार्थं संहत्य कारित्वादिति सूत्रकारेणानुमानं कृतं तत् तु यथाश्रुतमेवान्त्यावयवसाधारणम्। इतरसाहित्येनार्थक्रियाकारित्वस्यैव संहत्यकारिताशब्दार्थत्वात्। पुरुषस्तु विषयप्रकाशरूपायां स्वार्थक्रियायां नान्यदपेक्षते नित्यप्रकाशरूपत्वात्। पुरुषस्यार्थसम्बन्धमात्रे बुद्धिवृत्त्यपेक्षणात्। सम्बन्धस्तु नासाधारण्यर्थक्रियेति। अत्र च न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवतीत्यादिश्रुतिस्मृतयोऽनुकूलतर्काः। अन्यच्च सुखादिमत् प्रधानादिकं यदि स्वस्य सुखादिभोगार्थं स्यात् तदा तस्य साक्षात् स्वज्ञेयत्वे कर्मकर्तृविरोधो न हि धर्मिभानं विना सुखस्य भानं सम्भवति। अहं सुखीत्येवं सुखानुभवादिति। अपि च संहन्यमानानां बहूनां गुणानां तत्कार्य्याणां चानेकविकाराणामनेकचैतन्यगुणकल्पनायां गौरवेण लाघवादेक एव चित्प्रकाशरूपः पुरुषः सर्वसंहतेभ्यः परः कल्पयितुं युज्यत इति। अनेन सूत्रेण निमित्तकारणतया पुरुषानुमानमुक्तं पुरुषार्थस्याखिलवस्तुसंहनननिमित्तत्ववचनात्। अत एव सर्गाद्युत्पन्नं पुरुषं प्रकृत्य विष्णुपुराणादौ स्मर्य्यते।

निमित्तमात्रमेवासौ सृज्यानां सर्गकर्मणि।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तय: ॥
गुणसाम्यात् ततस्तस्मात् चेतज्ञाधिष्ठितान्मुने !।
गुणव्यञ्जनसम्भूतिः सर्गकाले द्विजोत्तम ! ॥

इत्यादिक्षेत्रज्ञाधिष्ठानं चासमाप्तपुरुषार्थस्य संयोगमात्र गुणव्यञ्जनं महत्तत्त्वं कारणतया त्रिगुणात्मप्रधानव्यञ्जकत्वादिति। तदेवमचाक्षुषाणामनुमानेन सिद्धिरुक्ता ॥ ६६ ॥

इदानीं सर्वकारणत्वोपपत्तये प्रकृतिनित्यत्वमुपपाद्यते पुरुषकौटस्थ्यसिद्ध्यर्थम्।

मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥ ६७ ॥

त्रयोविंशतितत्त्वानां मूलमुपादानं प्रधानं मूलशून्यम्। अनवस्थापत्त्या तत्र मूलान्तरासम्भवादित्यर्थ: ॥ ६७ ॥

ननु।

तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम !।

इत्यादिना प्रधानस्यापि पुरुषादुत्पत्तिश्रवणात् पुरुष एव प्रकृतेर्मूलं भवतु पुरुषस्य नित्यतया च नानवस्थाविद्याद्वारकतया च न पुरुषकौटस्थ्यहानिः। तथा च स्मर्य्यते।

तस्मादज्ञानमूलोऽयं संसार: पुरुषस्य हि। इति।

इत्याशङ्काह।

पारम्पर्य्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ॥ ६८ ॥

अविद्यादिद्वारेण परम्परया पुरुषस्य जगन्मूलकारणत्वेऽप्येकस्मिन्नविद्यादौ यत्र कुत्रचिन्नित्ये द्वारे परम्पराया: पर्य्यवसानं भविष्यति पुरुषस्यापरिणामित्वात्। अतो यत्र पर्य्यवसानं सैव नित्या प्रकृतिः। प्रकृतिरिह मूलकारणस्य संज्ञामात्रमित्यर्थः ॥ ६८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नन्वेवं पञ्चविंशतितत्त्वानीति नोपपद्यते महत्तत्त्वकारणाव्यक्तापेक्षयापि जड़तत्त्वान्तरापत्तेरित्याशयेन मूलसमाधानमाह ।

समानः प्रकृतेर्द्वयोः ॥ ६८ ॥

वस्तुतस्तु प्रकृतेर्मूलकारणविचारे द्वयोर्वादिप्रतिवादिनोरावयोः समानः पक्षः । एतदुक्तं भवति यथा प्रकृतेरुत्पत्तिः श्रूयते एवमविद्याया अपि ।

अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।

इत्यादिवाक्यैः । अत एकस्या अवश्यं गौण्युत्पत्तिर्वक्तव्या । तत्र च प्रकृतेरेव पुरुषसंयोगादिभिरभिव्यक्तिरूपा गौण्युत्पत्तिर्युक्ता । संयोगलक्षणोत्पत्तिः कथ्यते कर्मज्ञानयोरिति कौर्मवाक्ये प्रकृतिपुरुषयोर्गौण्योत्पत्तिस्मरणात् । अविद्यायाश्च क्वापि गौणोत्पत्त्यश्रवणात् तस्या अनादितावाक्यानि तु प्रवाहरूपेणैव वासनाद्यनादिवाक्यवद् व्याख्येयानीति । अविद्या च मिथ्याज्ञानरूपा बुद्धिधर्म इति योगे सूत्रितमतो न तत्त्वाधिक्यम् । अथवा द्वयोः प्रकृतिपुरुषयोः समान एव न्याय इत्यर्थः ।

यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।

कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥

इत्यादिवाक्यैः पुरुषस्याप्युत्पत्तिश्रवणादिति भावः । तथा च पुरुषस्येव प्रकृतेरपि गौण्येवोत्पत्तिः । नित्यत्वश्रवणादित्यपि समानमिति । तस्मात् प्रकृतिरेवोपादानं जगतः प्रकृतिधर्मश्चाविद्या जगन्निमित्तकारणं तथा पुरुषोऽपीति सिद्धम् । यत् तु ।

अविद्यामाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मिणम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्गप्रलयनिर्मुक्तं विद्यां वै पञ्चविंशकम्॥

इति मोक्षधर्मे प्रकृतिपुरुषयोरविद्याविद्येति वचनं तत् तदुभयविषयतयोपचरितमेव परिणामित्वेन हि पुरुषापेक्षया प्रकृतिरसतीति तस्या अविद्याविषयत्वमुक्तम्। एवमेव तस्मिन् प्रकरणे स्वस्वकारणापेक्षया भूतान्तं कार्य्यजातमविद्येत्युक्तं स्वस्वापेक्षया च स्वस्वकारणं विद्येति। पुरुषस्य परिणामरूपं जगदुपादानत्वं तु प्रकृत्युपाधिकमेव कर्त्तृत्वादिवच्छ्रुतिस्मृत्योरुपासार्थमेवानूद्यते। अन्यथास्थूलमनण्वह्रस्वमित्यादिश्रुतिविरोधापत्तेरिति मन्तव्यम्। मायाशब्देन च प्रकृतिरेवोच्यते मायां तु प्रकृतिं विद्यादिति श्रुतौ।

अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्
तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः।

इति पूर्वप्रक्रान्तमायायाः प्रकृतिस्वरूपतावचनात्।

सत्त्व रजस्तम इति प्राकृतं तु गुणत्रयम्।
एतन्मयी च प्रकृतिर्माया या वैष्णवी श्रुता॥
लोहितश्वेतकृष्णेति तस्यास्तादृग्बहुप्रजाः।

इत्यादिस्मृतिभ्यश्च। न तु ज्ञाननाश्याविद्या मायाशब्दार्थो नित्यत्वानुपपत्तेः। किञ्चाविद्याया द्रव्यत्वे शब्दमात्रभेदो गुणत्वे च तदाधारतया प्रकृतिसिद्धिः पुरुषस्य निर्गुणत्वादिभ्यः। अथ द्रव्यगुणकर्मविलक्षणैवास्माभिरविद्या वक्तव्येति चेन्न तादृक्पदार्थाप्रतीतेरुक्तत्वादिति॥ ६९॥

नन्वेवं चेत् प्रकृतिपुरुषाद्यनुमानप्रकारोऽस्ति तर्हि सर्वेषामेव कथं विवेकमननं न जायते तत्राह।

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः॥ ७०॥

श्रवणादाविव मननेऽप्यधिकारिणस्त्रिविधा मन्दमध्य-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोत्तमा इत्यतो न सर्वेषामेव मननियमः कुतर्कादिभिर्मन्द-मध्यमयोर्बाधसत्प्रतिपक्षतासम्भवादित्यर्थः । मन्देर्हि बौद्धाद्युक्तकुतर्कजातैर्नोक्तानुमानानि बाध्यन्ते । मध्यमैश्च बुद्धाद्युक्तैरेव विरुद्धासल्लिङ्गैः सत्प्रतिपक्षितानि क्रियन्ते । अत उत्तमाधि-कारिणामेवैतादृशमननं भवतीति भावः । प्रकृतेः स्वरूपं गुण-साम्यं प्रागेवोक्तम् । सूक्ष्मभूतादिकं च प्रसिद्धमेवास्तीति ॥७०॥

अवशिष्टयोर्महदहङ्कारयोः स्वरूपमाह सूत्राभ्याम् ।

महदाख्यमाद्यं कार्य्यं तन्मनः ॥ ७१ ॥

महदाख्यमाद्यं कार्य्यं तन्मनो मननवृत्तिकम् । मननमत्र निश्चयस्तद्वृत्तिका बुद्धिरित्यर्थः ।

यदेतद्विस्तृतं वीजं प्रधानपुरुषात्मकम् ।
महत्तत्त्वमिति प्रोक्तं बुद्धितत्त्वं तदुच्यते ॥

इत्यादिवाक्येभ्यो बुद्धेरेवाद्यकार्य्यत्वावगमात् ॥ ७१ ॥

चरमोऽहङ्कारः ॥ ७२ ॥

तस्यानन्तरो यः सोऽहङ्करोतीत्यहङ्कारोऽभिमानवृत्तिक इत्यर्थः ॥ ७२ ॥

यतोऽभिमानवृत्तिकोऽहङ्कारोऽतस्तत्कार्य्यत्वमुत्तरेषामुप-पन्नमित्याह ।

तत्कार्य्यत्वमुत्तरेषाम् ॥ ७३ ॥

सुगमम् । एवं त्रिसूत्रीं व्याख्याय पौनरुक्त्याशङ्कापास्ता ॥ ७३ ॥

नन्वेवं प्रकृतिः सर्गकारणमिति श्रुतिस्मृतिविरोध इत्या-शङ्कायामाह ।

आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्य्येऽप्यणुवत् ॥७४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पारम्पर्य्येऽपि साक्षादहेतुत्वेऽप्याद्यायाः प्रकृतेर्हेतुताहङ्कारादिषु महदादिद्वारास्ति। यथा वैशेषिकमतेऽणूनां घटादिहेतुता द्व्यणुकादिद्वारैवेत्यर्थः॥ ७४॥

ननु प्रकृतिपुरुषयोरुभयोरेव नित्यत्वात् प्रकृतेरेव कारणत्वे किं नियामकं तत्राह।

पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ॥ ७५॥

द्वयोरेव पुम्प्रकृत्योरखिलकार्य्यपूर्वभावित्वेऽप्येकतरस्य पुरुषस्यापरिणामित्वेन कारणताहान्यान्यतरस्याः कारणत्वौचित्यमित्यर्थः। पुरुषस्यापरिणामित्वे चेदं बीजम्। पुरुषस्य संहत्य कारित्वे परार्थत्वापत्त्यानवस्था। असंहत्य कारित्वे सर्वदा महदादिकार्य्यप्रसङ्गः। प्रकृतिद्वारा परिणामकल्पने च लाघवात् तस्या एव परिणामोऽस्तु पुरुषे तु स्वामित्वेन स्रष्टृत्वोपचारो यथा योधेषु वर्त्तमानौ जयपराजयौ राजन्युपचर्य्येते तत्फलसुखदुःखभोक्तृत्वेन तत्स्वामित्वादिति। किञ्च धर्मिग्राहकमानेन कारणतयैव प्रकृतेः सिद्धौ नान्यकारणाकाङ्क्षास्ति। यथा धर्मिग्राहकप्रमाणेन द्रष्टृतया पुरुषसिद्धौ नान्यद्रष्ट्राकाङ्क्षेति। अपि च पुरुषस्य परिणामित्वे कदाचिच्चक्षुर्मनआदिवद्बन्ध्यत्वमपि स्यात्। तथा च विद्यमानमपि सुखदुःखादिकं न ज्ञायेत ततश्चाहं सुखी न वेत्यादिसंशयापत्तिः। अतः सदा प्रकाशस्वरूपत्वामपायेन पुरुषस्यापरिणामित्वं सिध्यति। तदुक्तं योगसूत्रेण सदा ज्ञाताश्चित्तस्य वृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वादिति। तद्भाष्येण च सदा ज्ञानविषयत्वं तु पुरुषस्यापरिणामित्वं परिदीपयतीति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सदा प्रकाशस्वरूपत्वेऽपि यथा नैकदा विश्वप्रकाशत्वं तथा वक्ष्यामः ॥ ७५ ॥

प्रकृतेर्युगपत्कारणत्वोपपत्तये विभुत्वमपि प्रतिपादयति।

परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ॥ ७६ ॥

सर्वोपादानं प्रधानं न परिच्छिन्नं व्यापकमित्यर्थः। सर्वोपादानत्वमत्र हेतुगर्भविशेषणम्। परिच्छिन्ने तदसम्भवादिति। ननु प्रकृतेरपरिच्छिन्नत्वं नोपपद्यते प्रकृतिर्हि सत्त्वादिगुणत्रयादतिरिक्ता नु भवति सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वादित्यागामिसूत्रात्। योगसूत्रभाष्याभ्यां स्पष्टमवधृतत्वाच्च। तेषां च सत्त्वादीनां लघुत्वचलत्वगुरुत्वादयो धर्मा वक्ष्यमाणा विभुत्वे सति विरुध्यन्ते सृष्ट्यादिहेतवः संयोगविभागादयश्च नोपपद्यन्त इति। अत्रोच्यते। परिच्छिन्नत्वमत्र दैशिकाभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नत्वं तदभावश्च व्यापकत्वम्। तथा च जगत्कारणत्वस्य दैशिकाभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वमेवेति प्रकृतेर्व्यापकत्वमिति पर्य्यवसितम्। यथा प्राणस्य स्थावरजङ्गमाद्यखिलशरीरव्यापकत्वं प्राणत्वसामान्येनोच्यते प्राणव्यक्तीनां सर्वदेहसम्बन्धात्। तद्वत् प्रकृतेर्व्यापकत्वमिति। प्रकृतेरक्रियैकत्वादिकं च साधर्म्यवैधर्म्यसूत्रे प्रतिपादयिष्यामः ॥ ७६ ॥

न केवलं सर्वोपादानत्वात्। अपि तु।

तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ॥ ७७ ॥

तेषां परिच्छिन्नानामुत्पत्तिश्रवणाच्च। अथ यदल्पं तन्मर्त्यमित्यादिश्रुतिषु मरणधर्मकत्वेन परिच्छिन्नस्योत्पत्त्यवगमात्। श्रुत्यन्तरेभ्यश्चेत्यर्थः ॥ ७७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इदानीं प्रकृतिकारणतोपपत्तयेऽभावादिकारणतां निरस्यति।

नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः॥ ७८॥

अवस्तुनोऽभावान्न वस्तुसिद्धिर्भावोत्पत्तिः। शशशृङ्गाज्जगदुत्पत्त्या मोक्षाद्यनुपपत्तेः। तददर्शनाच्चेत्यर्थः॥७८॥

ननु जगदप्यवस्त्वेवास्तु स्वप्नादिवदिति तत्राह।

अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम्॥७९॥

स्वप्नपदार्थस्येव प्रपञ्चस्य बाधः श्रुत्यादिप्रमाणैर्नास्ति। तथा शङ्खपीतिमादेरिव दुष्टेन्द्रियादिजन्यत्वमपि नास्ति दोषकल्पने प्रमाणाभावादित्यतो न कार्य्यस्यावस्तुत्वमित्यर्थः। ननु वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यादिश्रुतिभिरेव प्रपञ्चस्य बाधो बाधाच्चाविद्याख्यदोषोऽपि स्वकारणेऽस्तीति चेन्न। मृदृष्टान्तसिद्धान्यथानुपपत्त्या स्वकारणापेक्षकार्य्यस्थैर्यरूपासत्त्वपरत्वात् तादृग्वाक्यानामन्यथा सृष्ट्यादिवाक्यविरोधाच्च। किञ्च श्रुत्या प्रपञ्चबाध आत्माश्रयः स्वस्यापि प्रपञ्चान्तर्गततया बाधेन तद्बोधितार्थे पुनः संशयापत्तिश्चेति। अत एव बाधाबाधादिवैधर्म्यादुपलम्भाच्च जाग्रत्प्रपञ्चस्य स्वप्नखपुष्पादितुल्यत्वमतिनिर्बन्धेन प्रत्याचष्टे वेदान्तसूत्रद्वयम्। वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवदिति उपलब्धेश्चेति च। नेति नेतीत्येवंविधवाक्यानि च विवेकपराण्येव न तु स्वरूपतः प्रपञ्चनिषेधपराणि प्रकृतैतावत्त्वं प्रतिषेधतीति वेदान्तसूत्रात्। एवमन्यान्यपि वाक्यानि ब्रह्ममीमांसाभाष्येऽस्माभिर्व्याख्यातानि॥ ७९॥

नावस्तुनो वस्तुसिद्धिरिति यदुक्तं तत्र हेतुमाह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तरां तत्सिद्धिः ॥ ८० ॥

भावे कारणस्य सद्रूपत्वे तद्योगेन सत्तायोगेन कार्य्यसिद्धिर्घटेत कारणस्याभावेऽसद्रूपत्वे तु तदभावात् कार्य्यस्याप्यसत्त्वात् कथं वस्तुभूतकार्य्यसिद्धिः कारणस्वरूपस्यैव कार्य्यस्यौचित्यादित्यर्थः ॥ ८० ॥

ननु तथापि कर्म्मैवावश्यकत्वाज्जगत्कारणमस्तु किं प्रधानकल्पनयेति तत्राप्याह ।

न कर्म्मण उपादानत्वायोगात् ॥ ८१ ॥

कर्म्मणोऽपि न वस्तुसिद्धिर्निमित्तकारणस्य कर्म्मणो न मूलकारणत्वं गुणानां द्रव्योपादानत्वायोगात् । कल्पना हि दृष्टानुसारेणैव भवति वैशेषिकोक्तगुणानां चोपादानत्वं न क्वापि दृष्टमित्यर्थः। अत्र कर्म्मशब्दोऽविद्यादीनामप्युपलक्षको गुणत्वाविशेषेण तेषामप्युपादानत्वायोगात्। चक्षुषः पटलादिवदविद्यायाश्चेतनगतद्रव्यत्वे तु प्रधानस्य संज्ञामात्रभेद इति ॥ ८१ ॥

तदेवं परिणामित्वापरिणामित्वपरार्थत्वापरार्थत्वाभ्यां पुम्प्रकृत्योर्विवेको दर्शितः। इदानीं विवेकज्ञानस्यैवाविवेकनाशद्वारा परमपुरुषार्थहेतुत्वं न तु तत्र वैदिककर्म्मणां साक्षाद्वेतुतास्तीति यत् प्रागुक्तमविशेषश्चोभयोरिति सूत्रेण तदेव प्रपञ्चयति पञ्चभिः सूत्रैः ।

नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥ ८२ ॥

अपिशब्देन न दृष्टात् तत्सिद्धिरिति प्रागुक्तदृष्टसमुच्चयः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुरोरनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदस्तद्विहितो यागादिरानुश्रविकं कर्म तस्मादपि न पूर्वोक्तपुरुषार्थसिद्धिः। यतः कर्मसाध्यत्वेन पुनरावृत्तिसम्बन्धादत्यन्तपुरुषार्थत्वाभाव इत्यर्थः। कर्मसाध्यस्य चानित्यत्वे श्रुतिः। तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयत इतीति। न कर्मणाप्यधर्मत्वादिति सूत्रेण पूर्वं कर्मणा बन्धो निराकृत इदानीं च मोक्षो निराक्रियत इत्यपौनरुक्त्यम्। अन्यधर्मत्वेन पूर्वोक्तहेतुना बन्ध इव मोक्षेऽपि कर्मणो हेतुत्वं निराकृतप्रायमिति पुनराशङ्कैव नोदेतीति चेन्न। बन्धहेतुत्वेनाविवेके सिद्धे तत्पुरुषीयाविवेकजत्वेन कर्मणां तदीयत्वव्यवस्थोपपत्तेरिति॥ ८२॥

नन्वेवं पञ्चाग्निविद्यारूपेणोपासनाख्यकर्मणा तीर्थमरणादिकर्मणा च ब्रह्मलोकं गतस्यानावृत्तिश्रुतिः कथमुपपद्यते तत्राह।

तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः॥८३॥

तत्रानुश्रविककर्मणि ब्रह्मलोकगतानां यानावृत्तिश्रुतिः सा तत्रैव प्राप्तविवेकस्य मन्तव्या। अन्यथा हि ब्रह्मलोकादप्यावृत्तिं प्रतिपादयतां वाक्यान्तराणां विरोध इत्यर्थः। तथापि साप्यनावृत्तिर्विवेकज्ञानस्यैव फलं न तु साक्षादेव कर्मण इति। एतच्च षष्ठाध्याये प्रपञ्चयिष्यति। ब्रह्ममीमांसाभाष्ये च तयोर्वाक्यान्युदाहृत्यास्माभिर्व्याख्यातानि॥ ८३॥

कर्मणस्तु फलं तदाह।

दुःखाद् दुःखं जलाभिषेकवन्न जाड्यविमोकः॥ ८४॥

आनुश्रविकात् तु हिंसादिदोषेण दुःखात्मकभोगेन च दुःखाद्दुःखं दुःखधारैव भवति न तु जाड्यविमोकोऽविवेक-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निवृत्तिर्दुःखविमोक्षस्त्वतिदूर एव तिष्ठति। यथा जाड्यार्त्तस्य जलाभिषेकाद्दुःखानिवृत्तिरेव भवति न तु जाड्यविमोक्ष इत्यर्थः। तदुक्तम्।

यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम्।
भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हतीति॥

श्रूयते च ब्रह्मलोकस्थानां विष्णुपार्षदानामपि जयविजयादीनां पुनाराक्षसयोनौ दुःखधारेति। कारिकया चेदमुक्तम्।

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।

इति॥ ८४॥

ननु निष्कामादन्तर्यागजपादिरूपकर्मणो न दुःखं प्रत्युत मोक्षः फलं श्रूयत इति तत्राह।

काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात्॥८५॥

काम्येऽकाम्ये च कर्मणि दुःखाद् दुःखं भवति। कुतः साध्यत्वाविशेषात्। कर्मसाध्यस्य सत्त्वशुद्धिद्वारकज्ञानस्यापि त्रिगुणात्मकतया दुःखात्मकत्वादित्यर्थः। न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुरित्यादिश्रुतिभ्यश्च कर्मणो न साक्षान्मोक्षः फलमिति भावः। त्यागेनाभिमानत्यागेन। एके केचिदेवामृतत्वमानशुः प्राप्तवन्तो न सर्वे। अभिमानत्यागस्य तत्त्वज्ञानजन्यतया दुर्लभत्वादित्यर्थः॥ ८५॥

ननु भवन्मतेऽपि कथं ज्ञानसाध्यस्य न दुःखत्वं साध्यत्वाविशेषादिति तत्राह।

निजमुक्तस्य बन्धध्वंसमात्रं परं न समानत्वम्॥ ८६॥

निजमुक्तस्य स्वभावमुक्तस्याविद्याख्यकारणनाशेन यथोक्तबन्धनिवृत्तिमात्रं परमात्यन्तिकं विवेकज्ञानस्य फलं ध्वंस-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्चाविनाशी न तु कर्मण इव सुखादिकं भावरूपं कार्य्यं येन नाशितया दुःखदं तत् स्यात्॥ कर्मणश्च दृष्टकारणं विना न साक्षादेवाविद्यानाशकत्वं घटत इति। अतो ज्ञानस्याक्षय-त्वाच्च समानत्वं ज्ञानकर्मणोरित्यर्थः। ज्ञानाच्च पुनरावृत्तिः सम्भवति। अविवेकाख्यकारणनाशादिति सिद्धम्। तदेवं विवेकज्ञानमेव साक्षाज्ज्ञानोपाय इत्युक्तम्॥ ८६॥

इदानीं विवेकज्ञानस्यापि साक्षादुपायाः प्रमाणानि परी-क्ष्यन्ते। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्य इत्यादिश्रुति-भिर्हि प्रमाणत्रयेणात्मज्ञानमित्यवगम्यते। कर्मादिकं त्वन्यन्मन आदिप्रमाणानां शुद्ध्यादिकरमेवेति।

द्वयोरेकतरस्य वाप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा तत्साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणम् ॥ ८७ ॥

असन्निकृष्टः प्रमातर्य्यनारूढोऽनधिगत इति यावत्। एवं-भूतस्यार्थस्य वस्तुनः परिच्छित्तिरवधारणं प्रमा सा च द्वयो-र्बुद्धिपुरुषयोरुभयोरेव धर्मो भवतु। किं वैकतरमात्रस्योभयथैव तस्याः प्रमाया यत् साधकतमं फलायोगव्यवच्छिन्नं कारणं तच्च त्रिविधं वक्ष्यमाणरूपेणेत्यर्थः। स्मृतिव्यावर्त्तनायानधिग-तेति। भ्रमव्यावर्त्तनाय वस्त्विति। संशयव्यावर्त्तनाय त्वव-धारणमिति। अत्र यदि प्रमारूपं फलं पुरुषनिष्ठमात्रमुच्यते तदा बुद्धिवृत्तिरेव प्रमाणम्। यदि च बुद्धिनिष्ठमात्रमुच्यते तदा तूक्तेन्द्रियसन्निकर्षादिरेव प्रमाणम्। पुरुषस्तु प्रमासाक्ष्येव न प्रमातेति। यदि च पौरुषेयबोधो बुद्धिवृत्तिश्चोभयमपि प्रमो-च्यते तदा तूक्तमुभयमेव प्रमाभेदेन प्रमाणं भवति। चक्षुरा-दिषु तु प्रमाणव्यवहारः परम्परयैव सर्वथेति भावः। पात-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऽलभाष्ये तु व्यासदेवैः पुरुषनिष्ठबोधः प्रमेत्युक्तः। पुरुषार्थमेव करणानां प्रवृत्त्या फलस्य पुरुषनिष्ठताया एवौचित्यात्। अतोऽत्रापि स एव मुख्यः सिद्धान्तः। न च पुरुषबोधस्वरूपस्य नित्यतया कथं फलत्वमिति वाच्यम्। केवलस्य नित्यत्वेऽप्यर्थोपरक्तस्य कार्य्यत्वात्। पुरुषार्थोपरागस्यैव वा फलत्वादिति। अत्रेयं प्रक्रिया। इन्द्रियप्रणालिकयार्थसन्निकर्षेण लिङ्गज्ञानादिना वादौ बुद्धेरर्थाकारा वृत्तिर्जायते तत्र चेन्द्रियसन्निकर्षजा प्रत्यक्षा वृत्तिरिन्द्रियविशिष्टबुद्ध्याश्रिता नयनादिगतपित्तादिदोषैः पित्ताद्याकारवृत्त्युदयादिति विशेषः। सा च वृत्तिरर्थोपरक्ता प्रतिबिम्बरूपेण पुरुषारूढ़ा सती भासते पुरुषस्यापरिणामितया बुद्धिवत् स्वतोऽर्थाकारत्वासम्भवात्। अर्थाकारताया एव चार्थग्रहणत्वात्। अन्यस्य दुर्वचत्वादिति। तदेतद्वक्ष्यति जपास्फटिकयोरिव नोपरागः किन्त्वभिमान इति। योगसूत्रं च। वृत्तिसारूप्यमितरत्रेति। स्मृतिरपि।

> तस्मिंश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः।
> इमास्ताः प्रतिबिम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः॥

इति। योगभाष्यञ्च बुद्धेः प्रतिसंवेदी पुरुष इति प्रतिध्वनिवत् प्रतिसंवेदः संवेदनप्रतिबिम्बस्तस्याश्रय इत्यर्थः। एतेन पुरुषाणां कूटस्थविभुचिद्रूपत्वेऽपि न सर्वदा सर्वाभासनप्रसङ्गः। असङ्गतया स्वतोऽर्थाकारत्वाभावात्। अर्थाकारतां विना च संयोगमात्रेणार्थग्रहणस्यातीन्द्रियादिस्थले बुद्धावदृष्टत्वादिति। पुरुषे च स्वस्वबुद्धिवृत्तीनामेव प्रतिबिम्बार्पणसामर्थ्यमिति फलबलात् कल्प्यते। यथा रूपवतामेव जलादिषु प्रतिबिम्बनसामर्थ्यं नेतरस्येति। रूपवत्त्वं च न सामान्यतः प्रतिबिम्बप्रयोजकं शब्दस्यापि प्रतिध्वनिरूपप्रतिबिम्बदर्शनात्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न च शब्दजन्यं शब्दान्तरमेव प्रतिध्वनिरिति वाच्यं स्फटिकलौहित्यादेरपि जपासन्निकर्षजन्यतापत्त्या प्रतिबिम्बमिथ्यात्वसिद्धान्तक्षतेरिति। प्रतिबिम्बश्च बुद्धेरेव परिणामविशेषो बिम्बाकारो जलादिगत इति मन्तव्यम्। केचित् तु वृत्तौ प्रतिबिम्बितं सदेव चैतन्यं वृत्तिं प्रकाशयति तथा वृत्तिगतप्रतिबिम्ब एव वृत्तौ चैतन्यविषयता न तु चैतन्ये वृत्तिप्रतिबिम्बोऽस्तीत्याहुः। तदसत्। उपदर्शितशास्त्रविरोधेन केवलतर्कस्याप्रयोजकत्वात्। विनिगमनाविरहेण वृत्तिचैतन्ययोरन्योन्यविषयताख्यसम्बन्धरूपतयान्योन्यस्मिन्नन्योन्यप्रतिबिम्बसिद्धेश्च। बाह्यस्थलेऽर्थाकारतया एव विषयतारूपत्वसिद्धान्तेऽपि तत्तदर्थाकारताया एव विषयतात्वौचित्याच्चेति। ये तु तार्किका ज्ञानस्य विषयतां नेच्छन्ति तन्मते ज्ञानव्यक्तीनामनुगमकधर्माभावेन घटविषयकं पटविषयकं ज्ञानमित्याद्यनुगतव्यवहारानुपपत्तिः। केचित् तु तार्किका अनयैवानुपपत्त्या विषयतामतिरिक्तपदार्थमाहुः। तदप्यसत्। अनुभूयमानामर्थाकारतां विहाय विषयतान्तरकल्पने गौरवादिति। ननु तथापि स्वस्वोपाधिवृत्तिरूपैव वृत्तिचैतन्ययोरन्योन्यविषयतास्तु स्वोपाधिवृत्तित्वेनैवानुगमादलमाकाराख्यप्रतिबिम्बद्वयेनेति चेन्न। प्रतिबिम्बं विना स्वत्वस्यापि दुर्वचत्वात्। स्वत्वं हि स्वभुक्तवृत्तिवासनावत्त्वम्। भोगश्च ज्ञानम्। तथा च विषयतालक्षणस्य विषयसामग्रीघटितत्वेनात्माश्रयः। तस्मादचैतन्यचैतन्ययोरन्योन्यविषयतारूपोऽन्योन्यस्मिन्नन्योन्यप्रतिबिम्बः सिद्धः। अधिकन्तु योगवार्त्तिके द्रष्टव्यमिति दिक्। अत्रायं प्रमात्रादिविभागः।

प्रमाता चेतनः शुद्धः प्रमाणं वृत्तिरेव नः।
प्रमार्थाकारवृत्तीनां चेतने प्रतिबिम्बनम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रतिबिम्बितवृत्तीनां विषयो मेय उच्यते ।
साक्षाद्दर्शनरूपं च साक्षित्वं वक्ष्यति स्वयम् ॥
अतः स्यात् कारणाभावाद् वृत्तेः साक्ष्येव चेतनः ।
विष्ण्वादेः सर्वसाक्षित्वं गौणं लिङ्गाद्यभावतः ॥
इति ॥ ८७ ॥

ननु ।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ! ॥

इत्यादिवाक्येषूपमानादि प्रकृतिपुरुषविवेके प्रमाणमुपन्यस्तं तत् कथमुच्यते त्रिविधमिति तत्राह ।

तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ॥ ८८ ॥

त्रिविधप्रमाणसिद्धौ च सर्वस्यार्थस्य सिद्धेर्न प्रमाणाधिक्यं सिध्यति गौरवादित्यर्थः । अतएव मनुनापि प्रमाणत्रयमेवोपन्यस्तम् ।

प्रत्यक्षमनुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्य्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥

इति । उपमानैतिह्यादीनां चानुमानशब्दयोः प्रवेशः । अनुपलब्ध्यादीनां च प्रत्यक्षे प्रवेश इति । उक्तवाक्ये चेदमनुमानमभिप्रेतम् । आपादतलमस्तकं कृत्स्नं स्वव्यतिरिक्तेनैकेन प्रकाश्यं स्वयमप्रकाशत्वात् त्रैलोक्यवदिति । तेजश्चैतन्यसाधारणं च प्रकाशत्वमखण्डोपाधिः प्रकाशव्यवहारनियामकतया सिद्ध इति ॥ ८८ ॥

पुरुषनिष्ठा प्रमिति मुख्यसिद्धान्तमाश्रित्य प्रमाणानां विशेषलक्षणानि वक्तुमुपक्रमते ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यत् सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम् ॥ ८९ ॥

सम्बद्धं भवत् सम्बद्धवस्त्वाकारधारि भवति यद्विज्ञानं बुद्धिवृत्तिस्तत् प्रत्यक्षं प्रमाणमित्यर्थः। अत्र सदित्यन्तं हेतुगर्भविशेषणम्। तथा च स्वार्थसन्निकर्षजन्याकारस्याश्रयो वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणमिति निष्कर्षः। वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीत्यागामिसूत्रान्न वृत्तेः सन्निकर्षजन्यत्वमित्याकाराश्रयग्रहणम्। चक्षुरादिद्वारकबुद्धिवृत्तिश्च प्रदीपस्य शिखातुल्या बाह्यार्थसन्निकर्षानन्तरमेव तदाकारोल्लेखिनी भवतीति नासम्भवः ॥ ८९ ॥

ननु योगिनामतीतानागतव्यवहितवस्तुप्रत्यक्षेऽव्याप्तिः सम्बद्धवस्त्वाकाराभावादित्याशङ्क्य तस्यालक्ष्यत्वेन समाधत्ते।

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ॥९०॥

ऐन्द्रियकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः। अतो न दोषो न तत्प्रत्यक्षेऽव्याप्तिरित्यर्थः ॥ ९० ॥

वास्तवं समाधानमाह।

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः ॥९१॥

अथवा तदपि लक्ष्यमेव तथापि न दोषो नाव्याप्तिः। यतो लीनवस्तुषु लब्धयोगजधर्मजन्यातिशयस्य योगिचित्तस्य सम्बन्धो घटत इत्यर्थः। अत्र लीनशब्दः पराभिप्रेतासन्नष्टवाची सत्कार्यवादिनां ह्यतीतादिकमपि स्वरूपतोऽस्तीति तत्सम्बन्धः सम्भवेदिति व्यवहितविप्रकृष्टेषु सम्बन्धहेतुविधया लब्धातिशयेति विशेषणम्। अतिशयश्च व्यापकत्वं वृत्तिप्रतिबन्धकतमोनिवृत्त्यादिश्चेति। इदं चात्रावधेयम्। यत्सम्बद्धं सदिति पूर्वसूत्रे बुद्धेरर्थसन्निकर्षस्यैव प्रत्यक्षहेतुतालाभात्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रत्यक्षसामान्ये बाह्यार्थसाधारणे बुद्ध्यर्थसन्निकर्ष एव कारणम् । इन्द्रियसन्निकर्षास्तु चाक्षुषादिप्रत्यक्षेषु विशिष्यैव कारणानि । नन्वेवमिन्द्रियसन्निकर्षयोगजधर्माद्यभावेऽपि बुद्ध्या बाह्यार्थ-प्रत्यक्षापत्तिः । मैवम् । तमःप्रतिबन्धेन तदानीं बुद्धिसत्त्वस्य वृत्त्यसम्भवात् । तच्च तमः कदाचिदर्थेन्द्रिययोः सन्निकर्षेण कदाचिच्च योगजधर्मेणापसार्यते । अञ्जनसंयोगेन नयन-मालिन्यवत् । न चैवं तद्धेतोरेव तदस्त्विति न्यायेनेन्द्रियसन्नि-कर्षादेरेव बाह्यार्थप्रत्यक्षसामान्ये हेतुतास्त्विति वाच्यं सुषु-प्त्यादौ तमसो बुद्धिवृत्तिप्रतिबन्धकत्वसिद्धेः ।

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ।
प्रस्वापनं तु तमसा तुरीयं त्रिषु सन्ततम् ॥

इत्यादिस्मृतिभ्यः सुषुप्त्यादौ वृत्तिप्रतिबन्धकान्तरासम्भ-वाच्च । चाक्षुषवृत्तावपि तमसः प्रतिबन्धदर्शनाच्च । यत् तु शुष्कतार्किकाः सुषुप्तौ वृत्त्यनुत्पादार्थं ज्ञानसामान्ये त्वङ्मनो-योगं कारणं कल्पयन्ति । तदसत् । त्वगिन्द्रियोत्पत्तेः प्रागपि केवलबुद्ध्या स्वयम्भुवः सर्वप्रत्यक्षश्रवणात् । त्वङ्मनोयोगानुत्पा-देऽपि तमस एव निमित्तताया वक्तव्यत्वाच्च । केवलतर्कस्याप्र-तिष्ठादोषग्रस्तत्वाच्चेति दिक् ॥ ९१ ॥

ननु तथापीश्वरप्रत्यक्षेऽव्याप्तिः तस्य नित्यत्वेन सन्निकर्षा-जन्यत्वादिति तत्राह ।

ईश्वरासिद्धेः ॥ ९२ ॥

ईश्वरे प्रमाणाभावान्न दोष इत्यनुवर्त्तते । अयं चेश्वर-प्रतिषेध एकदेशिनां प्रौढवादेनैवेति प्रागेव प्रतिपादितम् । अन्यथा ह्यीश्वराभावादित्येवोच्येत । ईश्वराभ्युपगमे तु सन्नि-कर्षजन्यजातीयत्वमेव प्रत्यक्षलक्षणं विवक्षितं साजात्यं च ज्ञानत्वसाक्षात्त्वाद्याप्यजात्येति भावः ॥ ९२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रुतिस्मृतिभ्यां कथमीशो न सिध्यतीत्याकाङ्क्षायां तर्कविरोधं लौकिकमेव बाधकमाह।

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ॥९३॥

ईश्वरोऽभिमतः किं क्लेशादिमुक्तो वा तैर्बद्धो वा। अन्यतरस्याप्यसम्भवान्नेश्वरसिद्धिरित्यर्थः ॥ ९३ ॥

उभयथाप्यसत्करत्वम् ॥ ९४ ॥

मुक्तत्वे सति स्रष्टृत्वाद्यक्षमत्व तत्प्रयोजकाभिमानरागाद्यभावात्। बद्धत्वेऽपि मूढत्वान्न सृष्ट्यादिक्षमत्वमित्यर्थः ॥९४॥

नन्वेवमीश्वरप्रतिपादकश्रुतीनां का गतिस्तत्राह।

मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासा सिद्धस्य वा ॥९५॥

यथायोगं काचित् श्रुतिर्मुक्तात्मनः केवलात्मसामान्यस्य ज्ञेयताभिधानाय सन्निधिमात्रैश्वर्य्येण स्तुतिरूपा प्ररोचनार्था। काचिच्च सङ्कल्पपूर्वकस्रष्टृत्वादिप्रतिपादिका श्रुतिः सिद्धस्य ब्रह्मविष्णुहरादेरेवानित्येश्वरस्याभिमानादिमतोऽपि गौणनित्यत्वादिमत्त्वान्नित्यत्वाद्युपासापरेत्यर्थः ॥ ९५ ॥

ननु तथापि प्रकृत्याद्यखिलाधिष्ठातृत्वं श्रूयमाणं नोपपद्यते लोके सङ्कल्पादिना परिणमनस्यैवाधिष्ठातृत्वव्यवहारादिति तत्राह।

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ॥ ९६ ॥

यदि सङ्कल्पेन स्रष्टृत्वमधिष्ठातृत्वमुच्यते तदायं दोषः स्यात्। अस्माभिस्तु पुरुषस्य सन्निधानादेवाधिष्ठातृत्वं स्रष्टृत्वादिरूपमिष्यते मणिवत्। यथायस्कान्तमणेः सान्निध्यमात्रेण शल्यनिष्कर्षकत्वं न सङ्कल्पादिना तथैवादिपुरुषस्य संयोग-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मात्रेण प्रकृतेर्महत्स्वरूपेण परिणमनम्। इदमेव च स्वोपाधि-स्रष्टृत्वमित्यर्थः। तथा चोक्तम्।

निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्त्तते।
सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः॥
अत आत्मनि कर्त्तृत्वमकर्त्तृत्वं च संस्थितम्।
निरिच्छत्वादकर्त्तासौ कर्त्ता सन्निधिमात्रतः॥

इति। तदैक्षत बहु स्यामित्यादिश्रुतिस्तु कूलं पिपतिषतीतिवद्गौणी प्रकृतेरासन्नबहुतरगुणसंयोगात्। अथवा बुद्धिपूर्वसृष्टिविषयमेतादृशवाक्यजातं न त्वादिसर्गपरं तस्याबुद्धिपूर्वकत्वस्मरणादिति भावः। यथा कौर्मे।

इत्येष प्राकृतः सर्गः सङ्क्षेपात् कथितो मया।
अबुद्धिपूर्वकस्त्वेष ब्राह्मीं सृष्टिं निबोधत॥

इति। अस्य च वाक्यस्यादिपुरुषबुद्ध्यजन्यत्वेन सङ्कोचे गौरवमिति॥ ८६॥

न केवलं सर्गादावेव पुरुषस्य संयोगमात्रेण स्रष्टृत्वादिकमपि त्वन्येष्वपि सङ्कल्पादिपूर्वकेषु भूतादिष्वखिलेषु विशेषकार्य्येष्वपि सर्वपुरुषाणामित्याह।

विशेषकार्य्येष्वपि जीवानाम्॥ ८७॥

अधिष्ठातृत्वं सन्निधानादित्यनुषज्यते। अन्तःकरणोपलक्षितस्यैव जीवशब्दार्थत्वं षष्ठाध्याये वक्ष्यति तथा च विशेषकार्य्ये विसर्गाख्ये व्यष्टिसृष्टावपि जीवानामन्तःकरणप्रतिबिम्बितचेतनानां सन्निधानादेवाधिष्ठातृत्वं न तु केनापि व्यापारेण कूटस्थचिन्मात्ररूपत्वादित्यर्थः॥ ८७॥

ननु चेत् सदा सर्वज्ञ ईश्वरो नास्ति तर्हि वेदान्तमहावाक्यार्थस्य विवेकस्योपदेशेऽन्धपरम्पराशङ्कयाप्रामाण्यं प्रसज्येत तत्राह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः ॥ ९८॥

हिरण्यगर्भादीनां सिद्धरूपस्य यथार्थस्य बोद्धृत्वात् तद्वक्तृकायुर्वेदादिप्रामाण्येनावधृताच्चैषां वाक्यार्थोपदेशः प्रमाणमिति शेषः ॥ ९८ ॥

ननु पुरुषस्य चेत् सन्निधिमात्रेण गौणमधिष्ठातृत्वं तर्हि मुख्यमधिष्ठातृत्वं कस्येत्याकाङ्क्षायामाह।

अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ॥ ९९ ॥

अन्तःकरणस्यानुपचरितमधिष्ठातृत्वं सङ्कल्पादिद्वारकं प्रत्येतव्यम्। नन्वधिष्ठातृत्वं घटादिवदचेतनस्य न युक्तं तत्राह। लोहवत् तदुज्ज्वलितत्वादिति। अन्तःकरणं हि तप्तलोहवच्चेतनोज्ज्वलितं भवति। अतस्तस्य चेतनायमानतयाधिष्ठातृत्वं घटादिव्यावृत्तमुपपद्यत इत्यर्थः। नन्वेवं चैतन्येनान्तःकरणस्योज्ज्वलने चितेः सङ्गित्वमग्निवदेव स्यादिति चेन्न। नित्योज्ज्वलचैतन्यसंयोगविशेषमात्रस्य संयोगविशेषजन्यचैतन्यप्रतिविम्बस्यैवान्तःकरणोज्ज्वलनरूपत्वात्। न तु चैतन्यमन्तःकरणे संक्रामति येन सङ्गिता स्यात्। अग्नेरपि हि प्रकाशादिकं न लोहे संक्रामति। किन्त्वग्नियोगविशेष एव लोहस्योज्ज्वलनमिति। नन्वेवमपि संयोगेन परिणामित्वमिति चेन्न सामान्यगुणातिरिक्तधर्मोत्पत्तावेव परिणामव्यवहारादिति। अयं च संयोगविशेषोऽन्तःकरणस्यैव सत्त्वोद्रेकरूपात् परिणामाद्भवतीति फलबलात् कल्प्यते पुरुषस्यापरिणामित्वेन संयोगे तन्निमित्तकविशेषासम्भवादिति। अयमेव च संयोगविशेषो बुद्ध्यात्मनोरन्योऽन्यप्रतिविम्बने हेतुः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ननु प्रतिबिम्बहेतुतया संयोगविशेषावश्यकत्वे प्रतिबिम्बकल्पना व्यर्था प्रतिबिम्बकार्यस्यार्थज्ञानादेः संयोगविशेषादेव सम्भवादिति। मैवम्। बुद्धौ चैतन्यप्रतिबिम्बश्चैतन्यदर्शनार्थं कल्प्यते दर्पणे मुखप्रतिबिम्बवत्। अन्यथा कर्मकर्तृविरोधेन स्वस्य साक्षात् स्वदर्शनानुपपत्तेः। अयमेव च चित्प्रतिबिम्बो बुद्धौ चिच्छायापत्तिरिति चैतन्याध्यास इति चिदावेश इति चोच्यते। यश्च चैतन्ये बुद्धेः प्रतिबिम्बः स चारूढविषयैः सह बुद्धेर्भानार्थमिष्यते। अर्थाकारतयैवार्थग्रहणस्य बुद्धेः स्थले दृष्टत्वेन तां विना संयोगविशेषमात्रेणार्थभानस्य पुरुषेऽप्यनौचित्यात्। अर्थाकारस्यैवार्थग्रहणशब्दार्थत्वाच्चेति। स चार्थाकारः पुरुषे परिणामो न सम्भवतीत्यर्थात् प्रतिबिम्बरूप एव पर्य्यवस्यतीति दिक्। स चायमन्योऽन्यप्रतिबिम्बो योगभाष्ये व्यासदेवैः सिद्धान्तितः। चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुपतति तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहरूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारिमात्रतया बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिरित्याख्यायत इत्यादिना। योगवार्त्तिके चैतद्विस्तरतोऽस्माभिः प्रतिपादितम्। कश्चित् तु बुद्धिगतया चिच्छायया बुद्धेरेव सर्वार्थज्ञातृत्वमिच्छादिभिर्ज्ञानस्य सामानाधिकरण्यानुभवादन्यस्य ज्ञानेनान्यस्य प्रवृत्त्यनौचित्याच्चेत्याह। तदात्माज्ञानमूलकत्वादुपेक्षणीयम्। एवं हि बुद्धेरेव ज्ञातृत्वे चिदवसानो भोग इत्यागामिसूत्रद्वयविरोधः पुरुषे प्रमाणाभावश्च पुरुषलिङ्गस्य भोगस्य बुद्धावेव स्वीकारात्। न च प्रतिबिम्बान्यथानुपपत्त्या बिम्बभूतः पुरुषः सेत्स्यतीति वाच्यम्। अन्योऽन्याश्रयात् पृथग्बिम्बसिद्धौ बुद्धिस्थचैतन्यस्य प्रतिबिम्बतासिद्धिः प्रतिबिम्बतासिद्धौ च तत्प्रतियोगितया बिम्बसिद्धिरिति। अस्मन्मते च

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्राहकतया पुरुषसिद्धनन्तरं तस्य ज्ञेयत्वान्यथानुपपत्त्या प्रतिबिम्बसिद्धौ नान्योऽन्याश्रयः। अथ वृत्तिसाक्षितया बिम्बरूपश्चेतनः सिध्यतीति चेत् तर्हि साक्षिण एव प्रमाहत्वमप्युचितम्। उभयोर्ग्राहकत्वकल्पने गौरवात्। वृत्तिज्ञानघटज्ञानयोः सामानाधिकरण्यानुभवाच्च। किञ्चैवं सति बुद्धेरेव भोक्तृत्वे भोक्तृभावादित्यागामिसूत्रेण भोक्तृतया पुरुषसाधनं विरुध्येत। अथ बुद्धिगतचिच्छायारूपेण सम्बन्धेन बिम्बस्यैव ज्ञानं न तु चितौ बुद्धिप्रतिबिम्बः कल्प्यत इत्येतावन्मात्रे चेत् तस्याशयो वर्ण्यते। तदप्यसत्। सूर्यादेः स्वप्रतिबिम्बरूपसम्बन्धेन जलादितत्स्थवस्तुभासकत्वादर्शनात्। किरणैरेव तदुभयभासनात्। मरुमरीचिकादौ तु स्वाध्यस्तजलादिभासकत्वं दृष्टमेवेति दृष्टानुसारेणास्माभिश्चितौ बुद्धिप्रतिबिम्ब एव सर्वार्थभानहेतुतया सम्बन्धः कल्पित इति। यच्चोक्तमन्यस्य ज्ञानेनान्यस्य प्रवृत्त्यनुपपत्तिरिति। तदपि न। अकर्त्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत्। इत्यागामिसूत्रेण ज्ञानप्रवृत्त्योर्वैयधिकरण्यस्य दृष्टान्तेनोपपादयिष्यमाणत्वात्। बुद्धेः सङ्कल्पेन देहक्रियायामिवात्रापि संयोगविशेषादेरेव नियामकत्वादिति ॥ ९९ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणं लक्षयित्वानुमानं लक्षयति।

प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ॥१००॥

प्रतिबन्धो व्याप्तिर्व्याप्तिदर्शनाद्व्यापकज्ञानमनुमानं प्रमाणमित्यर्थः। अनुमितिस्तु पौरुषेयो बोध इति ॥ १०० ॥

शब्दप्रमाणं लक्षयति ॥

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ १०१ ॥

आप्तिरत्र योग्यता वेदस्यापौरुषेयतायाः पञ्चमाध्याये

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वक्ष्यमाणत्वात् । तथा च योग्यः शब्दस्तज्जन्यं ज्ञानं शब्दाख्यं प्रमाणमित्यर्थः । फलं च पौरुषेयः शाब्दो बोध इति ॥१०१॥

प्रमाणप्रतिपादनस्य स्वयमेव फलमाह ।

उभयसिद्धिः प्रमाणात् तदुपदेशः ॥१०२॥

उभयोरात्मानात्मनोर्विवेकेन सिद्धिः प्रमाणादेव भवति । अतस्तस्य प्रमाणस्योपदेशः कृत इत्यर्थः ॥ १०२ ॥

तत्र येनानुमानविशेषेण प्रमाणेन मुख्यतोऽत्र प्रकृति-पुरुषौ विविच्य साधनीयौ तद्दर्शयति ।

सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धिः ॥ १०३ ॥

अनुमानं तावत् त्रिविधं भवति । पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्टं चेति । तत्र प्रत्यक्षीकृतजातीयविषयकं पूर्ववत् । यथा धूमेन वह्न्यनुमानम् । वह्निजातीयो हि महानसादौ पूर्वं प्रत्यक्षीकृतः । व्यतिरेकानुमानं शेषवत् शेषोऽपूर्वोऽर्थोऽस्य विषयत्वेनास्तीति शेषवत् । अप्रसिद्धसाध्यकमिति यावत् । यथा पृथिवीत्वेनेतरभेदानुमानम् । पृथिवीतरभेदो हि प्रागसिद्धः । सामान्यतो दृष्टं च तदुभयभिन्नमनुमानम् । यत्र सामान्यतः प्रत्यक्षादिजातीयमादाय व्याप्तिग्रहात् पक्षधर्मताबलेन तद्विजातीयोऽप्रत्यक्षाद्यर्थः सिध्यति । यथा रूपादिज्ञाने क्रियात्वेन करणवत्त्वानुमानम् । अत्र हि पृथिवीत्वादिजातीयं कुठारादिकरणमादाय व्याप्तिं गृहीत्वा तद्विजातीयमतीन्द्रियं ज्ञानकरणमिन्द्रियं साध्यत इति । तत्र सामान्यतो दृष्टादनुमानाद्द्वयोः प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिरित्यर्थः । तत्र प्रकृतेः सामान्यतो दृष्टमनुमानम् । यथा महत्तत्त्वं सुखदुःखमोहधर्मकद्रव्योपादानकं कार्य्यत्वे सति सुखदुःखमोहधर्मकत्वात् सुवर्णादिजकुण्डलादिवदित्यादि । पुरुषे तु यद्य-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्यनुमानापेक्षा नास्ति सर्वसम्मतत्वात् तथापि प्रकृत्यादि-विवेके सामान्यतो दृष्टमेवापेक्ष्यते। तद्यथा। प्रधानं परार्थं संहत्य कारित्वाद्गृहादिवदिति। अत्र हि प्रत्यक्षसिद्धं देहाद्यर्थकत्वं गृहादिषु गृहीत्वा तद्विजातीयः पुरुषः प्रधानादिपरत्वेनानुमीयते। देहादीनां च भोक्तृत्वमविवेकेन प्रागृहीतमित्युभयसिद्धिरिति॥ १०३॥

या प्रमाणस्य फलभूता प्रमाख्यसिद्धिरुक्ता तया पुरुषस्य परिणामापत्तिरित्याशङ्कायां तस्याः स्वरूपमाह।

चिदवसानो भोगः॥ १०४॥

पुरुषस्वरूपे चैतन्ये पर्य्यवसानं यस्यैतादृशो भोगः सिद्धिरित्यर्थः। बुद्धेर्भोगस्य व्यावर्त्तनाय चिदवसान इति। चितः परिणामित्वसधर्मत्वादिशङ्कानिरासायावसानपदम्। चितौ भोगस्य स्वरूपे पर्य्यवसितत्वान्न कौटस्थ्यादिहानिरित्याशयः। तथाहि प्रमाणाख्यवृत्त्यारूढं प्रकृतिपुरुषादिकं प्रमेयं वृत्त्या सह पुरुषे प्रतिविम्बितं सद्भासते। अतोऽर्थोपरक्तवृत्तिप्रतिविम्बावच्छिन्नं स्वरूपचैतन्यमेव भानं पुरुषस्य भोगः प्रमाणस्य च फलमिति। ततश्च प्रतिविम्बरूपेणार्थसम्बन्धे द्वारतया वृत्तीनां करणत्वमिति। तदुक्तं विष्णुपुराणे।

गृहीतानिन्द्रियैरर्थानात्मने यः प्रयच्छति।
अन्तःकरणरूपाय तस्मै विश्वात्मने नमः॥

इति। राज्ञो हि करणवर्गः स्वामिने भोग्यजातं समर्पयतीति दृष्टमिति। भोगशब्दार्थश्चाभ्यवहरणम्। आत्मसात्करणमिति यावत्। स च देहादिचेतनान्तेषु साधारणः। विशेषस्त्वयम्। अपरिणामित्वात् पुरुषस्य विषयभोगः प्रतिविम्बादानमात्रम्। अन्येषां तु परिणामित्वात् पुष्टादिर-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रीति। अयमेव च परिणामरूपः पारमार्थिको भोगः पुरुषे प्रतिषिध्यते बुद्धेर्भोग इवात्मनीत्यादिभिरिति मन्तव्यम्। अस्मिन् सूत्रे पुरुषस्यापि फलव्याप्यता सिद्धा चिदवसानताया एवोभयसिद्धित्ववचनादिति ॥ १०४ ॥

ननु कर्त्तुरेव लोके क्रियाफलभोगो दृष्टः। यथा सञ्चरत एव सञ्चारोत्थदुःखभोग इति। तत् कथं बुद्धिकृतधर्मादिफलस्य सुखाद्यात्मिकाया अर्थोपरक्तबुद्धिवृत्तेर्भोगः पुरुषे घटेतेत्याशङ्कायामाह।

अकर्त्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत् ॥१०५॥

बुद्धिकर्मफलस्यापि वृत्तेरुपभोगस्तदकर्त्तुरपि पुरुषस्य युक्तः। अन्नाद्यवत्। यथान्यकृतस्यान्नादेरुपभोगो राज्ञो भवति तद्वदित्यर्थः। अविवेकस्य स्वस्वामिभावस्य वा भोगनियामकत्वात् तु नातिप्रसङ्गः। सुखदुःखादेः कर्मफलत्वमभ्युपेत्य बुद्धिगतं कर्मफलं पुरुषो भुङ्क्त इत्युक्तम् ॥ १०५ ॥

इदानीं पुरुषगतभोगस्यैव कर्मफलत्वं स्वीकृत्य बुद्धिकर्मणा पुरुष एव फलमुत्पद्यत इति मुख्यसिद्धान्तमाह।

अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्त्तुः फलावगमः ॥१०६॥

अथवा कर्त्तरि फलमेव न भवति सुखं भुञ्जीयेत्यादिकामनाभिर्भोगस्यैव फलत्वात्। अतो भोक्तृनिष्ठमेव फलं भवति शास्त्रविहितं फलमनुष्ठातरीति। शास्त्रेषु कर्त्तुः फलावगमस्तु तत्सिद्धेरकर्त्तृनिष्ठाया भोगाख्यसिद्धेः कर्त्तृभावविवेकादित्यर्थः॥ योऽहं करोमि स एवाहं भुञ्ज इति हि लौकिकानुभव इति। या च सुखं मे भूयादित्यादिकामना सा पुत्रो मे भूयादितिवत् फलसाधनत्वेनैवोपपद्यते। भोगस्तु नान्यस्य साधनम्। अत स एव फलमिति मुख्यः सिद्धान्तः। भोगस्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुरुषस्वरूपत्वेऽपि वैशेषिकाणां मते श्रोत्रवत् कार्य्यता बोध्या सुखाद्यवच्छिन्नचितेरेव भोगत्वात्। अस्मिंश्च भोगस्य फलत्वपक्षे दुःखभोगाभाव एवापवर्गो बोध्यः। अथवा भोग्यतारूपस्वत्वसम्बन्धेन सुखदुःखाभावयोरेव फलत्वमस्तु तेन सम्बन्धेन धनादेरिव सुखादेरपि पुरुषनिष्ठत्वादिति ॥ १०६ ॥

तदेवं प्रमाणानि प्रमाणफलभूतां प्रमेयसिद्धिं च प्रतिपाद्य प्रमेयसिद्धेरपि फलमाह।

नोभयं च तत्त्वाख्याने ॥ १०७ ॥

प्रमाणेन प्रकृतिपुरुषयोस्तत्त्वाख्याने तत्त्वसाक्षात्कारे सत्युभयमपि सुखदुःखे न भवतः। विद्वान् हर्षशोकौ जहातीति श्रुतेर्न्यायाच्चेत्यर्थः ॥ १०७ ॥

सङ्क्षेपतो विवेकेनानुमापितौ प्रकृतिपुरुषौ तयोः प्रकृतिपुरुषयोरनुमानेऽवान्तरविशेषा इतः परमध्यायसमाप्तिं यावद्विचार्य्यास्तत्र चादौ प्रकृत्याद्यनुमानेष्वनुपलम्भबाधकमपाकरोति।

विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ॥ १०८ ॥

इन्द्रियानुपलभ्यतामात्रतो घटाद्यभाववत् प्रत्यक्षेण चार्वाकैः प्रकृत्याद्यभावः साधयितुं न शक्यते यतो विद्यमानोऽप्यर्थ इन्द्रियाणां कालभेदेन विषयोऽविषयश्च भवति। अतिदूरत्वादिदोषात्। इन्द्रियघातेन्द्रियग्रहाभ्यां चेत्यर्थः। सामग्रीसमवधाने सत्यनुपलम्भस्यैवाभावप्रत्यक्षहेतुता। प्रकृत्याद्युपलम्भे तु वक्ष्यमाणप्रतिबन्धान्न सामग्रीसमवधानमिति भावः। अतिदूरादयश्च दोषा विशिष्य कारिकया परिगणिताः।

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च ॥

इति। समानाभिहारः सजातीयसंवलनम्। यथा माहिषे गव्यमिश्रणान्माहिषत्वाग्रहणमिति ॥ १०८ ॥

नन्वतिदूरत्वादिषु मध्ये प्रकृत्याद्युपलम्भे किं प्रतिबन्धकमिति तत्राह।

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिः ॥ १०९ ॥

तयोः पूर्वोक्तयोः प्रकृतिपुरुषयोरनुपलब्धिस्तु सौक्ष्म्यादित्यर्थः। सूक्ष्मत्वं च नाणुत्वम्। विश्वव्यापनात्। नापि दुरूहत्वादिकम्। दुर्वचत्वात्। किन्तु प्रत्यक्षप्रमाप्रतिबन्धिका जातिः। योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति। जातिसाङ्कर्य्यं च न दोषावहम्। अथवा निरवयवद्रव्यत्वमेवात्र सूक्ष्मत्वं योगजधर्मश्चोत्तेजक एवेति ॥ १०९ ॥

नन्वभावादेवानुपलब्धिसम्भवे किमर्थं सौक्ष्म्यं कल्प्यते। अन्यथा च शशशृङ्गादेरपि सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः किं न स्यादिति तत्राह।

कार्य्यदर्शनात् तदुपलब्धेः ॥ ११० ॥

कार्य्यान्यथानुपपत्त्या प्रकृत्यादिसिद्धौ सत्यां तेषां सूक्ष्मत्वं कल्प्यते। अनुमानात् पूर्वं च सूक्ष्मत्वादिसंशयेनाभावानिर्णयादनुमानमुपपद्यत इत्यर्थः ॥ ११० ॥

अत्र शङ्कते।

वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत् ॥१११॥

ननु कार्य्यं चेदुत्पत्तेः प्राक् सिद्धं स्यात् तदा तदाधारतया नित्या प्रकृतिः सेत्स्यति कार्य्यसाहित्येनैव कारणानु-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मानस्य वक्ष्यमाणत्वात्। वादिविप्रतिपत्तेस्तु सत्कार्य्यस्यैवासिद्धिरिति यदीत्यर्थः ॥ १११ ॥

अभ्युपेत्य परिहरति।

तथाप्येकतरदृष्ट्या एकतरसिद्धेर्नापलापः ॥११२॥

मास्तु सत् कार्य्यं तथाप्येकतरस्य कार्य्यस्य दृष्ट्यान्यतरस्य कारणस्य सिद्धेरपलापो नास्त्येवेति नित्यं कारणं सिद्धमेव तत एव च परिणामिनः सकाशादपरिणामितया पुरुषस्य विवेकेन मोक्षोपपत्तिरित्यर्थः। अनेनैवाभ्युपगमवादेन वैशेषिकाद्यास्तिकशास्त्रं प्रवर्त्तते। अतो न सत्कार्य्यवादिश्रुतिस्मृतिविरोधेऽपि तेषामंशान्तरेष्वप्रामाण्यमिति मन्तव्यम् ॥ ११२ ॥

परमार्थतः परिहारमाह।

त्रिविधविरोधापत्तेश्च ॥ ११३ ॥

अथ सर्वं कार्य्यं त्रिविधं सर्ववादिसिद्धमतीतमनागतं वर्त्तमानमिति। तत्र यदि कार्य्यं सदा सन्नेष्यते तदा त्रिविधत्वानुपपत्तिः। अतीतादिकाले घटाद्यभावेन घटादेरतीतादिधर्मकत्वानुपपत्तेः। सदसतोः सम्बन्धानुपपत्तेः। किञ्च प्रतियोगित्वस्य प्रतियोगिरूपत्वे तद्दोषतादवस्थ्यात्। अभावमात्रस्वरूपत्वे पटाद्यभावो घटाद्यभावः स्यादभावत्वाविशेषात्। अभावेष्वपि स्वरूपतो विशेषाङ्गीकारे चाभावत्वस्य परिभाषामात्रत्वप्रसङ्गात्। अथ प्रतियोग्येवाभावविशेषक इति चेन्न। असतः प्रतियोगिनः प्रागभावादिषु विशेषकत्वासम्भवादिति। तस्मान्नित्यस्यैव कार्य्यस्यातीतानागतवर्त्तमानावस्थाभेदा एव वक्तव्याः। घटोऽतीतो घटो वर्त्तमानो घटो भविष्यन्निति प्रत्ययानां तुल्यरूपतौचित्यात्। न त्वेकस्य भावविषयत्वमन्ययो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वाभावविषयत्वमिति। ते एवातीतानागतत्वे अवस्थे ध्वंसप्रागभावव्यवहारं जनयतस्तदतिरिक्ताभावद्वये प्रमाणाभावादिति दिक्। अधिकं तु पातञ्जले द्रष्टव्यम्। एवमत्यन्ताभावान्योऽन्याभावावप्यधिकरणस्वरूपावेव। न चैवं प्रतियोगिसत्ताकालेऽप्यधिकरणस्वरूपानपायादत्यन्ताभावप्रत्ययप्रसङ्ग इति वाच्यम्। परैरपि प्रतियोगिमतिदेशे तदत्यन्ताभावाङ्गीकारात्। प्रतियोगिसम्बन्धस्यातीतानागतावस्थयोरेव सामयिकात्यन्ताभावत्वसम्भवाच्च। तस्मान्नास्मत्सिद्धान्तेऽभावोऽतिरिक्तः। किञ्च घटो ध्वस्तो घटो भावी घटोऽत्र नास्तीत्यादिप्रत्ययनियामकतया किञ्चिद्वस्त्वाकाङ्क्षायां तद्भावरूपमेव कल्प्यते लाघवात्। अभावस्यादृष्टस्य कल्पने गौरवादिति मन्तव्यम्॥ ११३॥

इतश्च सत्कार्य्यसिद्धिरित्याह।

नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्॥ ११४॥

नरशृङ्गतुल्यस्यासत उत्पादोऽपि न सम्भवतीत्यर्थः॥११४॥

अत्र हेतुमाह।

उपादाननियमात्॥ ११५॥

मृद्येव घट उत्पद्यते तन्तुष्वेव पट इत्येवं कार्य्याणामुपादानकारणं प्रति नियमोऽस्ति। स न सम्भवति। उत्पत्तेः प्राक् कारणे कार्य्यासत्तायां हि न कोऽपि विशेषोऽस्ति येन कञ्चिदेवासन्तं जनयेन्नेतरमिति। विशेषाङ्गीकारे च भावत्वापत्तेर्गतमसत्तया। स एव च विशेषोऽस्माभिः कार्य्यस्यानागतावस्थेत्युच्यत इति। एतेन यद्वैशेषिकाः प्रागभावमेव कार्य्योत्पत्तिनियामकं कल्पयन्ति तदप्यपास्तम्। अभावकल्पनापेक्षया भावकल्पने लाघवात्। भावानां दृष्टत्वादन्यानपेक्षत्वाच्च।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किञ्चाभावेषु स्वतो विशेषे भावत्वापत्तिः। प्रतियोगिरूपविशेषश्च प्रतियोग्यसत्ताकाले नास्ति। अतोऽभावानामविशिष्टतया न कार्य्योत्पत्तौ नियामकत्वं युक्तमिति ॥ ११५ ॥

उपादाननियमे प्रमाणमाह।

सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात् ॥ ११६ ॥

सुगमम्। उपादानानियमे च सर्वत्र सर्वदा सर्वं सम्भवेदित्याशयः ॥ ११६ ॥

इतश्चनासदुत्पाद इत्याह।

शक्तस्य शक्यकरणात् ॥ ११७ ॥

कार्य्यशक्तिमत्त्वमेवोपादानकारणत्वम्। अन्यस्य दुर्वचत्वात्। लाघवाच्च। सा शक्तिः कार्य्यस्यानागतावस्थैवेत्यतः शक्तस्य शक्यकार्य्यकरणान्नासत उत्पाद इत्यर्थः ॥ ११७ ॥

इतश्च।

कारणभावाच्च ॥ ११८ ॥

उत्पत्तेः प्रागपि कार्य्यस्य कारणाभेदः श्रूयते तस्माच्च सत्कार्य्यसिद्ध्या नासदुत्पाद इत्यर्थः। कार्य्यस्यासत्त्वे हि सदसतोरभेदानुपपत्तिरिति। उत्पत्तेः प्राक् कार्य्याणां कारणाभेदे च श्रुतिः। तदेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्। सदेव सौम्येदमग्र आसीत्। आत्मैवेदमग्र आसीत्। आप एवेदमग्र आसुरित्याद्या ॥ ११८ ॥

शङ्कते।

न भावे भावयोगश्चेत् ॥ ११९ ॥

नन्वेवं कार्य्यस्य नित्यत्वे सति भावरूपे कार्य्ये भावयोग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उत्पत्तियोगो न सम्भवति। असतः सत्त्व एवोत्पत्तिव्यवहारादिति चेदित्यर्थः ॥ ११९ ॥

परिहरति।

नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ ॥१२०॥

कार्य्योत्पत्तेर्व्यवहाराव्यवहारौ कार्य्याभिव्यक्तिनिमित्तकौ। अभिव्यक्तित उत्पत्तिव्यवहारोऽभिव्यक्त्यभावाच्चोत्पत्तिव्यवहाराभावः। न त्वसतः सत्त्वयेत्यर्थः। अभिव्यक्तिश्च न ज्ञानं किन्तु वर्त्तमानावस्था। कारणव्यापारोऽपि कार्य्यस्य वर्त्तमानलक्षणपरिणाममेव जनयति। सतश्च कार्य्यस्य कारणव्यापारादभिव्यक्तिमात्रं लोकेऽपि दृष्टम्। यथा शिलामध्यस्थप्रतिमाया लैङ्गिकव्यापारेणाभिव्यक्तिमात्रं तिलस्थतैलस्य च निष्पीड़नेन धान्यस्थतण्डुलस्य चावघातेनेति। तदुक्तं वाशिष्ठे।

सुषुप्तावस्थया चक्रपद्मरेखाः शिलोदरे।
यथा स्थिता चितेरन्तस्तथेयं जगदावली॥

इति। प्रकृतिद्वारेणेत्यर्थः ॥ १२० ॥

ननु भवतूत्पत्तेः प्राक् सतो यथाकथञ्चिदुत्पत्तिः। नाशस्त्वनादिभावस्य कथं स्यादित्याकाङ्क्षायामाह।

नाशः कारणलयः ॥ १२१ ॥

लीङ् श्लेषण इत्यनुशासनाल्लयः सूक्ष्मतया कारणेष्वविभागः। स एवातीताख्यो नाश इत्युच्यत इत्यर्थः। अनागताख्यस्तु लयः प्रागभाव इत्युच्यत इति शेषः। लीनकार्य्यव्यक्तेस्तु पुनरभिव्यक्तिर्नास्ति। प्रत्यभिज्ञाद्यापत्त्या पातञ्जले निराकृतत्वात्। परेषामिवास्माकमप्यनागतावस्थायाः प्रागभावाख्याया अभिव्यक्तिहेतुत्वाच्चेति। नन्वतीतमप्यस्तीत्यत्र किं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रमाणं न अनागतसत्तायामिव श्रुत्यादयोऽतीतसत्तायामपि स्फुटमुपलभ्यन्त इति। मैवम्। योगिप्रत्यक्षत्वान्यथानुपपत्त्या- नागतातीतयोरुभयोरेव सत्त्वसिद्धेः। प्रत्यक्षसामान्ये विषयस्य हेतुत्वात्। अन्यथा वर्त्तमानस्यापि प्रत्यक्षेणासिद्ध्यापत्तेः। तस्माच्छ्रियामौत्सर्गिकप्रामाण्येनासति बाधके योगिप्रत्यक्षेणातीतमप्यस्तीति सिध्यति। योगिनामतीतानागतप्रत्यक्षे च श्रुतिस्मृतीतिहासादिकं प्रमाणं योगवार्त्तिके प्रपञ्चितमिति दिक्। तदेवमभिव्यक्तिलयाभ्यां कार्य्याणामुत्पत्तिनाशव्यवहारावुक्तौ। नन्वभिव्यक्तिरपि पूर्वं सती वासती वा। आद्ये कारणव्यापारात् प्रागपि कार्य्यस्याभिव्यक्त्या स्वकार्य्यजनकत्वापत्तिः कारणव्यापारश्च विफलः। अन्त्ये चाभिव्यक्तावेव सत्कार्य्यसिद्धान्तक्षतिः। असत्या एवाभिव्यक्तेरभिव्यक्त्यङ्गीकारादिति। अत्रोच्यते। कारणव्यापारात् प्राक् सर्वकार्य्याणां सदासत्त्वाभ्युपगमेनोक्तविकल्पानवकाशाद्घटवत् तदभिव्यक्तेरपि वर्त्तमानावस्थया प्रागसत्त्वेन तदसत्तानिवृत्त्यर्थं कारणव्यापारापेक्षणात्। अनागतावस्थया च सत्कार्य्यसिद्धान्तस्याक्षतेः। नन्वेकदा सदसत्त्वयोर्विरोध इति चेत्। प्रकारभेदस्योक्तत्वात्। नन्वेवमपि प्रागभावानङ्गीकारेण प्रागसत्त्वमेव कार्य्याणां दुर्वचमिति। मैवम्। अवस्थानमेव परस्पराभावरूपत्वादिति ॥ १२१ ॥

ननु सत्कार्य्यसिद्धान्तरक्षार्थमभिव्यक्तेरप्यभिव्यक्तिरिष्टव्या। तथा चानवस्थेत्याशङ्क्याह।

पारम्पर्य्यतोऽन्वेषणा वीजाङ्कुरवत् ॥ १२२ ॥

पारम्पर्य्यतः परम्पराकरूपेणैवाभिव्यक्तेरनुधावनं कर्त्तव्यम्। वीजाङ्कुरवत् प्रामाणिकत्वेन चास्या अदोषत्वादित्यर्थः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वीजाङ्कुराभ्यां चान्नायमेव विशेषो यद्वीजाङ्कुरस्थले क्रमिकपरम्परयानवस्थाभिव्यक्तौ चैककालीनपरम्परयेति। प्रामाणिकत्वन्तु तुल्यमेवेति। सर्वकार्य्याणां स्वरूपतो नित्यत्वमवस्थाभिर्विनाशित्वं चेति पातञ्जलभाष्ये वदद्भिर्व्यासदेवैरपीयमनवस्था प्रामाणिकत्वेन स्वीकृतेति। अत्र च वीजाङ्कुरदृष्टान्तो लोकदृष्ट्योपन्यस्तः। वस्तुतस्तु जन्मकर्मादिवदित्यत्रैव तात्पर्य्यम्। तेन वीजाङ्कुरप्रवाहस्यादिसर्गावधिकत्वेनानवस्थाविरहेऽपि न क्षतिः। आदिसर्गे हि वृक्षं विनैव बीजमुत्पद्यते हिरण्यगर्भसङ्कल्पेन तच्छरीरादिभ्य इति श्रुतिस्मृत्योः प्रसिद्धम्।

यथा हि पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः।
आदिवीजात् प्रभवति वीजान्यन्यानि वै ततः॥

इति विष्णुपुराणादिवाक्यैरिति॥ १२२॥

वस्तुतस्त्वनवस्थापि नास्तीत्याह।

उत्पत्तिवद्वाऽदोषः॥ १२३॥

यथा घटोत्पत्तेरुत्पत्तिः स्वरूपमेव वैशेषिकादिभिरसदुत्पादवादिभिरिष्यते लाघवात् तथैवास्माभिर्घटाभिव्यक्तेरप्यभिव्यक्तिः स्वरूपमेवेष्टव्या लाघवात्। अत उत्पत्ताविवाभिव्यक्तावपि नानवस्थादोष इत्यर्थः। अथैवमभिव्यक्तेरभिव्यक्त्यनङ्गीकारे कारणव्यापारात् प्राक् तस्याः सत्त्वानुपपत्त्या सत्कार्य्यवादक्षतिरिति चेन्न। अस्मिन् पक्षे सत एवाभिव्यक्तिरित्येव सत्कार्य्यसिद्धान्त इत्याशयात्। अभिव्यक्तेश्चाभिव्यक्त्यभावेन तस्याः प्रागसत्त्वेऽपि नासत्कार्य्यवादत्वापत्तिः। नन्वेवं महदादीनामेव प्रागसत्त्वमिष्यतां किमभिव्यक्त्याख्यावस्थाकल्पनेनेति चेन्न। तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीदित्यादिश्रुतिभिर-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्यक्तावस्थया सतामेव कार्य्याणामभिव्यक्तिसिद्धेः तथाप्यभिव्यक्तेः प्रागभावादिस्वीकारापत्तिरिति चेन्न। तिसृणामनागताद्यवस्थानामन्योऽन्यस्याभावरूपतयोक्तत्वात्। तादृशाभावनिवृत्त्यैव च कारणव्यापारसाफल्यादिसम्भवात्। अयमेव हि सत्कार्य्यवादिनामसत्कार्य्यवादिभ्यो विशेषो यत् नैरुच्यमानौ प्रागभावध्वंसौ सत्कार्य्यवादिभिः कार्य्यस्यानागतातीतावस्थे भावरूपे प्रोच्येते। वर्त्तमानताख्या चाभिव्यक्त्यवस्था घटाद्यतिरिक्तेष्यते। घटादेरवस्थात्रयवत्त्वानुभवादिति। अन्यत् तु सर्वं समानम्। अतो नास्त्यस्मास्वधिकशङ्कावकाश इति दिक् ॥ १२३ ॥

कार्य्यदर्शनात् तदुपलब्धेरिति सूत्रेण कार्य्येण मूलकारणमनुमेयमित्युक्तं तत्र कियत्पर्य्यन्तं कार्य्यमित्यवधारयितुं सर्वकार्य्याणां साधर्म्यमाह।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् ॥ १२४ ॥

कारणानुमापकत्वाल्लयगमनाद्वात्र लिङ्गं कार्य्यजातम्। न तु महत्तत्त्वमात्रमत्र विवक्षितं हेतुमत्त्वादीनामखिलकार्य्यसाधारण्यात्।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥

इति कारिकायामप्यत एव व्यक्ताख्यं सर्वं कार्य्यमेव लिङ्गमित्युक्तम्। तथा च तल्लिङ्गं हेतुमत्त्वादिधर्मकमिति वाक्यार्थः। तत्र हेतुमत्त्वं कारणवत्त्वम्। अनित्यत्वं विनाशिता। प्रधानस्य या व्यापिता पूर्वोक्ता तद्विपरीत्यमव्यापित्वम्। सक्रियत्वमध्यवसायादिरूपनियतकार्य्यकारित्वम्। प्रधानस्य तु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वक्रियासाधारण्येन कारणत्वाञ्च कार्य्यैकदेशमात्रकारित्वम् । न च क्रिया कर्मैव वक्तुं शक्यते। प्रकृतिक्षोभात् सृष्टिश्रवणेन प्रकृतेरपि कर्मवत्तयात्र सक्रियत्वापत्तेरिति। अनेकत्वं सर्गभेदेन भिन्नत्वम्। सर्गद्वयासाधारण्यमिति यावत्। न पुनः सजातीयानेकव्यक्तिकत्वम्। प्रकृतावतिव्याप्तेः। प्रकृतेरपि सत्त्वाद्यनेकरूपत्वात्। सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वादित्यागामिसूत्रादिति। आश्रितत्वं चावयवेष्विति ॥ १२४ ॥

कार्य्यकारणयोर्भेदे हेतुमत्त्वादि सिध्यतीत्यतः कारणातिरिक्तकार्य्यसिद्धौ प्रमाणान्याह ।

आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा ॥ १२५ ॥

तत्सिद्धिर्लिङ्गाख्यकार्य्यस्य कारणातिरेकतः सिद्धिः क्वचिदाञ्जस्यात् प्रत्यक्षत एवानायासेन भवति। यथा स्थौल्यादिना धर्मेण तन्त्वादिभ्यः पटादीनाम्। क्वचिच्च गुणसामान्यादेरभेदतो गुणसामान्याद्यात्मकत्वेन लिङ्गेनानुमानेन भवति। यथाध्यवसायादिगुणात्मकत्वरूपेण कारणवैधर्म्येण महदादीनाम्। यथा च महापृथिवीत्वादिसामान्यात्मकतारूपेण तन्मात्रवैधर्म्येण पृथिव्यादीनाम्। क्वचित् त्वादिशब्दगृहीतेन कर्माद्यात्मकतावैधर्म्येण। यथा स्थिरावयवेभ्योऽतिरिक्तस्य चञ्चलावयविनः। तथा प्रधानव्यपदेशात् प्रधानश्रुतेरपि कारणातिरिक्तकार्य्यसिद्धिर्भवति। प्रधीयतेऽस्मिन् हि कार्य्यजातमिति प्रधानमुच्यते। तच्च कार्य्यकारणयोर्भेदाभेदौ विना न घटते। अत्यन्ताभेदे स्वस्याधारत्वासम्भवादित्यर्थः। कार्य्याणां साधर्म्यरूपं लक्षणं कारणातिरिक्तकार्य्येषु प्रमाणं च सूत्राभ्यां दर्शितम् ॥ १२५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इदानीं कार्य्यसधर्मकतया कारणानुमानाय कार्य्यकारणयोरपि साधर्म्यं प्रदर्शयति।

त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः ॥ १२६ ॥

द्वयोः कार्य्यकारणयोरेव त्रिगुणत्वादिसाधर्म्यमित्यर्थः। आदिशब्दग्राह्यास्र कारिकायामुक्ताः।

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥

इति। त्रयः सत्त्वादिद्रव्यरूपा गुणा अत्र सन्तीति त्रिगुणम्। तत्र महदादिषु कारणरूपेण सत्त्वादीनामवस्थानं गुणत्रयसमूहरूपेण तु प्रधाने सत्त्वादीनामवस्थानं वने वृक्षवदेवावगन्तव्यम्। अथवा सत्त्वादिशब्देन सुखदुःखमोहानामपि वचनात् कार्य्यकारणयोस्त्रिगुणत्वं समञ्जसमिति। अविवेकिविषयोऽन्यैरेव दृश्यम्। भोग्यमिति यावत्। अविवेकि च विषयश्चेति तच्छेदे त्वविवेकित्वं सम्भूय कारित्वं विषयत्वं तु भोग्यत्वमेव। सामान्यं सर्वपुरुषसाधारणम्। पुरुषभेदेऽप्यभिन्नमिति यावत्। प्रसवधर्मि परिणामि। व्यक्तं कार्य्यम्। प्रधानं कारणमित्यर्थः। कार्य्यकारणयोरन्योऽन्यवैधर्म्यमपि कारिकया दर्शितम्।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥

इति। अनेकत्वं सर्गभेदेऽप्यभिन्नत्वम्। अतः प्रकृतेरनेकव्यक्तिकत्वेऽपि नैकत्वक्षतिः।

महान्तं च समाहृत्य प्रधानं समवस्थितम्।
अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं चापि विद्यते॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति विष्णुपुराणेनासंख्येयतावचनात् तु प्रधानस्य व्यक्तिबहुत्वसिद्धिरिति ॥ १२६ ॥

प्रधानाख्यानां जगत्कारणगुणानामन्योऽन्यविवेकाय तेषामवान्तरमपि वैधर्म्यं सिद्धान्तयति । विविधजगत्कारणत्वोपपत्तये च । न ह्येकरूपात् कारणाद्विचित्रकार्य्याणि सम्भवन्तीति ।

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ॥ १२७ ॥

गुणानां सत्त्वादिद्रव्यत्रयाणामन्योऽन्यं सुखदुःखाद्यवैधर्म्यं कार्य्येषु तद्दर्शनादित्यर्थः । सुखादिकं च घटादेरपि रूपादिवदेव धर्मोऽन्तःकरणोपादानत्वादन्यकार्य्याणामित्युक्तम् । अत्रादिशब्दग्राह्याः पञ्चशिखाचार्य्यैरुक्ताः । यथा सत्त्वं नाम प्रसादलाघवाभिष्वङ्गप्रीतितितिक्षासन्तोषादिरूपानन्तभेदं समासतः सुखात्मकम् । एवं रजोऽपि शोकादिनानाभेदं समासतो दुःखात्मकम् । एवं तमोऽपि निद्रादिनानाभेदं समासतो मोहात्मकमिति । अत्र प्रीत्यादीनां गुणधर्मत्ववचनादागामिसूत्रे च लघुत्वादेर्वक्ष्यमाणत्वात् सत्त्वादीनां द्रव्यत्वं सिद्धम् । सुखाद्यात्मकता तु गुणानां मनसः सङ्कल्पात्मकतावद्धर्मधर्म्यभेदादेवोपपद्यते । न वैशेषिकोक्ताः सुखादय एव सत्त्वादिगुणा इति । सत्त्वादित्रयमपि व्यक्तिभेदादनन्तम् । अन्यथा हि विभुमात्रत्वे गुणविमर्दवैचित्र्यात् कार्य्यवैचित्र्यमिति सिद्धान्तो नोपपद्यते विमर्दोऽवान्तरभेदासम्भवात् ॥ १२७ ॥

गुणानां सत्त्वादीनामेकैकव्यक्तिमात्रत्वे वृद्धिह्रासादिकं नोपपद्यते तथा परिच्छिन्नत्वे च तत्समूहरूपस्य प्रधानस्य परिच्छिन्नत्वापत्त्या श्रुतिस्मृतिसिद्धमेकदासंख्यब्रह्माण्डादिकं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नोपपद्येत। अतोऽसंख्यत्वे गुणानां त्रित्वसंख्योपपादनाय विवेकाद्यर्थं च तेषां साधर्म्यवैधर्म्ये प्रतिपादयति।

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ॥ १२८ ॥

अयमर्थः। लघ्वादीति भावप्रधानो निर्देशः। लघुत्वादिधर्मेण सर्वासां सत्त्वव्यक्तीनां साधर्म्यं वैधर्म्यं च रजस्तमोभ्याम्। तथा च पृथिवीव्यक्तीनां पृथिवीत्वेनेव सत्त्वव्यक्तीनामेकजातीयतयैकता सजातीयोपष्टम्भादिना वृद्धिह्रासादिकं च युक्तमित्याशयः। एवं चञ्चलत्वादिधर्मेण सर्वासां रजोव्यक्तीनां साधर्म्यं सत्त्वतमोभ्यां च वैधर्म्यम्। शेषं पूर्ववत्। एवं गुरुत्वादिधर्मेण सर्वासां तमोव्यक्तीनां साधर्म्यं सत्त्वरजोभ्यां वैधर्म्यम्। शेषं पूर्ववदिति। वैधर्म्यस्य प्रागेवोक्ततयात्र पुनर्वैधर्म्यकथनं सम्पातायातम्। अत्र वैधर्म्यं चेति पाठः प्रामादिक एवेति। अत्र सूत्रे सत्त्वादीनां कारणद्रव्याणां प्रत्येकमनेकव्यक्तिकत्वं सिद्धम्। अन्यथा लघुत्वादीनां साधर्म्यत्वानुपपत्तेः समानानां धर्मस्यैव साधर्म्यत्वात्। न च कार्यसत्त्वादीनामनेकतया लघुत्वादिकं साधर्म्यं स्यादिति वाच्यं त्रिगुणात्मकत्वेन घटादीनामपि कार्यसत्त्वादिरूपतया लघुत्वादीनां सत्त्वादिसाधर्म्यत्वानुपपत्तेः। तस्मात् कारणगुणानामेवात्र साधर्म्यादिकमुच्यत इति। सत्त्वादीनां लघुत्वादिकं चोक्तं कारिकया।

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥

इति। अर्थतः पुरुषार्थनिमित्तात्। नन्वेवं मूलकारणस्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिच्छिन्नासङ्ख्यव्यक्तिकत्वे वैशेषिकमतादत्र को विशेष इति चेत्। कारणद्रव्यस्य शब्दस्पर्शादिराहित्यमेव ।

शब्दस्पर्शविहीनं तु रूपादिभिरसंयुतम् ।
त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम् ॥

इति विष्णुपुराणादिभ्यः। एतच्च पातञ्जलेऽस्माभिः प्रपञ्चितम् ॥ १२८ ॥

ननु महदादीनां स्वरूपतः सिद्धावपि तेषां प्रत्यक्षेणोत्पत्त्यदर्शनात् कार्य्यत्वे नास्ति प्रमाणं येन तेषां हेतुमत्त्वं साधर्म्यं स्यात् तत्राह ।

उभयान्यत्वात् कार्य्यत्वं महदादेर्घटादिवत् ॥ १२९ ॥

महदादिपञ्चभूतान्तं विवादास्पदं तावन्न पुरुषो भोग्यत्वात्। नापि प्रकृतिर्मोक्षान्यथानुपपत्त्या विनाशित्वात् । अतः प्रकृतिपुरुषभिन्नं तद्भिन्नत्वाच्च कार्य्यं घटादिवदित्यर्थः ॥ १२९ ॥

ननु विकारशक्तिदाहादिनैव मोक्षाद्युपपत्तेर्विनाशित्वमपि तेषामसिद्धमित्याशङ्कायां कार्य्यत्वे हेत्वन्तराण्याह ।

परिमाणात् ॥ १३० ॥

परिच्छिन्नत्वाद्दैशिकाभावप्रतियोगितावच्छेदकजातिमत्त्वादित्यर्थः। तेन गुणव्यक्तीनां कियतीनां परिच्छिन्नत्वेऽपि न तत्र व्यभिचारः ॥ १३० ॥

किञ्च ।

समन्वयात् ॥ १३१ ॥

उपवासादिना क्षीणं हि बुद्ध्यादितत्त्वमन्नादिभिः सम-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न्वयेन समनुगतेन पुनरुपचीयते। अतः समन्वयात् कार्य्यत्वमनुमीयत इत्यर्थः। नित्यस्य हि निरवयवतयावयवानुप्रवेशरूपः समन्वयो न घटत इति। समन्वये च श्रुतिः प्रमाणं मनः प्रकृत्य। एवं ते सौम्य षोड़शानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत् सान्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीदिति। योगसूत्रं च जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरादिति ॥ १३१ ॥

किञ्च।

शक्तितश्चेति ॥ १३२ ॥

करणतश्चेत्यर्थः। पुरुषस्य यत् करणं तत् कार्य्यं चक्षुरादिवदिति भावः। पुरुषे साक्षाद्विषयार्पकत्वं प्रकृतेर्नास्तीति प्रकृतिर्न करणमिति। अतो महत्त्वस्य करणतया कार्य्यत्वे सिद्धे सुतरामन्येषामपि कार्य्यत्वम्। इतिशब्दश्च हेतुवर्गसमाप्तिसूचनार्थः ॥ १३२ ॥

यदि च महदादिमध्ये किञ्चिदकार्य्यं स्वीक्रियते तदापि तदेव प्रकृतिः पुरुषो वेति सिद्धं नः समीहितम्। प्रकृतिपुरुषौ प्रसाध्य परिणामित्वापरिणामित्वाभ्यां विवेक्तव्याविति्यतत्रैवास्माकं तात्पर्य्यादित्याह।

तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा ॥ १३३ ॥

तद्धाने कार्य्यत्वहाने यदि परिणामी तदा प्रकृतिः। यदि वा परिणामी भोक्ता तदा पुरुष इत्यर्थः ॥ १३३ ॥

ननु नित्यमप्युभयभिन्नं स्यात् तत्राह।

तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् ॥ १३४ ॥

अकार्य्यस्य प्रकृतिपुरुषभिन्नत्वे तुच्छत्वं शशशृङ्गादिवत् प्रमाणाभावात्। अकार्य्यं हि कारणतया वा भोक्तृतया वा सिध्यति नान्यथेत्यर्थः ॥ १३४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदेवं महदादिषु कार्य्यत्वं प्रसाध्य साम्प्रतं तैः प्रकृत्य-नुमानेऽनुक्तं विशेषमाह ।

कार्य्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात् ॥१३५॥

कार्य्यान्महत्तत्त्वादेर्लिङ्गात् सामान्यतो दृष्टं कारणानुमानं यदुक्तं तत् ताटस्थ्यनिवृत्तये तत्साहित्यात् कार्य्यसाहित्येनैव कर्त्तव्यं सदेव सौम्येदमग्र आसीत् तम एवेदमग्र आसीदि-त्यादिश्रुत्यनुसारात् । तद्यथा । महदादिकं स्वोपहितत्रिगु-णात्मकवस्तूपादानकम् । कार्य्यत्वात् । शिलामध्यस्थप्रति-मावत् । तैलादिवच्चेत्यर्थः । अत्रानुकूलतर्कः प्रागेव दर्शितः ॥ १३५ ॥

तस्याः प्रकृतेः कार्य्याद्वैधर्म्यं विवेकार्थमाह ।

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिङ्गात् ॥ १३६ ॥

अभिव्यक्तात् त्रिगुणान्महत्तत्त्वादपि मूलकारणमव्यक्तं सूक्ष्मं महत्तत्त्वस्य हि सुखादिगुणः साक्षात् क्रियते प्रकृतेश्च गुणोऽपि न साक्षात् क्रियत इति । प्रधानं परमाव्यक्तं मह-त्तत्त्वं तु तदपेक्षया व्यक्तमित्यर्थः ॥ १३६ ॥

ननु परमसूक्ष्मं चेत् तर्हि तस्यापलाप एवोचित इत्या-काङ्क्षायां पूर्वोक्तं स्मारयति ।

तत्कार्य्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ॥ १३७ ॥

सुगमम् ॥ १३७ ॥

प्रकृत्यनुमानगता विशेषा विस्तरतो विचारिताः । इतः परमध्यायसमाप्तिपर्य्यन्तं पुरुषानुमानगता विशेषा विचा-र्य्यास्तत्र काञ्चनादौ विशेषमाह ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सामान्येन विवादाभावाद्धर्मवन्न साधनम् ॥ १३८ ॥

यत्र वस्तुनि सामान्यतो विवादो नास्ति न तस्य स्वरूपतः साधनमपेक्ष्यते धर्मस्येवेत्यर्थः। अयं भावः। यथा प्रकृतेः सामान्येनापि साधनमपेक्षितं धर्मिण्यपि विवादात्। नैवं पुरुषस्य साधनमपेक्षितम्। चेतनापलापे जगदान्ध्यप्रसङ्गतो भोक्तर्यंशम्यदार्थे सामान्यतो बौद्धानामप्यविवादात्। धर्म इव। धर्मो हि सामान्यतो बौद्धैरपि स्वीक्रियते तप्तशिलारोपणादिषु धर्मत्वाभ्युपगमात्। अतः पुरुषे विवेकनित्यत्वादिसाधनमात्रमनुमानं कार्य्यमिति ॥ १३८ ॥

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्येत्युक्तसूत्रेणापि विवेकानुमानमेवाभिप्रेतम्। न तु तत्र पुरुषस्य सर्वथैवाप्रत्यक्षत्वमभिप्रेतमिति। तत्र चादौ विवेकप्रतिज्ञासूत्रम्।

शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान् ॥ १३९ ॥

शरीरादिप्रकृत्यन्तं यच्चतुर्विंशतितत्त्वात्मकं वस्तु ततोऽतिरिक्तः पुमान् भोक्तेत्यर्थः। भोक्तृत्वं च द्रष्टृत्वमिति ॥१३९॥

अत्र हेतूनाह सूत्रैः।

संहतपरार्थत्वात् ॥ १४० ॥

यतः सर्वं संहतं प्रकृत्यादिकं परार्थं भवति शय्यादिवत्। अतोऽसंहतः संहतदेहादिभ्यः परः पुरुषः सिध्यतीत्यर्थः। अयं च हेतुः संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्येत्यत्र व्याख्यातः। उक्तस्यापि हेतोः पुनरुपन्यासो हेतुवर्गसङ्कलनार्थः ॥ १४० ॥

किञ्च।

त्रिगुणादिविपर्य्ययात् ॥ १४१ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुखदुःखमोहात्मकत्वादिवैपरीत्यादित्यर्थः। शरीरादीनां हि यः सुखाद्यात्मकत्वं धर्मः स सुखादिभोक्तरि न सम्भवति। स्वयं सुखादिग्रहणे कर्मकर्तृविरोधात्। धर्मिपुरस्कारेणैव सुखाद्यनुभवादिति। ननु बुद्धिवृत्तिप्रतिविम्बितं स्वसुखादिकं पुरुषेण गृह्यतां स्ववदिति चेन्न। एवं सति बुद्धेरेव सुखादिकल्पनौचित्यात्। पुरुषगतसुखादेर्बुद्धौ प्रतिविम्बकल्पने गौरवात्। अहं सुखी दुःखी मूढ इत्यादिप्रत्ययास्तु न पुरुषे सुखादिसाधकाः। तत्स्वामित्वेनाप्युपपत्तेः। बुद्धेः सुखादिमत्त्वनाप्युपपत्तेश्च। लौकिक्यां ह्यहम्बुद्धाववश्यं बुद्धिरपि विषयो मिथ्याज्ञानवासनादिरूपदोषानुवृत्तेस्तत्प्रतिविम्बकल्पनायां च गौरवादिति। आदिशब्देन चात्र त्रिगुणमविवेकि विषय इति कारिकोक्ताविवेकित्वादयो ग्राह्याः। तथा रूपादयः शरीरादिधर्मा ग्राह्याः॥ १४१॥

किञ्च।

अधिष्ठानाच्चेति॥ १४२॥

भोक्तुरधिष्ठातृत्वाच्चाधिष्ठेयेभ्यः प्रकृत्यन्तेभ्योऽतिरिक्तेत्यर्थः। अधिष्ठानं हि भोक्तुः संयोगः स च प्रकृत्यादीनां भोगहेतुपरिणामेषु कारणम्। भोक्तुरधिष्ठानात् भोगायतननिर्माणमिति वक्ष्यमाणसूत्रात्। संयोगश्च भेदे सत्येव भवतीति भावः। इतिशब्दो हेतुसमाप्तौ॥ १४२॥

उक्तानुमानेऽनुकूलतर्कं प्रदर्शयति सूत्राभ्याम्।

भोक्तृभावात्॥ १४३॥

यदि हि शरीरादिस्वरूप एव भोक्ता स्यात् तदा भोक्तृत्वमेव व्याहन्येत। कर्मकर्तृविरोधात्। स्वस्य साक्षात् स्वभोक्तृत्वानुपपत्तेरित्यर्थः। अनुपपत्तिश्च पूर्वमेव व्याख्याता। अत्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूत्रे पुरुषस्य भोगः स्वीकृत इति मन्तव्यम्। अपरिणामिनश्च पुरुषस्य भोगश्चिदवसानो भोग इत्यत्र व्याख्यातः ॥१४३॥

किञ्च।

कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥ १४४ ॥

शरीरादिकमेव चेद्भोक्तृ स्यात् तदा भोक्तुः कैवल्यार्थं दुःखात्यन्तोच्छेदार्थं कस्यापि प्रवृत्तिर्नोपपद्येत। शरीरादीनां विनाशित्वात् प्रकृतेश्च धर्मिग्राहकमानेन दुःखस्वाभाव्यसिद्ध्या कैवल्यासम्भवात्। न हि स्वभावस्यात्यन्तोच्छेदो घटत इत्यर्थः। अत्र कैवल्यार्थं प्रकृतेरिति सूत्रपाठः प्रामादिकत्वादुपेक्षणीयः।

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।

पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥

इति कारिकातः कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्चेति पाठात्। अर्थासङ्गतेश्चेति ॥ १४४ ॥

चतुर्विंशतितत्त्वातिरिक्ततया पुरुषः साधितः। इदानीं पुरुषगतो विशेषो विवेकस्फुटीकरणायानुमीयते।

जड़प्रकाशायोगात् प्रकाशः ॥ १४५ ॥

वैशेषिका आहुः। प्रागप्रकाशरूपस्य जडस्यात्मनो मनःसंयोगाज्ज्ञानाख्यः प्रकाशो जायत इति तन्न। लोके जडस्याप्रकाशस्य लोष्टादेः प्रकाशोत्पत्त्यदर्शनेन तदयोगात्। अतः सूर्य्यादिवत् प्रकाशस्वरूप एव पुरुष इत्यर्थः। तथा च स्मृतिः।

यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते।

तद्वदैक्यं न शंसध्वं प्रपञ्चपरमात्मनोः ॥ इति।

यथा दीपः प्रकाशात्मा ह्रस्वो वा यदि वा महान्।

ज्ञानात्मानं तथा विद्यात् पुरुषं सर्वजन्तुषु ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति च । प्रकाशत्वं च तेजःसत्त्वचैतन्येष्वनुगतमखण्डोपाधिरनुगतव्यवहारादिति ॥ १४५ ॥

ननु प्रकाशस्वरूपत्वेऽपि तेजोवद्धर्मधर्मिभावोऽस्ति न वा तत्राह ॥

निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ॥ १४६ ॥

सुगमम् । पुरुषस्य प्रकाशरूपत्वे सिद्धे तत्सम्बन्धमात्रेणान्यव्यवहारोपपत्तौ प्रकाशात्मकधर्मकल्पना गौरवमित्यपि बोध्यम् । तेजसश्च प्रकाशाख्यरूपविशेषाग्रहेऽपि स्पर्शपुरस्कारेण ग्रहात् प्रकाशतेजसोर्भेदः सिध्यति । आत्मनस्तु ज्ञानाख्यप्रकाशाग्रहकाले ग्रहणं नास्तीत्यतो लाघवाद्धर्मधर्मिभावशून्यं प्रकाशरूपमेवात्मद्रव्यं कल्प्यते । तस्य च न गुणत्वम् । संयोगादिमत्त्वात् । अनाश्रितत्वाच्चेति । तथाच स्मर्यते ।

ज्ञानं नैवात्मनो धर्मो न गुणो वा कथञ्चन ।
ज्ञानस्वरूप एवात्मा नित्यः पूर्णः सदा शिवः ॥

इति । ननु निर्गुणत्व एव का युक्तिरिति चेत् । उच्यते पुरुषस्येच्छाद्यास्तावन्नित्या न सम्भवन्ति जन्यताप्रत्ययात् । जन्यगुणाङ्गीकारे परिणामित्वापत्तिः । तथा चोभयोरेव प्रकृतिपुरुषयोः परिणामहेतुत्वकल्पने गौरवम् । आत्म्यपरिणामिन कदाचिदज्ञत्वस्यापत्त्या ज्ञानेच्छादिगोचरसंशयापत्तिश्च । तथा जड़प्रकाशायोगस्योक्तत्वादपि न नित्यस्यानित्यज्ञानसम्भव इति । इच्छादिकमन्वयव्यतिरेकाभ्यां मनस्येव लाघवात् सिध्यति । मनःसंयोगस्यात्मनश्चोभयोस्तद्धेतुत्वे गौरवात् । गुणशब्दश्च विशेषगुणवाचीत्युक्तमेव । अत आत्मा निर्गुणः । अपिच ये तार्किका आत्मनः कर्त्तृत्वमिच्छन्ति तेषां मोक्षानुपपत्तिः । अहं कर्त्तेति बुद्धेरेव गीतादिष्वदृष्टोत्-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पत्तिहेतुतयोक्तत्वात्। तस्याश्च तन्मते मिथ्याज्ञानत्वाभावेन तत्त्वज्ञाननिवर्त्यत्वासम्भवात्। अतः श्रुत्युक्तमोक्षानुपपत्त्यात्मनोऽकर्तृत्वमस्माभिरिष्यते। अकर्तृत्वाच्चादृष्टसुखाद्यभावः। ततश्च मनसः कृत्यादिहेतुत्वे कल्पनीये लाघवादन्तदृश्यगुणत्वावच्छेदेनैतत् कल्प्यते। अत आत्मा निर्गुण इति। यथोक्तस्य च परमसूक्ष्मस्यात्मनः स्वरूपं वाशिष्ठे करामलकवत् प्रोक्तं विविच्य प्रतिपादितम्। यथा।

असम्भवति सर्वत्र दिग्भूम्याकाशरूपिणि।
प्रकाश्ये यादृशं रूपं प्रकाशस्यामलं भवेत्॥
त्रिजगत् त्वमहं चेति दृश्ये सत्तामुपागते।
द्रष्टुः स्यात् केवलीभावस्तादृशो विमलात्मनः॥

इति॥ १४६॥

नन्वहं जानामीति धर्मधर्मिभावानुभवात् पुरुषस्य चिद्धर्मकत्वं सिध्यति गौरवस्य प्रामाणिकत्वेनादोषत्वादिति तत्राह।

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ॥ १४७॥

भवेदेवं यदि केवलतर्केणास्माभिर्निर्गुणत्वाच्चिद्धर्मत्वादिकं प्रसाध्यते किन्तु श्रुत्यापि। अतः श्रुत्या सिद्धस्य निर्गुणत्वादेर्नापलापः सम्भवति तत्प्रत्यक्षस्य गुणादिप्रत्यक्षस्य श्रुत्यैव बाधात्। अहं गौर इत्यादिप्रत्यक्षवदित्यर्थः। अन्यथा हि गौरोऽहमिति प्रत्यक्षबलेन देहातिरिक्तात्मसाधिका अपि युक्तयो बाधिताः स्युरिति जितं नास्तिकैः। निर्गुणत्वे च श्रुतयः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्चेत्याद्याः। चिन्मात्रत्वे तु श्रुतयोऽकर्त्ता चैतन्यं चिन्मात्रं सच्चिदेकरसो ह्ययमात्मेत्याद्या इति। सर्वज्ञत्वादिश्रुतयस्तु राहोः शिर इतिवल्लौकि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कविकल्पानुवादमात्राः । विधिनिषेधश्रुतिमध्ये निषेधश्रुतेरेव बलवत्त्वात् । अथात आदेशो नेति नेति न ह्येतस्मादिति नेत्यन्यत् परमस्तीति श्रुतेः । किञ्चाज्ञानामहं जानामीति प्रत्यये प्रमात्वकल्पनायामेव गौरवम् । अनाद्यविद्यादोषस्यानुवर्त्तमानतया भ्रमत्वस्यैवौत्सर्गिकत्वात् । अतो भ्रमशतान्तःपातित्वेनाप्रामाण्यशङ्कास्कन्दितत्वाच्चैतत्प्रत्यक्षबाधने लाघवतर्काद्यनुगृहीतमनुमानमपि समर्थमिति । नन्वात्मनो नित्यज्ञानस्वरूपत्वे कीदृशं लाघवमिति चेत् । उच्यते । नैयायिकादिभिरन्तःकरणं व्यवसायानुव्यवसायौ तदाश्रयश्चेति चत्वारः पदार्थाः कल्प्यन्ते । अस्माभिस्त्वन्तःकरणं व्यवसायस्थानीया च तद्‌वृत्तिरनन्तानुव्यवसायस्थानीयश्च नित्यैकज्ञानरूप आत्मेति त्रयः पदार्थाः कल्प्यन्त इति ॥ १४७ ॥

ननु यदि प्रकाशरूप एवात्मा तदा सुषुप्त्याद्यवस्थाभेदो नोपपद्यते सदा प्रकाशानपायादिति तत्राह ।

सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ॥ १४८ ॥

सुषुप्त्याद्यस्यावस्थात्रयस्य बुद्धिनिष्ठस्य साक्षित्वमेव पुंसोऽर्थः । तदुक्तम् ।

जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन व्यवस्थितः ॥

इति । तासां बुद्धिवृत्तीनां साक्षित्वेन तद्विलक्षणो जाग्रदाद्यवस्थारहितो निर्णीत इत्यर्थः । तत्र जाग्रन्नामावस्थेन्द्रियद्वारा बुद्धेर्विषयाकारः परिणामः । स्वप्नावस्था च संस्कारमात्रजन्यस्तादृशः परिणामः । सुषुप्त्यवस्था च द्विविधार्द्धसमप्रलयभेदेन । तत्रार्द्धलये विषयाकारा वृत्तिर्न भवति । किन्तु स्वगतसुखदुःखमोहाकारैव बुद्धिवृत्तिर्भवति । अन्यथोत्थितस्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुखमहमस्वाप्समित्यादिरूपसुषुप्तिकालीनसुखादिस्मरणानुपपत्तेः। तदुक्तं व्याससूत्रेण मुग्धेऽर्द्धसम्पत्तिः परिशेषादिति। समग्रलये तु बुद्धेर्वृत्तिसामान्याभावो मरणादाविव भवति। अन्यथा समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपतेत्यागामिसूत्रानुपपत्तेरिति। सा च समग्रसुषुप्तिर्वृत्त्यभावरूपेति पुरुषस्तत्साक्षी न भवति पुरुषस्य वृत्तिमात्रसाक्षित्वात्। अन्यथा संस्कारादेरपि बुद्धिधर्मस्य साक्षिभास्यतापत्तेः। सुषुप्त्यादिसाक्षित्वं तु तादृशबुद्धिवृत्तीनां स्वप्रतिविम्बितानां प्रकाशनमिति वक्ष्यामः। अतो ज्ञानार्थं पुरुषस्य न परिणामापेक्षेति। स्यादेतत्। सुषुप्ते यदि सुखदुःखादिगोचरा बुद्धिवृत्तिरिष्यते तर्हि जाग्रदादावप्यखिलवृत्तीनां वृत्तिग्राह्यत्वस्वीकार एव युक्त इति व्यर्था तत्साक्षिपुरुषकल्पना स्वगोचरवृत्तित्वे नैव स्वव्यवहारहेतुतायाः सामान्यतः सुवचत्वादिति। मैवम्। नियमेन स्वगोचरवृत्तिकल्पनेऽनवस्थापत्तिर्गौरवं च स्यात्। किञ्चाहं सुखीत्यादिवृत्तिषु सुखादीनां विशेषणतया निर्विकल्पकं तज्ज्ञानमादावपेक्ष्यते। तत्र चानन्तनिर्विकल्पकवृत्त्यपेक्षया लाघवेन नित्यमेकमेवात्मस्वरूपं ज्ञानं कल्पते। अहं सुखीत्यादिविशिष्टज्ञानार्थं बुद्धिवृत्तेरेव तादृशाकारत्वं पुरुषे वृत्तिसारूप्यमात्रस्वीकारेण वृत्त्याकारातिरिक्ताकारानभ्युपगमात् स्वतन्त्राकारेण परिणामापत्तेरिति। अथैवं पुरुषस्य सुषुप्त्यादिसाक्षिमात्रत्वेन पुरुषैक्यस्याप्युपपत्तौ स किमेकोऽनेको वेति संशयः। तत्रायं पूर्वपक्षः। लाघवतर्कसहकारेण बलवतीभ्योऽभेदश्रुतिभ्य एक एवात्मा सिध्यति जाग्रदाद्यवस्थारूपाणां वैधर्म्याणां बुद्धिधर्मत्वात्। यद्यप्येकस्यात्मनः सर्वबुद्धिसाक्षित्वं तथापि यस्या बुद्धेर्या वृत्तिः सैव बुद्धिस्तद्वृत्तिविशिष्टतया साक्षिणं गृह्णाति घटं जानामीत्यादिरूपैः। अत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एकस्या बुद्धेरयं घट इति वृत्तौ सत्यामन्यबुद्धिवृत्तिद्वारा नानुभवो घटमहं जानामीति ॥ १४८ ॥

तत्र सिद्धान्तमाह।

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ॥ १४६ ॥

पुण्यवान् स्वर्गे जायते पापी नरकेऽज्ञो बध्यते ज्ञानी मुच्यत इत्यादेः श्रुतिस्मृतिव्यवस्थाया विभागस्यान्यथानुपपत्त्या पुरुषा बहव इत्यर्थः। जन्ममरणे चात्र नोत्पत्तिविनाशौ पुरुषनिष्ठत्वाभावात्। किन्त्वपूर्वदेहेन्द्रियादिसङ्घातविशेषेण संयोगश्च वियोगश्च भोगतदभावनियामकाविति। जन्मादिव्यवस्थायां च श्रुतिः।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापि यन्ति।

इत्यादिरिति ॥ १४६ ॥

ननु पुरुषैक्येऽप्युपाधिरूपावच्छेदकभेदेन जन्मादिव्यवस्था भवेत् तत्राह।

उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः ॥ १५० ॥

उपाधिभेदेऽप्येकस्यैव पुरुषस्य नानोपाधियोगोऽस्त्येव यथैकस्यैवाकाशस्य घटकुड्यादिनानायोगः। अतोऽवच्छेदकभेदेनैकस्यात्मन एव विविधजन्ममरणाद्यापत्तिः कायव्यूहादाविवेति न सम्भवति व्यवस्था। एकः पुरुषो जायते नापर इत्यादिरित्यर्थः। न ह्यवच्छेदकभेदेन कपिसंयोगतदभाववत्-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कस्मिन्नेव वृत्ते व्यवस्था घटते। एको वृक्षः कपिसंयोगी। अन्यश्च नेति। किञ्चैकोपाधितो मुक्तस्याप्यात्मप्रदेशस्योपाध्यन्तरैः पुनर्बन्धापत्त्या बन्धमोक्षाव्यवस्था तदवस्थैव। यथैकघटमुक्तस्याकाशप्रदेशस्यान्यघटयोगाद्घटाकाशव्यवस्था तद्वदिति। न च बन्धमोक्षव्यवस्थाश्रुतिरपि लौकिकभ्रमानुवादमात्रमिति वाच्यम्। मोक्षस्यालौकिकत्वात्। मिथ्यापुरुषार्थप्रतिपादनेन श्रुतेः प्रतारकत्वाद्यापत्तेश्च ॥ १५० ॥

ननु चैतन्यैक्येऽपि तत्तदुपाधिविशिष्टस्यातिरिक्ततामभ्युपगम्य व्यवस्थोपपादनीया तत्राह।

उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान् ॥ १५१ ॥

उपाधिरेव नाना न तु तद्वानुपाधिविशिष्टोऽपि नानाभ्युपेयो विशिष्टस्यातिरिक्तत्वे नानात्मताया एव शास्त्रान्तरेऽप्यभ्युपगमापत्तेरित्यर्थः। बन्धभागिनो विशिष्टत्वे विशेषणवियोगेन विशिष्टनाशान्न मोक्षोपपत्तिरित्यादीन्यपि दूषणानि। ननु विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकादिति षष्ठाध्याये स्वयमेवाहङ्कारविशिष्टस्यैव जीवत्वं वक्ष्यतीति चेन्न प्राणधारकत्वरूपजीवस्यैव विशिष्टाधेयत्ववचनात्। न तु बन्धमोक्षव्यवस्थाया विशिष्टाश्रितत्वं वक्ष्यते मोक्षकाले विशिष्टासत्त्वादिति। यदपि केचिन्नवीना वेदान्तिब्रुवा आहुः। एकस्यैवात्मनः कार्य्यकारणोपाधिषु प्रतिबिम्बानि जीवेश्वराः प्रतिबिम्बानां चान्योऽन्यं भेदाज्जन्माद्यखिलव्यवस्थोपपत्तिरिति। तदप्यसत्। भेदाभेदविकल्पासहत्वात्। बिम्बप्रतिबिम्बयोर्भेदे प्रतिबिम्बस्याचेतनया भोक्तृत्वबन्धमोक्षाद्यनुपपत्तिः जीवब्रह्माभेदरूपतत्सिद्धान्तक्षतिश्च। जीवेश्वरभिन्नस्यात्मनोऽप्रामाणिकत्वं च। अभेदे तु साङ्कर्य्यापरिहारः। भेदाभेदाभ्युपगमे तु तत्सिद्धान्त-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हानिः। भेदाभेदविरोधश्च। अस्मन्मते त्वभेदोऽविभागलक्षणो भेदश्चान्योऽन्याभाव इत्यविरोध इति। अवच्छेदप्रतिविम्बादिदृष्टान्तवाक्यानि त्वग्रे व्याख्यास्यामः। स्यादेतत्। विम्बप्रतिविम्बादिभेदं परिकल्प्य श्रुत्या बन्धमोक्षव्यवस्था-कल्पितेत्येवास्माभिरुच्यते न तु परमार्थतो विम्बप्रतिविम्बभावस्तयोर्भेदो बन्धमोक्षादिकं चेष्यत इति। मैवम्। एवं सति बन्धमोक्षादिश्रुतिगणस्य भेदश्रुतिगणस्य चोभयोर्बाधापेक्षया केवलाभेदश्रुतिगणस्यैवाविभागपरतयैव सङ्कोचो लाघवाद्युक्तः। श्रुतिस्मृत्यन्तरैरविभागस्य सिद्धत्वाच्चेति॥ १५१॥

आत्मैक्यवादिषूक्तं दूषणमुपसंहरति।

एवमेकत्वेन परिवर्त्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः॥ १५२॥

एवं रीत्यैकत्वेन सर्वतो वर्त्तमानस्यात्मनो जन्ममरणादिरूपविरुद्धधर्मप्रसङ्गो न युक्त इत्यर्थः। यद्वैकत्व इति छेदः। एकत्वेऽभ्युपगम्यमाने परितः सर्वतो वर्त्तमानस्य सर्वोपाधिष्वनुगतस्य विरुद्धधर्माध्यासो नेति न किन्तु सर्वथा विरुद्धधर्मसङ्करोऽपरिहार्य्य इत्यर्थः। ननु पुरुषो निर्धर्मकस्तत्र कथं जन्ममरणबन्धमोक्षादिविरुद्धधर्मसाङ्कर्य्यमापद्यते भवद्भिरपि सर्वेषां धर्माणामुपाधिनिष्ठत्वाभ्युपगमादिति चेन्न। उक्तधर्माणां संयोगवियोगभोगाभोगरूपतया पुरुषे स्वीकारात्। परिणामरूपधर्माणामेव पुरुषे प्रतिषेधस्योक्तत्वादिति। यथा स्फटिकेषु लौहित्यनीलिमादिधर्माणामारोपितानामपि व्यवस्थास्ति तथा पुरुषेष्वपि बुद्धिधर्माणां सुखदुःखादीनां शरीरादिधर्माणां च ब्राह्मणक्षत्रियत्वादीनामारोपितानामपि व्यवस्थास्ति शास्त्रेषु। यथा विष्णुपुराणे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते।
न च सर्वे प्रयुज्यन्त एवं जीवाः सुखादिभिः॥

इति॥ १५२॥

सापि व्यवस्थैकात्म्ये सति जन्मादिव्यवस्थावदेव नोपपद्यत इत्याह।

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात्॥ १५३॥

अन्यधर्मत्वेऽपि धर्माणां सुखादीनामारोपात् पुरुषे व्यवस्था न सिध्यति। आरोपाधिष्ठानपुरुषस्यैकत्वादित्यर्थः। आकाशस्यैकत्वेऽपि घटावच्छिन्नाकाशानां घटभेदेन भिन्नतयौपाधिकधर्मव्यवस्था घटते। आत्मत्वजीवत्वादिकन्तु नोपाध्यवच्छिन्नस्य। उपाधिवियोगे घटाकाशनाशवत् तन्नाशेन जीवा न म्रियत इत्यादिश्रुतिविरोधप्रसङ्गात्। किन्तु केवलचैतन्यस्येति प्रागेवोक्तम्। इमां बन्धमोक्षादिव्यवस्थानुपपत्तिं सूत्रामबुद्ध्वैवाधुनिका वेदान्तिब्रुवा उपाधिभेदेन बन्धमोक्षव्यवस्थामैकात्म्येऽप्याहुः। तेऽप्येतेन निरस्ताः। योऽपि तदेकदेशिन इमामेवानुपपत्तिं पश्यन्त उपाधिगतचित्प्रतिबिम्बानामेव बन्धादीन्याहुस्ते त्वतीव भ्रान्ताः। उक्ताङ्गेदाभेदादिविकल्पासहत्वादिदोषात्। अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वादित्यत्रोक्तदोषाच्च। किञ्च वेदान्तसूत्रे क्वापि सर्वात्मनामत्यन्तैक्यं नोक्तमस्ति। प्रत्युत भेदव्यपदेशाच्चान्यः। अधिकन्तु भेदनिर्देशात्। अंशो नानाव्यपदेशात्। इत्यादिसूत्रैर्भेद उक्तः। अत आधुनिकानामवच्छेदप्रतिबिम्बादिवादा अपसिद्धान्ता एव। स्वशास्त्रानुक्तसन्दिग्धार्थेषु समानतन्त्रसिद्धान्तस्यैव सिद्धान्तत्वाच्चेत्यादिकं ब्रह्ममीमांसाभाष्ये प्रतिपादितमस्माभिः॥१५३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नन्वेवं पुरुषनानात्वे सति ।

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थित: ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥
नित्य: सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जित: ।
एक: स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावत: ॥

इत्याद्याः श्रुतिस्मृतय आत्मैकत्वप्रतिपादिका नोपपद्यन्त इति तत्राह ।

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ॥१५४॥

आत्मैक्यश्रुतीनां विरोधस्तु नास्ति तासां जातिपरत्वात् । जाति: सामान्यमेकरूपत्वं तत्रैवाद्वैतश्रुतीनां तात्पर्य्यात् । न त्वखण्डत्वे प्रयोजनाभावादित्यर्थ: । जातिशब्दस्य चैकरूपतार्थकत्वमुत्तरसूत्राल्लभ्यते । यथाश्रुतजातिशब्दस्यादरे । आत्मा इदमेक एवाग्र आसीत् । सदेव सौम्येदमग्र आसीत् । एकमेवाद्वितीयम् । इत्याद्यद्वैतश्रुत्युपपादकतयैव सूत्रं व्याख्येयम् । जातिपरत्वात् । विजातीयद्वैतनिषेधपरत्वादित्यर्थ: ।

तत्राद्यव्याख्यायामयं भाव: । आत्मैक्यश्रुतिस्मृतिष्वेकादिशब्दाश्चिदेकरूपतामात्रपरा भेदादिशब्दाश्च वैधर्म्यलक्षणभेदपरा: । एक एवात्मा मन्तव्यो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्थानत्रयव्यतीतस्य पुनर्जन्म न विद्यत इत्यादिवाक्येष्वेकरूपार्थत्वावश्यकत्वात् । अन्यथावस्थात्रयेऽप्यात्मन एकतामात्रज्ञानेन स्थानत्रयव्यतीतशब्दोक्ताया अवस्थात्रयाभिमाननिवृत्तेरसम्भवात् । तथैकरूपताप्रतिपादनेनैव निखिलोपाधिविवेकेन सर्वात्मनां स्वरूपबोधनसम्भवाच्च । न ह्यन्यथा निर्धर्मकमात्मस्वरूपं विशिष्य ब्रह्मणापि शब्देन साक्षात्प्रतिपादयितुं शक्यते । शब्दानां सामान्यमात्रगोचरत्वात् । आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तेष्वा·

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्मन एकरूपत्वे तु प्रतिपादिते तदुपपत्त्यर्थं शिष्यः स्वयमेव तावद्विवेचयति यावन्निर्विशेषे शब्दगोचरे स्वरूपे पर्य्यवस्यतीति। ततश्च निःशेषाभिमाननिवृत्त्या कृतकृत्यो भवति। यदि पुनरद्वैतवाक्यान्यखण्डतामात्रपराणि स्युस्तर्हि तेभ्यो नाभिमाननिवृत्तिः सम्भवति। आकाशे विविधशब्दवदखण्डेऽप्यात्मनि सुखदुःखतदभावादीनामवच्छेदकभेदैरुपपत्तेः। एकस्यैव वाक्यस्याखण्डत्वावैधर्म्योभयपरत्वे च वाक्यभेदोऽखण्डतापरकल्पनायां फलाभावश्च। अवैधर्म्यज्ञानादेव सर्वाभिमाननिवृत्तेः। अतोऽद्वैतवाक्यानि नाखण्डतापराणि। न्यायानुग्रहेण बलवतीभिर्भेदग्राहकश्रुतिस्मृतिभिर्विरोधाच्च। किन्त्ववैधर्म्यलक्षणाभेदपराण्येव। साम्यबोधकश्रुतिस्मृतिभिरेकवाक्यत्वात्। सामान्यात्त्विति ब्रह्मसूत्राच्चेति। तत्र साम्ये श्रुतयः। यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम निरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीत्याद्याः स्मृतयश्च।

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र सर्वभूतेषु तत् समम्।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा॥
यावानात्मनि बोधात्मा तावानात्मा परात्मनि।
य एवं सततं वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति॥

इत्याद्याः। उक्तश्रुतौ मोक्षदशायामपि भेदघटितसाम्यवचनात् स्वरूपभेदोऽप्यात्मनामस्तीति सिद्धम्। अवैधर्म्याभेदपरत्वं चास्मन्मते विष्णुरहं शिवोऽहमित्यादिवाक्यानां मन्तव्यम्। न तु तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्मीत्यादिवाक्यानामपि। तत्र सांख्यमते प्रलयकालीनस्य पूर्णात्मन एव तदादिपदार्थतया नित्यशुद्धमुक्तस्त्वमसीत्यादियथाश्रुतस्य तादृशवाक्यार्थत्वात्। यदि तु सर्गाद्युत्पन्नपुरुषो नारायणाख्य एव तत्-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पदार्थस्तदा तत्त्वमसीत्यादिवाक्यानामप्यवैधर्म्यार्थकतैवास्तु। ननु प्रयोजनाभावान्न भेदपरत्वं श्रुतीनां सम्भवतीति चेन्न मोक्षोपपादनस्यैव प्रयोजनत्वात्। सृष्टिसंहारयोः प्रवाहरूपेणानुच्छेदात् तस्यैक्ये मोक्षानुपपत्तेः। अथैवमात्मभेदस्य लोकसिद्धतया न तत्परत्वं श्रुतीनां घटत इति मैवम्। लाघवतर्केणाकाशवदात्मन्येकत्वस्यानुमानतः प्रसक्तस्य श्रुत्यादिभिर्निषेधात्। स्वपरचैतन्ययोर्भेदस्य चाप्रत्यक्षत्वात्। देहादिष्वेवानुभवात्। य एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवतीत्यादिभेदनिन्दा तु वैधर्म्यविभागान्यतरलक्षणभेदपरेति। नन्वेवं मुक्तानां प्रतिबिम्बावच्छेदश्रुतीनां का गतिरिति चेदुच्यते। अनेकतेजोमयादित्यमण्डलवत्। अनेकात्ममयमपि चिदादित्यमण्डलमेकरसमविभक्तमेकपिण्डीकृत्य तस्य किरणवत् स्वांशभूतैरसंख्यपुरुषैरसंख्योपाधिष्वसंख्यविभाग एव प्रतिबिम्बादिदृष्टान्तैः प्रतिपाद्यते विभागलक्षणान्यत्वस्य वाचारम्भणमात्रत्वं बोधयितुं न पुनरखण्डत्वम्।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

इत्यादिसांशदृष्टान्तश्रुतीनां न्यायानुग्रहेण बलवत्त्वादिति। यथा च स्मर्यते।

यस्य सर्वात्मकत्वेऽपि खण्ड्यते नैकपिण्डता।

इति ब्रह्ममीमांसायां तु नित्याभिव्यक्ते परमेश्वरचैतन्येऽन्येषां लयरूपाविभागेनाप्यद्वैतमुक्तमविभागो वचनादिति सूत्रेणेति। अधिकं तु ब्रह्ममीमांसाभाष्ये प्रोक्तमस्माभिरिति दिक्। सूत्रस्य द्वितीयव्याख्यायां त्वयं भावः। प्रलयकाले पुरुषविजातीयं सर्वमेवासत्। अर्थक्रियाकारित्वाभावात्। पुरुषाणां कूटस्थत्वे नार्थक्रियैवाप्रसिद्धेति। अतः सर्गकाल इव प्रलयेऽपि सत्त्वम्। अतस्तदात्मनां विजातीयद्वैताराहित्यम्। तथा सर्ग-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कालेऽपि कूटस्थत्वरूपपारमार्थिकसत्त्वेनान्यन्नेति विजातीय-द्वैतराहित्यात् सर्गकालीनाद्वैतश्रुतयोऽप्युपपन्ना इति ॥१५४॥

नन्वात्मन एकत्ववदेकरूपत्वमपि नानारूपताप्रत्यक्षेण विरुद्धं तत् कथमुक्तं जातिपरत्वादिति तत्राह ।

विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्यातद्रूपम् ॥ १५५ ॥

विदितं स्पष्टं बन्धकारणमविवेको यत्र तस्य दृष्ट्यैव पुरुषेष्वतद्रूपं रूपभेद इत्यर्थः। अतो भ्रान्तदृष्ट्या न रूपभेदसिद्धिरिति ॥ १५५ ॥

ननु तथाप्यनुपलम्भादेकरूपत्वाभावः सेत्स्यति तत्राह ।

नान्धादृष्ट्या चक्षुष्मतामनुपलम्भः ॥ १५६ ॥

अनुपलम्भ एवासिद्धः। अन्धैरदर्शनेऽपि ज्ञानिभिरेकरूपत्वस्य दर्शनादित्यर्थः ॥ १५६ ॥

अद्वैतश्रुत्यनुपपत्तिं समाधायाखण्डाद्वैते बाधकान्तरमाह ।

वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् ॥ १५७ ॥

वामदेवादिर्मुक्तोऽस्ति तथापीदानीं बन्धः स्वस्मिन्ननुभवसिद्धः। अतो नाखण्डात्माद्वैतमित्यर्थः। स चापि जातिस्मरणाख्यबोधस्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमापेत्यादिवाक्यशतविरोधश्चेति शेषः। न चैवं बन्धमोक्षावुपाधेरेवेत्यवगन्तव्यम्। श्रुतिस्मृतिसिद्धान्तविरोधात्। दुःखं मा भुञ्जीयेति कामनादर्शनेन पुरुषमोक्षस्यैव मोक्षाख्यपरमपुरुषार्थत्वाच्च। उपाधेर्दुःखहानस्य च तादर्थ्येन परम्परयैव पुरुषार्थत्वात् पुत्रादिवदिति। यदप्याधुनिकैर्मायावादिभिरुच्यते। अद्वैतश्रुतिविरोधाद्बन्धमोक्षसृष्टिसंहारादिश्रुतयो बाध्यन्त इति। तदप्यसत्। मोक्षाख्यफलस्यापि श्रवणकाल एवाभावनिश्चये श्रवणोत्तरं मनना-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिविधेरननुष्ठानलक्षणाप्रामाण्यप्रसङ्गात्। प्रपञ्चान्तर्गतस्य वेदान्तस्याप्यद्वैतश्रुत्या बाधे वेदान्तावगतेऽप्यद्वैते पुनः संशयापत्तेश्च। स्वाप्नवाक्यस्य जाग्रति बाधे तद्वाक्यार्थे पुनः संशयवत्। किञ्च मिथ्याबुद्धिर्नास्तिकतेत्यनुशासनाद्धर्मादिषु स्वापवन्मिथ्यादृष्टयो बौद्धप्रभेदा एव सांवृत्तिकशब्देन प्रपञ्चस्याविद्यकतायाश्च तैरभ्युपगमादिति दिक्॥ १५७॥

ननु वामदेवादेरपि परममोक्षो न जात इत्यभ्युपेयं तत्राह।

अनादावद्य यावदभावाद्भविष्यदप्येवम् ॥१५८॥

अनादौ कालेऽद्य यावच्चेन्मोक्षो न जातः कस्यापि तर्हि भविष्यत्कालोऽप्येवं मोक्षशून्य एव स्यात् सम्यक्साधनानुष्ठानस्याविशेषादित्यर्थः॥ १५८॥

तत्र प्रयोगमाह।

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः॥ १५९॥

सर्वत्र काले बन्धस्यात्यन्तोच्छेदः कस्यापि पुंसो नास्ति वर्त्तमानकालवदित्यनुमानं सम्भवेदित्यर्थः॥ १५९॥

पुरुषाणां यदेकरूपत्वमेकत्वप्रतिपादकश्रुत्यर्थावधारितं तत् किं मोक्षकाले किं सर्वदैवेत्याकाङ्क्षायामाह।

व्यावृत्तोभयरूपः॥ १६०॥

स च पुरुषो व्यावृत्तोभयरूपो व्यावृत्तो निवृत्तो रूपभेदो यस्मात् तथेत्यर्थः। श्रुतिस्मृतिन्यायेभ्यः सदैकरूपतासिद्धेरिति शेषः। तदुक्तम्।

बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया।
रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति बध्यते॥ इति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जगदाख्यमहास्वप्ने स्वाप्नात् स्वप्नान्तरं व्रजत्।
रूपं त्यजति नो शान्तं ब्रह्म शान्तत्वबृंहितम् ॥

इति च ॥ १६० ॥

ननु साक्षित्वस्यानित्यत्वात् पुरुषाणां कथं सदैकरूपत्वं तत्राह ।

साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम् ॥ १६१ ॥

पुरुषस्य यत् साक्षित्वमुक्तं तत् साक्षात्सम्बन्धमात्रात्। न तु परिणामत इत्यर्थः। साक्षात्सम्बन्धेन बुद्धिमात्रसाक्षिताऽवगम्यते साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायामिति साक्षिशब्दव्युत्पादनात्। साक्षाद्द्रष्टृत्वं चाव्यवधानेन द्रष्टृत्वम्। पुरुषे च साक्षात्सम्बन्धः स्वबुद्धिवृत्तेरेव भवति। अतो बुद्धेरेव साक्षी पुरुषोऽन्येषां तु द्रष्टृमात्रमिति शास्त्रीयो विभागः। ज्ञाननियामकश्चार्थाकारताख्यानीयः प्रतिबिम्बरूप एव सम्बन्धो न तु संयोगमात्रमतिप्रसङ्गादित्यसकृदावेदितम्। विष्णादेः सर्वसाक्षित्वं त्विन्द्रियादिव्यवधानाभावमात्रेण गौणम्। अक्षसम्बन्धात् साक्षित्वमिति पाठे त्वक्षमात्रबुद्धिः करणत्वसामान्यात्। तस्या यथोक्तात् प्रतिबिम्बरूपात् सम्बन्धादित्यर्थः ॥ १६१ ॥

उभयरूपत्वाभावसिद्ध्यर्थं पुरुषस्यापरौ विशेषावाह सूत्राभ्याम्।

नित्यमुक्तत्वम् ॥ १६२ ॥

सदैव पुरुषस्य दुःखाख्यबन्धशून्यत्वम्। दुःखादेर्बुद्धिपरिणामत्वादित्यर्थः। पुरुषार्थस्तु दुःखभोगनिवृत्तिः प्रतिबिम्बरूपदुःखनिवृत्तिर्वेत्युक्तमेव ॥ १६२ ॥

औदासीन्यं चेति ॥ १६३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

औदासीन्यमकर्त्तृत्वं तेन चान्येऽपि निष्कामत्वादय उपलक्षणीयाः। कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृतिर्धीर्ह्रीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एवेति श्रुतेः। इतिशब्दः पुरुषधर्मप्रतिपादनसमाप्तौ ॥ १६३ ॥

नन्वेवं प्रकृतिपुरुषयोरन्योऽन्यं वैधर्म्येण विवेके सिद्धे पुरुषस्य कर्त्तृत्वं बुद्धेरपि च ज्ञातृत्वं श्रुतिस्मृत्योरुच्यमानं कथमुपपद्येयातां तत्राह।

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्याच्चित्सान्निध्यात् ॥ १६४ ॥

अत्र यथायोग्यमन्वयः। पुरुषस्य यत् कर्त्तृत्वं तद्बुद्ध्युपरागात्। बुद्धेश्च या चित्ता सा पुरुषसान्निध्यात्। एतदुभयं न वास्तवमित्यर्थः। यथाग्न्ययसोः परस्परं संयोगविशेषात् परस्परधर्मव्यवहार औपाधिको यथा वा जलसूर्य्ययोः संयोगात् परस्परधर्मारोपस्तथैव बुद्धिपुरुषयोरिति भावः। एतच्च कारिकयाप्युक्तम्।

तस्मात् तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्त्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः॥

इति। चित्सान्निध्यादिति द्विःपाठोऽध्यायसमाप्तिसूचनार्थः ॥ १६४ ॥

हेयहाने तयोर्हेतू इति व्यूहा यथाक्रमम्।
चत्वारः शास्त्रमुख्यार्था अध्यायेऽस्मिन् प्रपञ्चिताः॥
सङ्क्षिप्तसांख्यसूत्राणामर्थस्यात्र प्रपञ्चनात्।
शास्त्रं योगवदेवेदं सांख्यप्रवचनाभिधम्॥

इति विज्ञानाचार्य्यनिर्मिते कापिलसांख्यप्रवचनस्य भाष्ये विषयाध्यायः प्रथमः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वितीयोऽध्यायः ।

शास्त्रस्य विषयो निरूपितः । साम्प्रतं पुरुषस्यापरिणामित्वोपपादनाय प्रकृतितः सृष्टिप्रक्रियामतिविस्तरेण द्वितीयाध्याये वक्ष्यति । तत्रैव प्रधानकार्य्याणां स्वरूपं विस्तरतो वक्तव्यं तेभ्योऽपि पुरुषस्यातिस्फुटविवेकाय । अत एव ।

विकारं प्रकृतिं चैव पुरुषं च सनातनम् ।
यो यथावद्विजानाति स वितृष्णो विमुच्यते ॥

इति मोक्षधर्मादिषु त्रयाणामेव ज्ञेयत्ववचनम् । तत्रादावचेतनायाः प्रकृतेर्निष्प्रयोजनस्रष्टृत्वे मुक्तस्यापि बन्धप्रसङ्ग इत्याशयेन जगत्सर्जने प्रयोजनमाह ।

विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य ॥ १ ॥

कर्त्तृत्वमिति पूर्वाध्यायशेषसूत्रादनुषज्यते स्वभावतो दुःखबन्धाद्विमुक्तस्य पुरुषस्य प्रतिविम्बरूपदुःखमोक्षार्थं प्रतिविम्बसम्बन्धेन दुःखमोक्षार्थं वा प्रधानस्य जगत्कर्त्तृत्वम् । अथवा स्वार्थम् । स्वस्य पारमार्थिकदुःखमोक्षार्थमित्यर्थः । यद्यपि मोक्षवद्भोगोऽपि सृष्टेः प्रयोजनं तथापि मुख्यत्वान्मोक्ष एवोक्तः ॥ १ ॥

ननु मोक्षार्थं चेत् सृष्टिस्तर्हि सकृत् सृष्ट्यैव मोक्षसम्भवे पुनः पुनः स्रष्टिर्न स्यादिति तत्राह ।

विरक्तस्य तत्सिद्धेः ॥ २ ॥

नैकदा सृष्टेर्मोक्षः किन्तु बहुशो जन्ममरणव्याध्यादिविविधदुःखेन भृशं तप्तस्य ततश्च प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकख्यात्योत्पन्नपरवैराग्यस्यैव मोक्षोत्पत्तिसिद्धेरित्यर्थः ॥ २ ॥

सकृत् सृष्ट्या वैराग्यासिद्धौ हेतुमाह ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ॥ ३ ॥

श्रवणमपि बहुजन्मकृतपुण्येन भवति। तत्रापि श्रवणमात्रान्न वैराग्यसिद्धिः किन्तु साक्षात्कारात्। साक्षात्कारश्च झटिति न भवति। अनादिमिथ्यावासनाया बलवत्त्वात्। किन्तु योगनिष्ठया। योगे च प्रतिबन्धबाहुल्यमित्यतो बहुजन्मभिरेव वैराग्यं मोक्षश्च कदाचित् कस्यचिदेव सिध्यतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

सृष्टिप्रवाहे हेत्वन्तरमाह ।

बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् ॥ ४ ॥

यथा गृहस्थानां प्रत्येकं बहवो भर्त्तव्या भवन्ति स्त्रीपुत्रादिभेदेन। एवं सत्त्वादिगुणानामपि प्रत्येकमसङ्ख्यपुरुषा विमोचनीया भवन्ति। अतः कियत्पुरुषमोक्षेऽपि पुरुषान्तरमोचनार्थं सृष्टिप्रवाहो घटते। पुरुषाणामानन्त्यादित्यर्थः। तथा च योगसूत्रम्। कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वादिति ॥ ४ ॥

ननु प्रकृतेरेव स्रष्टृत्वं कथमुच्यते। एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत इति श्रुत्या पुरुषस्यापि स्रष्टृत्वसिद्धेरिति तत्राह।

प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्याससिद्धिः ॥५॥

प्रकृतौ स्रष्टृत्वस्य वस्तुत्वे च सिद्धे पुरुषस्य स्रष्टृत्वाध्यास एव श्रुतिषु सिध्यति। उपासनायामेव श्रुतेस्तात्पर्य्यात्। अजामेकामित्यादिश्रुत्यन्तरेण प्रकृतेः स्रष्टृत्वसिद्धेः पुंसां कूटस्थचिन्मात्रताबोधकश्रुत्यन्तरविरोधाच्चेत्यर्थः। अयं चाध्यास उपचाररूपो लोके सिद्ध एवास्ति। यथा स्वशक्तिषु योधेषु वर्त्तमानौ जयपराजयौ राजन्युपचर्य्येते तथा स्वशक्तौ प्रकृतौ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वर्त्तमानं स्रष्टृत्वादिकं शक्तिमत्सु पुरुषेषूपचर्य्यते शक्तिशक्तिमदभेदात्। तदुक्तं कौर्मे।

शक्तिशक्तिमतोर्भेदं पश्यन्ति परमार्थतः।

अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः॥

इति भेदमन्योऽन्याभावभेदं चाविभागरूपं प्रकृत्यादितत्त्वोपासकाः पश्यन्तीत्यर्थः। तयोश्चोदाहरणम्। अथात आदेशो नेति नेतीत्यादिश्रुतिः। आत्मैवेदं सर्वमित्यादिश्रुतिश्चेति भावः॥ ५॥

नन्वेवं प्रकृतावपि स्रष्टृत्वं वास्तवमिति कुतोऽवधृतं सृष्टेः स्वप्नादितुल्यताया अपि श्रवणादिति तत्राह।

कार्य्यतस्तत्सिद्धेः॥ ६॥

कार्य्याणामर्थक्रियाकारितया वास्तवत्वेन कार्य्यत एव धर्मिग्राहकप्रमाणेन प्रकृतेर्वास्तवस्रष्टृत्वसिद्धेरित्यर्थः। स्वप्नादितुल्यताश्रुतयस्त्वनित्यतारूपासत्त्वांशमात्रे पुरुषाध्यस्तत्वांशे वा बोध्याः। अन्यथा सृष्टिप्रतिपादकश्रुतिविरोधात्। स्वप्नपदार्थानामपि मनःपरिणामत्वेनात्यन्तासत्ताविरहाच्चेति॥ ६॥

ननु प्रकृतेः स्वार्थत्वपक्षे मुक्तपुरुषं प्रत्यपि सा प्रवर्त्तेत तत्राह।

चेतनोद्देशान्नियमः कण्टकमोक्षवत्॥ ७॥

चितो संज्ञान इति व्युत्पत्त्या चेतनोऽत्राभिज्ञः। यथैकमेव कण्टकं यश्चेतनोऽभिज्ञस्तस्मादेव मुच्यते तं प्रत्येव दुःखात्मकं न भवत्यन्यान् प्रति तु भवत्येव तथा प्रकृतिरपि चेतनादभिज्ञात् कृतार्थादेव मुच्यते तं प्रत्येव दुःखात्मिका न भवति। अन्याननभिज्ञान् प्रति तु दुःखात्मिका भवत्येवेति नियमो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्यवस्थेत्यर्थः। एतेन स्वभावतो बद्धाया अपि प्रकृतेः स्वमोक्षो घटत इत्यतो न मुक्तपुरुषं प्रति प्रवर्त्तते ॥ ७ ॥

ननु पुरुषे स्रष्टृत्वमध्यस्तमात्रमिति यदुक्तं तन्न युक्तम्। प्रकृतिसंयोगेन पुरुषस्यापि महदादिपरिणामौचित्यात्। दृष्टो हि पृथिव्यादियोगेन काष्ठादेः पृथिव्यादिसदृशः परिणाम इति तत्राह।

अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ॥ ८ ॥

प्रकृतियोगेऽपि पुरुषस्य न स्रष्टृत्वसिद्धिराञ्जस्येन साक्षात्। तत्र दृष्टान्तोऽयोदाहवत्। यथायसा न दग्धृत्वं साक्षादस्ति किन्तु स्वसंयुक्ताग्निद्वारकमध्यस्तमेवेत्यर्थः। उक्तदृष्टान्ते तूभयोः परिणामः प्रत्यक्षसिद्धत्वादिष्यते सन्दिग्धस्थले त्वेकस्यैव परिणामेनोपपत्तावुभयोः परिणामकल्पने गौरवम्। अन्यथा जपासंयोगात् स्फटिकस्य रागपरिणामापत्तेरिति ॥ ८ ॥

सृष्टेः फलं मोक्ष इति प्रागुक्तम्। इदानीं सृष्टेर्मुख्यं निमित्तकारणमाह।

रागविरागयोर्योगः सृष्टिः ॥ ९ ॥

रागे सृष्टिर्वैराग्ये च योगः स्वरूपेऽवस्थानम्। मुक्तिरिति यावत्। अथवा चित्तवृत्तिनिरोध इत्यर्थः। तथा चान्वयव्यतिरेकाभ्यां रागः सृष्टिकारणमित्याशयः। तथा च श्रुतिरपि ब्रह्मादिरूपां विविधकर्मगतिमुक्त्वाह इति तु कामयमानो योऽकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति। रागवैराग्ये अपि प्रकृतिधर्मावेव ॥ ९ ॥

इतः परं सृष्टिप्रक्रियां वक्तुमारभते।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महदादिक्रमेण पञ्चभूतानाम् ॥ १० ॥

सृष्टिरिति पूर्वसूत्रादनुवर्त्तते। यद्यप्येतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत इत्यादिश्रुतावादावेव पञ्चभूतानां सृष्टिः श्रूयते तथापि महदादिक्रमेणैव पञ्चभूतानां सृष्टिरिष्टेत्यर्थः। तेज आदिसृष्टिश्रुतौ गगनवायुसृष्टेरापूरणवदुक्तश्रुतावप्यादौ महदादिसृष्टिः पूरणीयेति भावः। अत्र च प्रमाणं घटसृष्टिवदन्तःकरणातिरिक्ताखिलसृष्टेरन्तःकरणवृत्ति-पूर्वकत्वानुमानम्। किञ्च।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥

इति श्रुत्यन्तरस्थपाठक्रमानुरोधेन स प्राणमसृजत् प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुमित्यादिश्रुत्यन्तरेण च पञ्चभूतसृष्टेः प्राङ्महदादिसृष्टिरवधार्य्यत इति। प्राणश्चान्तःकरणस्य वृत्तिभेद इति वक्ष्यति। अतोऽस्यां श्रुतौ प्राण एव महत्तत्त्वमिति। तथा वेदान्तसूत्रमपि महदादिक्रमेणैव सृष्टिं वक्ति। अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति। सदाकाशयोर्मध्ये बुद्धिमनसी उत्पाद्ये इति क्रमेणेत्यर्थः। मनसि चाहङ्कारस्य प्रवेश इति ॥ १० ॥

प्रकृतेरेव स्रष्टृत्वं स्वमोक्षार्थं तस्या नित्यत्वात्। महदादीनां तु स्वस्वविकारस्रष्टृत्वं न स्वमोक्षार्थमनित्यत्वादिति। विशेषमाह।

आत्मार्थत्वात् सृष्टेर्नैषामात्मार्थ आरम्भः ॥ ११ ॥

एषां महदादीनां स्रष्टृत्वस्यात्मार्थत्वात् पुरुषमोक्षार्थत्वान्न स्वार्थ आरम्भः स्रष्टृत्वं विनाशित्वेन मोक्षायोगादित्यर्थः। पर-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोक्षार्थकत्वे चावश्यके पुरुषमोक्षार्थकत्वमेव युक्तं न प्रकृतिमोक्षार्थकत्वं तस्याः पुरुषगुणत्वादिति ॥ ११ ॥

खण्डदिक्कालयोः सृष्टिमाह।

दिक्कालावाकाशादिभ्यः ॥ १२ ॥

नित्यौ यौ दिक्कालौ तावाकाशप्रकृतिभूतौ प्रकृतेर्गुणविशेषावेव। अतो दिक्कालयोर्विभुत्वोपपत्तिः। आकाशवत् सर्वगतश्च नित्य इत्यादिश्रुत्युक्तं विभुत्वं चाकाशस्योपपन्नम्। यौ तु खण्डदिक्कालौ तौ तु तत्तदुपाधिसंयोगादाकाशादुत्पद्येते इत्यर्थः। आदिशब्देनोपाधिग्रहणादिति। यद्यपि तत्तदुपाधिविशिष्टाकाशमेव खण्डदिक्कालौ तथापि विशिष्टस्यातिरिक्ताभ्युपगमवादेन वैशेषिकनये श्रोत्रस्य कार्य्यं तावत् तत्कार्य्यत्वमत्रोक्तम् ॥ १२ ॥

इदानीं महदादिक्रमेणोत्पन्नान् स्वरूपतो धर्मतश्च क्रमेण दर्शयति।

अध्यवसायो बुद्धिः ॥ १३ ॥

महत्तत्त्वस्य पर्य्यायो बुद्धिरिति। अध्यवसायश्च निश्चयाख्यस्तस्या साधारणी वृत्तिरित्यर्थः। अभेदनिर्देशस्तु धर्मधर्म्यभेदात्। अस्याश्च बुद्धेर्महत्त्वं स्वेतरसकलकार्य्यव्यापकत्वान्महैश्वर्य्याच्च मन्तव्यम्।

सविकारात् प्रधानात् तु महत्तत्त्वमजायत।
महानिति यतः ख्यातिर्लोकानां जायते सदा ॥

इति स्मृतेः। अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेद इत्यादिश्रुतिस्मृतिषु च हिरण्यगर्भे चेतनेऽपि महानितिशब्दो बुद्ध्यभिमानित्वेनैव। यथा पृथिव्यभिमानिचेतने पृथिवीशब्दस्तद्वत्। एवमेव रुद्रादिष्वहङ्कारादिशब्दोऽपि बोध्यः। प्रकृत्य-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भिमानिदेवतामारभ्य सर्वेषामेव भूताभिमानिपर्य्यन्तानां स्वस्वबुद्धिरूपाश्च प्रतिनियतोपाधयो महत्तत्त्वस्यैवांशा इति ॥ १३ ॥

महत्तत्त्वस्यापरानपि धर्मानाह।

तत्कार्य्यं धर्मादि ॥ १४ ॥

धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्य्याण्यपि बुद्ध्युपादानकानि नाहङ्कारायुपादानकानि बुद्धेरेव निरतिशयसत्त्वकार्य्यत्वादित्यर्थः ॥१४॥

नन्वेवं कथं नरपश्वादिगतानां बुद्ध्यंशानामधर्मप्राबल्यमुपपद्यतां तत्राह।

महदुपरागाद्विपरीतम् ॥ १५ ॥

तदेव महन्महत्तत्त्वं रजस्तमोभ्यामुपरागाद्विपरीतं क्षुद्रधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्य्यधर्मकमपि भवतीत्यर्थः। एतेन सर्व एव पुरुषा ईश्वरा इति श्रुतिस्मृतिप्रवादोऽप्युपपादितः सर्वोपाधीनां स्वाभाविकैश्वर्य्यस्य रजस्तमोभ्यामेवावरणादिति। नन्वेवं धर्माद्यवस्थानार्थं बुद्धेरपि नित्यत्वात् कथं कार्य्यतेति चेन्न। प्रकृत्यंशरूपे वीजावस्थमहत्तत्त्वे सत्त्वविशेषे कर्मवासनादीनामवस्थानात् तस्यैव ज्ञानकारणावस्थायामङ्कुरवदुपपत्त्यङ्गीकारात्। तथा चाकाशवदेव नित्यानित्योभयरूपा बुद्धिः। यथा कारणं स्वाकारः प्रकृतिप्रभावादिति ॥ १५ ॥

महत्तत्त्वं लक्षयित्वा तत्कार्य्यं महङ्कारं लक्षयति।

अभिमानोऽहङ्कारः ॥ १६ ॥

अहङ्करोतीत्यहङ्कारः कुम्भकारवत्। अन्तःकरणद्रव्यं स च धर्मधर्म्यभेदादभिमान इत्युक्तोऽसाधारणवृत्तिता। सूचनाय बुद्ध्या निश्चित एवार्थेऽहङ्कारममकारौ जायेते। अतो वृत्त्योः कार्य्यकारणभावानुसारेण वृत्तिमतोरपि कार्य्यकारणभाव उन्नी-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यत इति प्रागेवोक्तम् । अन्तःकरणमेकमेव वीजाङ्कुरमहावृक्षादिवदवस्थात्रयमात्रभेदात् कार्य्यकारणभावमापद्यत इति च प्रागेवोक्तम् । अत एव वायुमात्स्ययोर्मनो महान् मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वर इति मनोबुद्ध्योरेकपर्य्यायत्वमुक्तमिति ॥ १६ ॥

क्रमागतमहङ्कारस्य कार्य्यमाह ।

एकादशपञ्चतन्मात्रं यत्कार्य्यम् ॥ १७ ॥

एकादशेन्द्रियाणि शब्दादिपञ्चतन्मात्रं चाहङ्कारस्य कार्य्यमित्यर्थः । मयानेनेन्द्रियेणेदं रूपादिकं भोक्तव्यमिदमेव सुखसाधनमित्याद्यभिमानादेवादिसर्गेष्विन्द्रियतद्विषयोत्पत्त्याहङ्कार इन्द्रियादिहेतुः ॥ लोके भोगाभिमानिनैव रागद्वारा भोगोपकरणकरणदर्शनात् । रूपरागादभूच्चक्षुरित्यादिना मोक्षधर्मे हिरण्यगर्भस्य रागादेव समष्टिचक्षुराद्योत्पत्तिस्मरणाच्चेति भावः । अतश्च भूतेन्द्रिययोर्मध्ये रागधर्मकं मन एवादावहङ्कारादुत्पद्यत इति विशेषस्तन्मात्रादीनां रागकार्य्यत्वादिति ॥ १७ ॥

तत्रापि विशेषमाह ।

सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्त्तते वैकृतादहङ्कारात् ॥ १८ ॥

एकादशानां पूरणमेकादशकं मनः षोडशात्मगणमध्ये सात्त्विकम् । अतस्तद्वैकृतात् सात्त्विकाहङ्काराज्जायत इत्यर्थः । अतश्च राजसाहङ्कारादृशेन्द्रियाणि तामसाहङ्काराच्च तन्मात्राणीत्यपि गन्तव्यम् ।

वैकारिकास्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ।
अहन्तत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ।
तैजसादिन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ॥
तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ।

इत्यादिस्मृतिभ्य एव निर्णयात् । अत एव पुराणाद्यनुसारेण कारिकायामप्येतदुक्तम् ।

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहङ्कारात् ।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम् ॥

इति । तैजसो राजसः । उभयं ज्ञानकर्मेन्द्रिये । ननु देवतालक्षश्रुतिरित्यागामिसूत्रे करणानां देवान् वक्ष्यति तत् कथं कारिकयापि देवानां सात्त्विकाहङ्कारकार्य्यत्वं नोक्तमिति । उच्यते । समष्टिचक्षुरादिशरीरिणः सूर्य्यादिचेतना एव चक्षुरादिदेवताः श्रूयन्ते । अतश्च व्यष्टिकरणानां समष्टिकरणानि देवतेत्येव पर्य्यवस्यति । तथा च व्यष्टिसमष्ट्योरेकताशयेनात्र शास्त्रे देवाः करणेभ्यो न पृथङ्निर्दिश्यन्ते । अतः समष्टीन्द्रियाणि मनोऽपेक्षयाल्पसत्त्वत्वेन राजसाहङ्कारकार्य्यत्वेनैव निर्दिष्टानि । स्मृतिषु च व्यष्टीन्द्रियापेक्षयाधिकसत्त्वत्वेन सात्त्विकाहङ्कारकार्य्यतयोक्तानीत्यविरोध इति मन्तव्यम् । तदेवमहङ्कारस्य त्रैविध्यान्महतोऽपि तत्कारणस्य त्रैविध्यं मन्तव्यम् ।

सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ।

इति स्मरणात् । त्रैविध्यं चानयोर्व्यक्तिभेदादंशभेदाद्वेत्यन्यदेतत् ॥ १८ ॥

एकादशेन्द्रियाणि दर्शयति ।

कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ॥१९॥

कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थानि पञ्च ज्ञानेन्द्रि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

याणि च चक्षुःश्रोत्रत्वग्रसनघ्राणाख्यानि पञ्च। एतैर्दशभिः सहान्तरं मन एकादशकमेकादशेन्द्रियमित्यर्थः। इन्द्रस्य सङ्घातेश्वरस्य करणमिन्द्रियम्। तथा चाहङ्कारकार्य्यत्वे सति करणत्वमिन्द्रियत्वमिति ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणां भौतिकत्वमतं निराकरोति।

आहङ्कारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि ॥ २० ॥

इन्द्रियाणीति शेषः। आहङ्कारिकत्वे च प्रमाणभूता श्रुतिः काललुप्ताप्याचार्य्यवाक्यान्मन्वाद्यखिलस्मृतिभ्यश्चानुमीयते। प्रत्यक्षा श्रुतिरहं बहु स्यामित्यादिः। नन्वन्नमयं हि सौम्य मन इत्यादिर्भौतिकत्वेऽपि श्रुतिरस्तीति चेन्न। प्रकाशकत्वसाम्येनान्तःकरणोपादानत्वस्यैवोचिततयाहङ्कारिकत्वश्रुतेरेव मुख्यत्वात्। भूतानामपि हिरण्यगर्भसङ्कल्पजन्यतयान्नस्य मनोजन्यत्वाच्च। व्यष्टिमन आदीनां भूतसंसृष्टतयैव तिष्ठतां भूतेभ्योऽभिव्यक्तिमात्रेण तु भौतिकश्रुतिर्गौणीति ॥ २० ॥

ननु तथाप्याहङ्कारिकत्वनिर्णयो न घटतेऽस्य पुरुषस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यमित्यादिश्रुतौ देवतास्विन्द्रियाणां लयकथनेन देवतोपादानकत्वस्याप्यवगमात् कारण एव हि कार्य्यस्य लय इत्याशङ्क्याह।

देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य ॥ २१ ॥

देवतासु या लयश्रुतिः सा नारम्भकस्य नारम्भकविषयिणीत्यर्थः। अनारम्भकेऽपि भूतले जलविन्दोर्लयदर्शनात्। अनारम्भकेष्वपि भूतेष्वात्मनो लयश्रवणाच्च। विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यतीत्यादिश्रुताविति भावः ॥ २१ ॥

इन्द्रियान्तर्गतं मनो नित्यमिति केचित् तत् परिहरति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च ॥ २२ ॥

तेषां सर्वेषामेवेन्द्रियाणामुत्पत्तिरस्ति।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।

इत्यादिश्रुतेः। वृद्धाद्यवस्थासु चक्षुरादीनामिव मनसोऽप्यपचयादिना विनाशनिर्णयाच्चेत्यर्थः। तथा चोक्तम्।

दशकेन निवर्त्तन्ते मनः सर्वेन्द्रियाणि च।

इति। मनसो नित्यत्ववचनानि च प्रकृत्याख्यवीजपराणीति ॥ २२ ॥

गोलकजातमेवेन्द्रियमिति नास्तिकमतमपाकरोति।

अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठाने ॥२३॥

इन्द्रियं सर्वमतीन्द्रियं न तु प्रत्यक्षं भ्रान्तानामेव त्वधिष्ठाने गोलके तादात्म्येनेन्द्रियमित्यर्थः। अधिष्ठानमित्येव पाठः ॥ २३ ॥

एकमेवेन्द्रियं शक्तिभेदाद्विलक्षणकार्य्यकारीति मतमपाकरोति।

शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकत्वम् ॥ २४ ॥

एकस्यैवेन्द्रियस्य शक्तिभेदस्वीकारेऽपीन्द्रियभेदः सिध्यति शक्तीनामपीन्द्रियत्वात्। अतो नैकत्वमिन्द्रियस्येत्यर्थः ॥ २४ ॥

नन्वेकस्मादहङ्कारान्नानाविधेन्द्रियोत्पत्तिकल्पनायां न्यायविरोधस्तत्राह।

न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य ॥ २५ ॥

सुगमम् ॥ २५ ॥

एकस्यैव मुख्येन्द्रियस्य मनसोऽन्ये दश शक्तिभेदा इत्याह।

उभयात्मकं मनः ॥ २६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्ञानकर्मेन्द्रियात्मकं मन इत्यर्थः ॥ २६ ॥

उभयात्मकमित्यस्यार्थं स्वयं विवृणोति ।

गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ॥२७॥

यथैक एव नरः सङ्गवशान्नानात्वं भजते कामिनीसङ्गात् कामुको विरक्तसङ्गाद्विरक्तोऽन्यसङ्गाच्चान्य एवं मनोऽपि चक्षुरादिसङ्गाच्चक्षुराद्येकीभावेन दर्शनादिवृत्तिविशिष्टतया नाना भवति । तत्र हेतुर्गुणेत्यादि । गुणानां सत्त्वादीनां परिणामभेदेषु सामर्थ्यादित्यर्थः । एतच्चान्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमित्यादिश्रुतिसिद्धाच्चक्षुरादीनां मनःसंयोगं विना व्यापाराक्षमत्वादनुमीयते ॥ २७ ॥

ज्ञानकर्मेन्द्रिययोर्विषयमाह ।

रूपादिरसमलान्त उभयोः ॥ २८ ॥

अन्नरसानां मलः पुरीषादिः । तथा रूपरसगन्धस्पर्शशब्दा वक्तव्यादातव्यगन्तव्यानन्दयितव्योत्स्रष्टव्याश्चोभयोर्ज्ञानकर्मेन्द्रिययोर्दश विषया इत्यर्थः । आनन्दयितव्यं चोपस्थस्योपस्थान्तरं विषय इति ॥ २८ ॥

यस्येन्द्रियस्य येनोपकारेणेतानीन्द्रियाणीत्युच्यते तदुभयमाह ।

द्रष्टृत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम् ॥२९॥

द्रष्टृत्वादिपञ्चकं वक्तृत्वादिपञ्चकं सङ्कल्पयितृत्वं चात्मनः पुरुषस्य दर्शनादिवृत्तौ करणत्वं त्विन्द्रियाणामित्यर्थः । ननु द्रष्टृत्वश्रोतृत्वादिकं कदाचिदनुभवे पर्य्यवसानात् पुरुषस्याविकारिणोऽपि घटतां वक्तृत्वादिकं क्रियायाञ्च तत् कथं कूटस्थस्य घटतामिति चेन्न । अयस्कान्तवत् सान्निध्यमात्रेण दर्शनादिवृत्तिकर्तृत्वस्यैवात्र द्रष्टृत्वादिशब्दार्थत्वात् । यथा हि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाराजः स्वयमव्याप्रियमाणोऽपि सैन्येन करणेन योद्धा भवत्याज्ञामात्रेण प्रेरकत्वात् तथा कूटस्थोऽपि पुरुषश्चक्षुराद्यखिलकरणैर्द्रष्टा वक्ता सङ्कल्पयिता चेत्येवमादिर्भवति संयोगाख्यसान्निध्यमात्रेणैव तेषां प्रेरकत्वादयस्कान्तमणिवदिति। कर्त्तृत्वं चात्र कारकचक्रप्रयोक्तृत्वं करणत्वं क्रियाहेतुव्यापारवत्त्वं तत्साधकतमत्वं वा कुठारादिवत्। यत् तु शास्त्रेषु पुरुषे दर्शनादिकर्त्तृत्वं निषिध्यते तदनुकूलकृतिमत्त्वं तत्तत्क्रियावत्त्वं वा। तथा चोक्तम्।

अत्र आत्मनि कर्त्तृत्वमकर्त्तृत्वं च संस्थितम्।
निरिच्छत्वादकर्त्तासौ कर्त्ता सन्निधिमात्रतः॥

इति। अत एव कारकचक्रप्रयोक्तृताशक्तेरात्मस्वरूपतया द्रष्टृत्ववक्तृत्वादिकमात्मनो नित्यमिति श्रूयते। न द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते न वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यत इत्यादिनेति। ननु प्रमाणविभागे प्रत्यक्षादिवृत्तीनामेव करणत्वमुक्तमत्र कथमिन्द्रियस्योच्यत इति चेन्न। अत्र दर्शनादिरूपासु चक्षुरादिद्वारकबुद्धिवृत्तिष्वेवेन्द्रियाणां करणत्ववचनात्। तत्र पुरुषनिष्ठे बोधाख्यफले वृत्तीनां करणत्वस्योक्तत्वादिति ॥ २९ ॥

इदानीमन्तःकरणत्रयस्यासाधारणवृत्तीराह।

त्रयाणां स्वालक्षण्यम् ॥ ३० ॥

त्रयाणां महदहङ्कारमनसां स्वालक्षण्यं स्वं स्वं लक्षणमसाधारणी वृत्तिर्येषामिति मध्यमपदलोपी विग्रहस्तस्य भावस्तत्त्वमित्यर्थः। लोके च महतो लक्षणमध्यवसायादिप्रकृष्टगुणवत्त्वम्। अहङ्कृतस्य चात्मन्यविद्यमानगुणारोपः। मनसश्चेदमस्त्वित्यङ्गीकरणमिति। तथा च बुद्धेर्वृत्तिरध्यवसायो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऽभिमानोऽहङ्कारस्य सङ्कल्पविकल्पौ मनस इत्यायातम् । सङ्कल्पश्चिकीर्षा सङ्कल्पः कर्ममानसमित्यनुशासनात् । विकल्पश्च संशयो योगोक्तभ्रमविशेषो वा न तु विशिष्टज्ञानं तस्य बुद्धिवृत्तित्वादिति ॥ ३० ॥

त्रयाणां साधारणीं वृत्तिमप्याह ।

सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ॥ ३१ ॥

प्राणादिरूपाः पञ्च वायुवत् सञ्चारात् वायवो ये प्रसिद्धास्ते सामान्या साधारणी करणस्यान्तःकरणत्रयस्य वृत्तिः परिणामभेदा इत्यर्थः । तदेतत् कारिकयोक्तम् ।

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या ।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ॥

इति । अत्र कश्चित्प्राणाद्या वायुविशेषा एव ते चान्तःकरणवृत्त्या जीवनयोनिप्रयत्नरूपया व्याप्रियन्त इति कृत्वा प्राणाद्याः करणवृत्तिरित्यभेदनिर्देश इत्याह । तन्न । न वायुक्रिये पृथगुपदेशादिति वेदान्तसूत्रेण प्राणस्य वायुत्ववायुपरिणामत्वयोः स्फुटं प्रतिषेधादत्रापि तदेकवाक्यतौचित्यात् । मनोधर्मस्य कामादेः प्राणक्षोभकतया सामानाधिकरण्ये नैवौचित्याच्च । वायुप्राणयोः पृथगुपदेशश्रुतयस्तु ।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥

इत्याद्या इति । अत एव लिङ्गशरीरमध्ये प्राणानामगणनेऽपि न न्यूनता बुद्धेरेव क्रियाशक्त्या सूत्रात्मप्राणादिनामकत्वादिति । अन्तःकरणपरिणामेऽपि वायुतुल्यसञ्चारविशेषाद्वायुदेवताधिष्ठितत्वाच्च वायुव्यवहारोपपत्तिरिति ॥ ३१ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैशेषिकाणामिवास्माकं नायं नियमो यदिन्द्रियवृत्तिः क्रमेणैव भवति नैकदेत्याह।

क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः॥ ३२॥

सुगमम्। जातिसाङ्कर्य्यस्यास्माकमदोषत्वात् सामग्रीसमवधाने सत्यनेकैरपीन्द्रियैरेकदैकवृत्त्युत्पादने बाधकं नास्तीति भावः। इन्द्रियवृत्तीनां विभागश्च कारिकया व्याख्यातः।

शब्दादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः।
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम्॥

आलोचनं च पूर्वाचार्य्यैर्व्याख्यातम्।

अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्।
परं पुनस्तथा वस्तुधर्मैर्जात्यादिभिस्तथा॥

इति। परमुत्तरकालीनं च पुनर्वस्तुधर्मैर्द्रव्यरूपधर्मैस्तथा जात्यादिभिर्ज्ञानं सविकल्पकं तथालोचनाख्यं भवतीत्यर्थः। तथा च निर्विकल्पकसविकल्पकरूपं द्विविधमप्यैन्द्रियकं ज्ञानमालोचनसंज्ञमिति लब्धम्। कश्चित् तु निर्विकल्पकं ज्ञानमेवालोचनमिन्द्रियजन्यं च भवति सविकल्पकं तु मनोमात्रजन्यमिति श्लोकार्थमाह। तन्न। योगभाष्ये व्यासदेवैर्विशिष्टज्ञानस्याप्यैन्द्रियकत्वस्य व्यवस्थापितत्वात्। इन्द्रियैर्विशिष्टज्ञाने बाधकाभावाच्च। स एव सूत्रार्थमप्येवं व्याचष्टे बाह्येन्द्रियमारभ्य बुद्धिपर्य्यन्तस्य वृत्तिरुत्सर्गतः क्रमेण भवति कदाचित् तु व्याघ्रादिदर्शनकाले भयविशेषाद्विद्युल्लतेव सर्वकरणेष्वेकदैव वृत्तिर्भवतीत्यर्थ इति। तदप्यसत्। सूत्र इन्द्रियवृत्तीनामिव क्रमिकाक्रमिकत्ववचनात्। न बुद्ध्यहङ्कारवृत्त्योः प्रसङ्गोऽप्यस्ति। किञ्चैकदानेकेन्द्रियवृत्ताविव वादिविप्रतिपत्त्या तन्नि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ध्येयपरत्वमेव सूत्रस्योचितं मनोऽणुत्वप्रतिषेधाय न तु काकदन्तान्वेषणपरत्वमिति ॥ ३२ ॥

पिण्डीकृत्य बुद्धिवृत्तीः संसारनिदानताप्रतिपादनार्थमादौ दर्शयति ।

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ३३ ॥

क्लिष्टा अक्लिष्टा वा भवन्तु वृत्तयः पञ्चतय्यः पञ्चप्रकारा एव नाधिका इत्यर्थः । क्लिष्टा दुःखदाः सांसारिकवृत्तयोऽक्लिष्टाश्च तद्विपरीता योगकालीनवृत्तयः । वृत्तीनां पञ्चप्रकारत्वं पातञ्जलसूत्रेणोक्तम् । प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतय इति । तत्र प्रमाणवृत्तिरत्राप्युक्ता विपर्ययस्त्वस्माकं विवेकाग्रह एवान्यथाख्यातेर्निरास्यत्वात् । विकल्पस्तु विशेषदर्शनकालेऽपि राहोः शिरः पुरुषस्य चैतन्यमित्यादिज्ञानम् । निद्रा च सुषुप्तिकालीना बुद्धिवृत्तिः । स्मृतिश्च संस्कारजन्यं ज्ञानमिति । एतत् सर्वं पातञ्जले सूत्रितम् ॥ ३३ ॥

या एता बुद्धिवृत्तय उक्ता एतदौपाधिक्येव पुरुषस्यान्यरूपता न स्वत एतन्निवृत्तौ च पुरुषः स्वरूपेऽवस्थितो भवतीत्यनयापि दिशा पुरुषस्य स्वरूपं परिचाययति ।

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ॥ ३४ ॥

तासां वृत्तीनां विरामदशायां शान्ततत्प्रतिविम्बकः स्वस्थो भवति कैवल्य इवान्यदापीत्यर्थः । तथा च योगसूत्रत्रयम् । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् । वृत्तिसारूप्यमितरत्रेति । इदमेव च पुरुषस्य स्वस्थत्वं यदुपाधिवृत्तेः प्रतिविम्बस्य निवृत्तिरिति । एतादृशी चावस्था पुरुषस्य वासिष्ठे दृष्टान्तेन प्रदर्शिता । यथा ।

अनाप्ताखिलशैलादिप्रतिविम्बे हि यादृशी ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्यादर्पणे दर्पणता केवलात्मस्वरूपिणी ॥

अहं त्वं जगदित्यादौ प्रशान्ते दृश्यसम्भ्रमे।

स्यात् तादृशी केवलता स्थिते द्रष्टर्यवीक्षणे ॥

इति ॥ ३४ ॥

एतदेव दृष्टान्तेन विवृणोति।

कुसुमवच्च मणिः ॥ ३५ ॥

चकारो हेतौ कुसुमेनेव मणिरित्यर्थः। यथा जपाकुसुमेन स्फटिकमणौ रक्तोऽस्वस्थो भवति तन्निवृत्तौ च रागशून्यः स्वस्थो भवति तद्वदिति। तदेतदुक्तं कौर्मे।

यथा संलक्ष्यते रक्तः केवलः स्फटिको जनैः।

रञ्जकाद्युपधानेन तद्वत् परमपूरुषः ॥

इति ॥ ३५ ॥

ननु कस्य प्रयत्नेन करणजातं प्रवर्त्ततां पुरुषस्य कूटस्थत्वादीश्वरस्य च प्रतिषिद्धत्वादिति तत्राह।

पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ॥ ३६ ॥

प्रधानप्रवृत्तिवत् पुरुषार्थं करणोद्भवः करणानां प्रवृत्तिरपि पुरुषस्यादृष्टाभिव्यक्तेरेव भवतीत्यर्थः। अदृष्टं चोपाधेरेव ॥ ३६ ॥

परार्थं स्वतः प्रवृत्तौ दृष्टान्तमाह।

धेनुवद्वत्साय ॥ ३७ ॥

यथा वत्सार्थं धेनुः स्वयमेव क्षीरं स्रवति नान्यं यत्नमपेक्षते तथैव स्वामिनः पुरुषस्य कृते स्वयमेव करणानि प्रवर्त्तन्त इत्यर्थः। दृश्यते च सुषुप्तात् स्वयमेव बुद्धेरुत्थानमिति। एतदेव कारिकयाप्युक्तम्।

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्य्यते करणम् ॥

इति ॥ ३७ ॥

वाह्याभ्यन्तरैर्मिलित्वा कियन्ति करणानीत्याकाङ्क्षायामाह ।

करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात् ॥३८॥

अन्तःकरणत्रयं दश बाह्यकरणानि मिलित्वा त्रयोदश तेष्वपि व्यक्तिभेदेनानन्त्यं प्रतिपादयितुं विधमित्युक्तम् । बुद्धिरेव मुख्यं करणमित्याशयेनोक्तमवान्तरभेदादिति । एकस्यैव बुद्ध्याख्यकरणस्य करणानामनेकत्वादित्यर्थः ॥ ३८ ॥

ननु बुद्धिरेव पुरुषेऽर्थसमर्पकत्वान्मुख्यं करणमन्येषां च करणत्वं गौणं तत्र को गुण इत्याकाङ्क्षायामाह ।

इन्द्रियेषु साधकतमत्वगुणयोगात् कुठारवत् ॥ ३९ ॥

इन्द्रियेषु पुरुषार्थसाधकतमत्वरूपः करणस्य बुद्धेर्गुणः परम्परयास्त्यतस्त्रयोदशविधं करणमुपपद्यत इति पूर्वसूत्रेणान्वयः । कुठारवदिति । यथा फलायोगव्यवच्छिन्नतया प्रहारस्यैव छिदायां मुख्यकरणत्वेऽपि प्रकृष्टसाधनत्वगुणयोगात् कुठारस्यापि करणत्वं तथेत्यर्थः । अन्तःकरणस्यैकत्वमभिप्रेत्याहङ्कारस्य गौणकरणत्वमत्र नोक्तम् ॥ ३९ ॥

गौणमुख्यभावे व्यवस्थां विशिष्याह ।

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद्भृत्यवर्गेषु ॥४०॥

द्वयोर्बाह्यान्तरयोर्मध्ये मनो बुद्धिरेव प्रधानं मुख्यम् । साक्षात्करणमिति यावत् । पुरुषेऽर्थसमर्पकत्वात् । यथा भृत्यवर्गेषु मध्ये कश्चिदेव लोको राज्ञः प्रधानो भवत्यन्ये च तदुपसर्जनीभूता ग्रामाध्यक्षादयस्तद्वदित्यर्थः । अत्र मनः-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दो न तृतीयान्तःकरणवाची। वक्ष्यमाणस्याखिलसंस्काराधारत्वस्य बुद्ध्यतिरिक्तेष्वसम्भवात्। सम्भवे वा बुद्धिकल्पनवैयर्थ्यादिति ॥ ४० ॥

बुद्धेः प्रधानत्वे हेतूनाह त्रिभिः सूत्रैः।

अव्यभिचारात् ॥ ४१ ॥

सर्वकरणव्यापकत्वात् फलाव्यभिचाराद्दित्यर्थः ॥ ४१ ॥

तथाशेषसंस्काराधारत्वात् ॥ ४२ ॥

बुद्धेरेवाखिलसंस्काराधारता न तु चक्षुरादेरहङ्कारमनसोर्वा पूर्वदृष्टश्रुताद्यर्थानामन्धवधिरादिभिः स्मरणानुपपत्तेः। तत्त्वज्ञानेनाहङ्कारमनसोर्लयेऽपि स्मरणदर्शनाच्च। अतोऽशेषसंस्काराधारतयापि बुद्धेरेव सर्वेभ्यः प्रधानत्वमित्यर्थः ॥ ४२ ॥

स्मृत्यानुमानाच्च ॥ ४३ ॥

स्मृत्या चिन्तनरूपया वृत्त्या प्राधान्यानुमानाच्चेत्यर्थः। चिन्ता वृत्तिर्हि ध्यानाख्या सर्ववृत्तिभ्यः श्रेष्ठा तदाश्रयतया च चित्तापरनाम्नो बुद्धिरेव श्रेष्ठान्यवृत्तिकरणेभ्य इत्यर्थः ॥४३॥

ननु चिन्तावृत्तिः पुरुषस्यैवास्तु तत्राह।

सम्भवेन्न स्वतः ॥ ४४ ॥

स्वतः पुरुषस्य स्मृतिर्न सम्भवेत् कूटस्थत्वादित्यर्थः। इत्थं वा व्याख्येयम्। नन्वेवं बुद्धिरेव करणमस्तु कृतमवान्तरकरणैरित्याशङ्कायामाह। सम्भवेन्न स्वत इति। चक्षुरादिद्वारतां विनाखिलव्यापारेषु बुद्धेः स्वतः करणत्वं न सम्भवेदन्धादेरपि रूपादिदर्शनापत्तेरित्यर्थः ॥ ४४ ॥

नन्वेवं बुद्धेरेव प्राधान्ये कथं मनस उभयात्मकत्वं प्रागुक्तं तत्राह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात् ॥ ४५ ॥

क्रियाविशेषं प्रति करणानामापेक्षिको गुणप्रधानभावश्च-क्षुरादिव्यापारेषु मनः प्रधानं मनोव्यापारे चाहङ्कारोऽहङ्कार-व्यापारे च बुद्धिः प्रधानम् ॥ ४५ ॥

नन्वस्य पुरुषस्येयं बुद्धिरेव करणं न बुद्ध्यन्तरमित्येवं व्यवस्था किन्निमित्तिकेत्याकाङ्क्षायामाह ।

तत्कर्मार्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोक-वत् ॥ ४६ ॥

तत्पुरुषीयकर्मजत्वात् करणस्य तत्पुरुषार्थमभिचेष्टा सर्वव्यापारो भवति लोकवत् । यथा लोके येन पुरुषेण क्रया-दिकर्मणार्जितो यः कुठारादिस्तत्पुरुषार्थमेव तस्य छिदादि-व्यापार इत्यर्थः । अतः करणव्यवस्थेति भावः । यद्यपि कूट-स्थतया पुरुषे कर्म नास्ति तथापि भोगसाधनतया पुरुषस्वा-मिकत्वेन राज्ञो जयादिवदेव पुरुषस्य कर्मोच्यते । ननु कर्मण एव तत्पुरुषीयत्वे किं नियामकमिति चेत् तथाविधं कर्मा-न्तरमेव । अनादित्वात् तु नानवस्था दोषायेति । यत् तु कश्चिदविवेकी वदति बुद्धिप्रतिबिम्बितपुरुषस्य कर्मेति । तन्न । योगभाष्येऽस्मदुक्तप्रकारस्यैवोक्तत्वेनान्यप्रकारस्याप्रामा-णिकत्वात् । प्रतिबिम्बस्यावस्तुत्वेन कर्माद्यसम्भवाच्च । अन्यथा प्रतिबिम्बस्य कर्मतद्भोगाद्यङ्गीकारे बिम्बत्वाभिमतपुरुषकल्प-नावैयर्थ्यस्य पूर्वं प्रतिपादितत्वादिति ॥ ४६ ॥

बुद्धेः प्राधान्यं प्रकटीकर्त्तुमुपसंहरति ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवल्लोकवत् ॥ ४७ ॥

यद्यपि पुरुषार्थत्वेन समान एव सर्वेषां करणानां व्यापारस्तथापि बुद्धेरेव प्राधान्यं लोकवत्। लोके हि राजार्थकत्वाविशेषेऽपि ग्रामाध्यक्षादिषु मध्ये मन्त्रिण एव प्राधान्यं तद्वदित्यर्थः। अत एव बुद्धिरेव महानिति सर्वशास्त्रेषु गीयत इति। वीप्साध्यायसमाप्तौ ॥ ४७ ॥

लिङ्गदेहस्य घटकं यत् सप्तदशसंख्यकम्।
प्रधानकार्य्यं तत् सूक्ष्ममत्राध्यायेऽनुवर्णितम् ॥

इति श्रीविज्ञानाचार्य्यनिर्मिते कापिलसांख्यप्रवचनस्य
भाष्ये प्रधानकार्य्याध्यायो द्वितीयः ॥

तृतीयोऽध्यायः।

इतः परं प्रधानस्य स्थूलकार्य्यं महाभूतानि शरीरद्वयं च वक्तव्यं ततश्च विविधयोनिगत्यादयो ज्ञानसाधनानुष्ठानहेत्वपरवैराग्यार्थं ततश्च परवैराग्याय ज्ञानसाधनान्यखिलानि वक्तव्यानीति तृतीयारम्भः।

अविशेषाद्विशेषारम्भः ॥ १ ॥

नास्ति विशेषः शान्तघोरमूढत्वादिरूपो यत्रेत्यविशेषो भूतसूक्ष्मं पञ्चतन्मात्राख्यं तस्माच्छान्तादिरूपविशेषवत्त्वेन विशेषाणां स्थूलानां महाभूतानामारम्भ इत्यर्थः। सुखाद्यात्मकता हि शान्तादिरूपा स्थूलभूतेष्वेव तारतम्यादिभिरभिव्यज्यते न सूक्ष्मेषु तेषां शान्तैकरूपतयैव योगिभिरभिव्यक्तेरिति ॥ १ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदेवं पूर्वाध्यायमारभ्य त्रयोविंशतितत्त्वानामुत्पत्तिमुक्ता तस्माच्छरीरद्वयोत्पत्तिमाह।

तस्माच्छरीरस्य ॥ २ ॥

तस्मात् त्रयोविंशतितत्त्वात् स्थूलसूक्ष्मशरीरद्वयस्यारम्भ इत्यर्थः ॥ २ ॥

सम्प्रति त्रयोविंशतितत्त्वे संसारान्यथानुपपत्तिं प्रमाणयति।

तद्वीजात् संसृतिः ॥ ३ ॥

तस्य शरीरस्य वीजात् त्रयोविंशतितत्त्वरूपात् सूक्ष्माद्देतोः पुरुषस्य संसृतिर्गतागते भवतः कूटस्थस्य विभुतया स्वतो गत्याद्यसम्भवादित्यर्थः। त्रयोविंशतितत्त्वेऽवस्थितो हि पुरुषस्तेनैवोपाधिना पूर्वकृतकर्मभोगार्थं देहाद् देहं संसरति।

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव तु कायिकम्॥

इत्यादिस्मृतिभिः पूर्वसर्गीयकरणैरेवोत्सर्गतः सर्गान्तरेषूपभोगसिद्धेः। अतएव ब्रह्मसूत्रमुपसंहरति सम्परिष्वक्त इति ॥ ३ ॥

संसृतेरवधिमप्याह।

आविवेकाच्च प्रवर्त्तनमविशेषाणाम् ॥ ४ ॥

ईश्वरानीश्वरत्वादिविशेषरहितानां सर्वेषामेव पुंसां विवेकपर्य्यन्तमेव प्रवर्त्तनं संसृतिरावश्यकी विवेकोत्तरं च नेत्यर्थः ॥ ४ ॥

तत्र हेतुमाह।

उपभोगादितरस्य ॥ ५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इतरस्याविवेकिन एव स्वीयकर्मफलभोगावश्यम्भावादित्यर्थः ॥ ५ ॥

देहसत्त्वेऽपि संसृतिकाले भोगो नास्तीत्याह।

सम्प्रति परिमुक्तो द्वाभ्याम् ॥ ६ ॥

सम्प्रति संसृतिकाले पुरुषो द्वाभ्यां शीतोष्णसुखदुःखादिद्वन्द्वैः परिमुक्तो भवतीत्यर्थः। तदेतत् कारिकयोक्तम्।

संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्।

इति। भावा धर्माधर्मवासनादयः ॥ ६ ॥

अतः परं शरीरद्वयं विशिष्य वक्तुमुपक्रमते।

मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न तथा ॥७॥

स्थूलं मातापितृजं प्रायशो बाहुल्येनायोनिजस्यापि स्थूलशरीरस्य स्मरणादितरच्च सूक्ष्मशरीरं न तथा न मातापितृजं सर्गाद्युत्पन्नत्वादित्यर्थः। तदुक्तं कारिकया।

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्य्यन्तम्।

संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ॥

इति। नियतं नित्यं द्विपरार्धस्थायि गौणनित्यं प्रतिशरीरं लिङ्गोत्पत्तिकल्पने गौरवात्। प्रलये तु तन्नाशः श्रुतिस्मृतिप्रामाण्यादिष्यते। गतिकाले भोगाभाववचनमुत्सर्गाभिप्रायेण। कदाचित् तु वायवीयशरीरप्रवेशतो गमनकालेऽपि भोगो भवति। अतोऽयममार्गे दुःखभोगवाक्यान्युपपद्यन्ते ॥ ७ ॥

स्थूलसूक्ष्मशरीरयोर्मध्ये किमुपाधिकः पुरुषस्य द्वन्द्वयोगस्तदवधारयति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्य्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य ॥ ८ ॥

पूर्वं सर्गादावुत्पत्तिर्यस्य लिङ्गशरीरस्य तस्यैव तत्कार्य्यत्वं सुखदुःखकार्य्यकत्वं कुत एकस्य लिङ्गदेहस्यैव सुखदुःखाख्यभोगात् न त्वितरस्य स्थूलशरीरस्य मृतशरीरे सुखदुःखाद्यभावस्य सर्वसम्मतत्वादित्यर्थः ॥ ८ ॥

उक्तस्य सूक्ष्मशरीरस्य स्वरूपमाह ।

सप्तदशैकं लिङ्गम् ॥ ९ ॥

सूक्ष्मशरीरमप्याधाराधेयभावेन द्विविधं भवति तत्र सप्तदश मिलित्वा लिङ्गशरीरं तच्च सर्गादौ समष्टिरूपमेकमेव भवतीत्यर्थः। एकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि बुद्धिश्चेति सप्तदश। अहङ्कारस्य बुद्धावेवान्तर्भावः। चतुर्थसूत्रवक्ष्यमाणप्रमाणादेतान्येव सप्तदश लिङ्गं मन्तव्यं न तु सप्तदशमेकं चेत्यष्टादशतया व्याख्येयम्। उत्तरसूत्रेण व्यक्तिभेदस्योपपाद्यत्वात्र लिङ्गैकत्व एकशब्दस्य तात्पर्य्यावधारणाच्च।

कर्मात्मा पुरुषो योऽसौ बन्धमोक्षैः प्रयुज्यते।
स सप्तदशकेनापि राशिना युज्यते च सः॥

इति मोक्षधर्मादौ लिङ्गशरीरस्य सप्तदशत्वसिद्धेश्च सप्तदशावयवा अत्र सन्तीति सप्तदशको राशिरित्यर्थः। राशिशब्देन स्थूलदेहवल्लिङ्गदेहस्यावयवित्वं निराकृतम्। अवयविरूपेण द्रव्यान्तरकल्पनायां गौरवात्। स्थूलदेहस्य चावयवित्वमेकतादिप्रत्यक्षानुरोधेन कल्प्यत इति। अत्र च लिङ्गदेहे बुद्धिरेव प्रधानेत्याशयेन लिङ्गदेहस्य भोगः प्रागुक्तः। प्राणश्चान्तःकरणस्यैव वृत्तिभेदः। अतो लिङ्गदेहे प्राणपञ्चकस्याप्यन्तर्भाव इत्यस्य सप्तदशावयवकस्य शरीरत्वं स्वयं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वक्ष्यति लिङ्गशरीरनिमित्तक इति सनन्दनाचार्य्य इति सूत्रेण। अतो भोगायतनत्वमेव मुख्यं शरीरलक्षणम्। तदाश्रयतया त्वन्यत्र शरीरत्वमिति पश्चाद्व्यक्तीभविष्यति। चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरमिति तु न्यायेऽपि तस्यैव लक्षणं कृतमिति॥ ९॥

ननु लिङ्गं चेदेकं तर्हि कथं पुरुषभेदेन विलक्षणा भोगाः स्युस्तत्राह।

व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात्॥ १०॥

यद्यपि सर्गादौ हिरण्यगर्भोपाधिरूपमेकमेव लिङ्गं तथापि तस्य पश्चाद्व्यक्तिभेदो व्यक्तिरूपेणांशतो नानात्वमपि भवति। यथेदानीमेकस्य पितृलिङ्गदेहस्य नानात्वमंशतो भवति पुत्रकन्यादिलिङ्गदेहरूपेण। तत्र कारणमाह कर्मविशेषादिति। जीवान्तराणां भोगहेतुकर्मादेरित्यर्थः। अत्र विशेषवचनात् समष्टिसृष्टिर्जीवानां साधारणैः कर्मभिर्भवतीत्यायातम्। अयं च व्यक्तिभेदो मन्वादिष्वप्युक्तः। यथा मनौ समष्टिपुरुषस्य षडिन्द्रियोत्पत्त्यनन्तरम्।

तेषां त्ववयवान् सूक्ष्मान् षणामप्यमितौजसाम्।
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे॥

इति षणामिति समस्तलिङ्गशरीरोपलक्षणम्। आत्ममात्रासु चिदंशेषु संयोज्येत्यर्थः। तथा च तत्रैव वाक्यान्तरम्।

तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्य्यैस्तैः करणैः सह।
क्षेत्रज्ञाः समजायन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः॥

इति॥ १०॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नन्वेवं भोगायतनतया लिङ्गस्यैव शरीरत्वे स्थूले कथं शरीरव्यवहारस्तत्राह।

तदधिष्ठानाश्रये देहे तद्वादात् तद्वादः ॥११॥

तस्य लिङ्गस्य यदधिष्ठानमाश्रयो वक्ष्यमाणभूतपञ्चकं तस्याश्रये षाट्कौशिकदेहे तद्वादो देहवादस्तद्वादात् तस्याधिष्ठानशब्दोक्तस्य देहवादादित्यर्थः लिङ्गसम्बन्धादधिष्ठानस्य देहत्वमधिष्ठानाश्रयत्वाच्च स्थूलस्य देहत्वमिति पर्य्यवसितोऽर्थः। अधिष्ठानशरीरं च सूक्ष्मं पञ्चभूतात्मकं वक्ष्यते तथा च शरीरत्रयं सिद्धम्। यत् तु।

आतिवाहिक एकोऽस्ति देहोऽन्यस्त्वाधिभौतिकः।
सर्वासां भूतजातीनां ब्रह्मणस्त्वेक एव हि॥

इत्यादिशास्त्रेषु शरीरद्वयमेव श्रूयते तल्लिङ्गशरीराधिष्ठानशरीरयोरन्योऽन्यनियतत्वेन सूक्ष्मत्वेन चैकताभिप्रायादिति ॥ ११ ॥

ननु षाट्कौशिकातिरिक्ते लिङ्गशरीराधिष्ठानभूते शरीरान्तरे किं प्रामाणमित्याकाङ्क्षायामाह।

न स्वातन्त्र्यात् तदृते छायावच्चित्रवच्च ॥१२॥

तल्लिङ्गशरीरं तदृतेऽधिष्ठानं विना स्वातन्त्र्यान्न तिष्ठति। यथा छाया निराधारा न तिष्ठति यथा वा चित्रमित्यर्थः। तथा च स्थूलदेहं त्यक्त्वा लोकान्तरगमनाय लिङ्गदेहस्याधारभूतं शरीरान्तरं सिध्यतीति भावः। तस्य च स्वरूपं कारिकायामुक्तम्।

सूक्ष्मा मातापितृजाः सहप्रभूतैस्त्रिधा विशेषा स्युः।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्त्तन्ते॥

इति। अत्र तन्मात्रकार्य्यं मातापितृजशरीरापेक्षया

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूक्ष्मं यद्भूतपञ्चकं यावल्लिङ्गस्थायि प्रोक्तं तदेव लिङ्गाधिष्ठानं शरीरमिति लब्धं कारिकान्तरेण।

चित्रं यथाश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथा छाया।
तद्वद्विना विशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्॥

इति। विशेषैः स्थूलभूतैः सूक्ष्माख्यैः। स्थूलावान्तरभेदैरिति यावत्। अस्यां कारिकायां सूक्ष्माख्यानां स्थूलभूतानां लिङ्गशरीराङ्गत्वावगमेन।

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्य्यन्तम्।

इत्यादिपूर्वोदाहृतकारिकायां सूक्ष्मभूतपर्य्यन्तस्य लिङ्गत्वं नार्थः किन्तु महदादिरूपं यल्लिङ्गं तत् स्वाधारसूक्ष्मपर्य्यन्तं संसरति तेन सह संसरतीत्यर्थः। नन्वेवं लिङ्गघटकपदार्थाः कियन्त इति कथमवधार्य्यमिति चेत्।

वासनाभूतसूक्ष्मं च कर्मविद्ये तथैव च।
दशेन्द्रियं मनो बुद्धिरेतल्लिङ्गं विदुर्बुधाः॥

इति वाशिष्ठादिवाक्येभ्यः। अत्र लिङ्गशरीरप्रतिपादनेनैव पुर्य्यष्टकमपि व्याख्येयमित्याशयेन बुद्धिधर्माणामपि वासनाकर्मविद्यानां पृथगुपन्यासः। भूतसूक्ष्मं चात्र तन्मात्रा दशेन्द्रियाणि च ज्ञानकर्मेन्द्रियभेदेन पुरद्वयमित्याशयः। यत् तु मायावादिनो लिङ्गशरीरस्य तन्मात्रस्थाने प्राणादिपञ्चकं प्रक्षिपन्ति पुर्य्यष्टकं चान्यथा कल्पयन्ति तदप्रामाणिकमिति ॥१२॥

ननु मूर्त्तद्रव्यतया वायुादेरिव लिङ्गस्याकाशमेवास्त्वङ्गेनाधारोऽस्तु व्यर्थमन्यत्र सङ्कल्पनमिति तत्राह।

मूर्त्तत्वेऽपि न सङ्घातयोगात् तरणिवत् ॥१३॥

मूर्त्तत्वेऽपि न स्वातन्त्र्यादसङ्गतयावस्थानं प्रकाशरूप-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वेन सूर्य्यस्येव सङ्घातमङ्गानुमानादित्यर्थः। सूर्य्यादीनि सर्वाणि तेजांसि पार्थिवद्रव्यसङ्गेनैवावस्थितानि दृश्यन्ते लिङ्गं च सत्त्वप्रकाशमयमतो भूतसङ्गतमिति ॥ १३ ॥

लिङ्गस्य परिमाणमवधारयति।

अणुपरिमाणं तत् कृतिश्रुतेः ॥ १४ ॥

तल्लिङ्गमणुपरिमाणं परिच्छिन्नं न त्वत्यन्तमेवाणु सावयवस्योक्तत्वात्। कुतः कृतिश्रुतेः क्रियाश्रुतेः।

विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च।

इत्यादिश्रुतेर्विज्ञानाख्यबुद्धिप्रधानतया विज्ञानस्य लिङ्गस्याखिलकर्मश्रवणादित्यर्थः। विभुत्वे सति क्रिया न सम्भवति। तद्गतिश्रुतेरिति पाठस्तु समीचीनः। लिङ्गशरीरस्य च गतिश्रुतिस्तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनुक्रामति प्राणमनुक्रामन्तं सविज्ञानो भवति सविज्ञानमेवानुक्रामतीति सविज्ञानो बुद्धिसहित एव जायते सविज्ञानं यथा स्यात् तथा संसरति चेत्यर्थः ॥ १४ ॥

परिच्छिन्नत्वे युक्त्यन्तरमाह।

तदन्नमयत्वश्रुतेश्च ॥ १५ ॥

तस्य लिङ्गस्यैकदेशतोऽन्नमयत्वश्रुतेर्न विभुत्वं सम्भवतीति। विभुत्वे सति नित्यतापत्तेरित्यर्थः। सा च श्रुतिरन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागित्यादिः। यद्यपि मनआदीनि न भौतिकानि तथाप्यन्नसंसृष्टसजातीयांशपूरणादन्नमयत्वादिव्यवहारो बोध्यः ॥ १५ ॥

अचेतनानां लिङ्गानां किमर्थं संसृतिर्देहाद्देहान्तरसञ्चार इत्याशङ्कायामाह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुरुषार्थं संसृतिर्लिङ्गानां सूपकारवद्राज्ञः ॥ १६ ॥

यथा राज्ञः सूपकाराणां पाकशालासु सञ्चारो राजार्थं तथा लिङ्गशरीराणां संसृतिः पुरुषार्थमित्यर्थः ॥ १६ ॥

लिङ्गशरीरमशेषविशेषतो विचारितमिदानीं स्थूलशरीरमपि तथा विचारयति ।

पाञ्चभौतिको देहः ॥ १७ ॥

पञ्चानां भूतानां मिलितानां परिणामो देह इत्यर्थः ॥ १७ ॥

मतान्तरमाह ।

चातुर्भौतिकमित्येके ॥ १८ ॥

आकाशस्यानारम्भकत्वमभिप्रेत्येदम् ॥ १८ ॥

ऐकभौतिकमित्यपरे ॥ १९ ॥

पार्थिवमेव शरीरमन्यानि च भूतान्युपष्टम्भकमात्राणीति भावः । अथवैकभौतिकमेकैकभौतिकमित्यर्थः । मनुष्यादिशरीरे पार्थिवांशाधिक्येन पार्थिवता सूर्य्यादिलोकेषु च तेजआद्याधिक्येन तैजसादिता शरीराणां सुवर्णादीनामिवेतीममेव पक्षं पञ्चमाध्यायेऽपि सिद्धान्तयिष्यति ॥ १९ ॥

देहस्य भौतिकत्वेन यत् सिध्यति तदाह ।

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ॥२०॥

भूतेषु पृथक् कृतेषु चैतन्यादर्शनाद्भौतिकस्य देहस्य न स्वाभाविकं चैतन्यं किन्त्वौपाधिकमित्यर्थः ॥ २० ॥

बाधकान्तरमाह ।

प्रपञ्चमरणाद्यभावश्च ॥ २१ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रपञ्चस्य सर्वस्यैव मरणसुषुप्त्याद्यभावश्च देहस्य स्वाभाविकचैतन्ये सति स्यादित्यर्थः। मरणसुषुप्त्यादिकं हि देहस्याचेतनता सा च स्वाभाविकचैतन्ये सति नोपपद्यते स्वाभावस्य यावद्‌द्रव्यभावित्वादिति ॥ २१ ॥

प्रत्येकादृष्टेरिति यदुक्तं तत्राशङ्क्य परिहरति।

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टे सांहत्ये तदुद्भवः ॥ २२ ॥

ननु यथा मादकता शक्तिः प्रत्येकद्रव्यावृत्तिरपि मिलितद्रव्ये वर्त्तत एवं चैतन्यमपि स्यादिति चेन्न प्रत्येकपरिदृष्टे सति सांहत्ये तदुद्भवः सम्भवेत्। प्रकृते तु प्रत्येकपरिदृष्टत्वं नास्ति। अतो दृष्टान्ते प्रत्येकं शास्त्रादिभिः सूक्ष्मतया मादकत्वे सिद्धे संहतभावकाले मादकत्वाविर्भावमात्रं सिध्यति। दार्ष्टान्तिके तु प्रत्येकभूतेषु सूक्ष्मतया न केनापि प्रमाणेन चैतन्यं सिद्धमित्यर्थः। ननु समुच्चिते चैतन्यदर्शनेन प्रत्येकभूते सूक्ष्मचैतन्यशक्तिरनुमेयेति चेन्न। अनेकभूतेष्वनेकचैतन्यशक्तिकल्पनायां गौरवेण लाघवादेकस्यैव नित्यचित्स्वरूपस्य कल्पनौचित्यात्। ननु यथावयवेऽवर्त्तमानमपि परिमाणजलाहरणादिकार्य्यं घटादौ दृश्यत एवमेव शरीरे चैतन्यं स्यादिति मैवम्। भूतगतविशेषगुणानां सजातीयकारणगुणजन्यतया कारणे चैतन्यं विना देहे चैतन्यासम्भवादिति ॥ २२ ॥

पुरुषार्थं संहतिर्लिङ्गानामित्युक्तं तत्र लिङ्गानां स्थूलदेहसञ्चाराख्यजन्मनो यो यः पुरुषार्थो येन येन व्यापारेण सिध्यति तदाह सूत्राभ्याम्।

ज्ञानान्मुक्तिः ॥ २३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लिङ्गसंसृतितो ज्ञानद्वारा विवेकसाक्षात्कारस्तस्मान्मुक्ति-रूपः पुरुषार्थो भवतीत्यर्थः। ज्ञानादिकं च प्रत्ययसर्गतया कारिकायां परिभाषितम्।

एष प्रत्ययसर्गो विपर्य्ययाशक्तितुष्टिसिद्धाख्यः।

इति। विपर्य्ययादयो व्याख्यास्यन्तेऽत्र च स एव बुद्धि-सर्गः प्रयोजनयोगेन सूत्रैरुच्यत इति विशेषः ॥ २३ ॥

बन्धो विपर्य्ययात् ॥ २४ ॥

विपर्य्ययात् सुखदुःखात्मको बन्धरूपः पुरुषार्थो लिङ्ग-संसृतितो भवतीत्यर्थः ॥ २४ ॥

ज्ञानविपर्य्ययाभ्यां मुक्तिबन्धावुक्तौ तत्रादौ ज्ञानान्मुक्तिं विचारयति।

नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ॥२५॥

यद्यपि विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सहेत्यादि श्रूयते तथाप्यविवेकनिवृत्तौ लोकसिद्धतया ज्ञानस्य नियतकारणत्वा-दविद्याख्यकर्मणा सह ज्ञानस्य मोक्षजनने समुच्चयो विकल्पो वा नास्तीत्यर्थः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्व-मानशुरित्यादिश्रुतिभ्योऽपि कर्मणो न साक्षान्मोक्षहेतुत्वं समु-च्चयानुष्ठानं श्रुतिष्वङ्गाङ्गिभावादिभिरभ्युपपद्यत इति ॥ २५ ॥

समुच्चयविकल्पयोरभावे दृष्टान्तमाह।

स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ॥ २६ ॥

यथा मायिकामायिकाभ्यां स्वप्नजागरपदार्थाभ्यामन्योऽन्य-सहकारिभावेनैकः पुरुषार्थो न सम्भवति। एवमुभयोर्मायि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कामायिकयोरनुष्ठितयोः कर्मज्ञानयोः पुरुषस्य मुक्तिरपि न युक्तेत्यर्थः । मायिकत्वं चासत्यत्वम् । अस्थिरत्वमिति यावत् । तच्च स्वाप्ने ऽर्थेऽस्ति जाग्रत्पदार्थस्तु स्वाप्नापेक्षया सत्य एव कूटस्थपूरुषापेक्षयैवास्थिरत्वेनासत्यत्वादतः स्वप्नविलक्षणज्ञानादिकार्य्यकरः । एवं कर्माप्यस्थिरत्वात् प्रकृतिकार्य्यत्वाच्च मायिकम् । आत्मा तु स्थिरत्वादकार्य्यत्वाच्चामायिकः । अतस्तयोरनुष्ठितकर्मज्ञानयोः समानफलदातृत्वमयौक्तिकमिति विलक्षणमेव कार्य्यं युक्तम् । २६ ॥

नन्वेवमप्यात्मोपासनाख्यज्ञानेन सह तत्त्वज्ञानस्य समुच्चयविकल्पौ स्यातामुपास्यस्यामायिकत्वादिति तत्राह ।

इतरस्यापि नात्यन्तिकम् ॥ २७ ॥

इतरस्याप्युपास्यस्य नात्यन्तिकममायिकत्वमुपास्यात्मन्यध्यस्तपदार्थानामपि प्रवेशादित्यर्थः ॥ २७ ॥

उपासनस्य मायिकत्वं यस्मिन्नंशे तदाह ।

सङ्कल्पितेऽप्येवम् ॥ २८ ॥

मनःसङ्कल्पिते ध्येयांश एवमपि मायिकत्वमपीत्यर्थः । सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादिश्रुत्युक्ते ह्युपास्ये प्रपञ्चांशस्य मायिकत्वमेवेति ॥ २८ ॥

तर्ह्युपासनस्य किं फलमित्याकाङ्क्षायामाह ।

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ॥२९॥

भावनाख्योपासनानिष्पत्त्या शुद्धस्य निष्पापस्य पुरुषस्य प्रकृतेरिव सर्वमैश्वर्य्यं भवतीत्यर्थः । प्रकृतिर्यथा सृष्टिस्थितिसंहारं करोति । एवमुपासकस्य बुद्धिसत्त्वमपि प्रकृतिप्रेरणेन सृष्ट्यादिकर्त्तृ भवतीति ॥ २९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्ञानमेव मोक्षसाधनमिति स्थापितम्। इदानीं ज्ञानसाधनान्याह।

रागोपहतिर्ध्यानम् ॥ ३० ॥

ज्ञानप्रतिबन्धको यो विषयोपरागश्चित्तस्य तदुपघातहेतुर्ध्यानमित्यर्थः। उपचारेण कार्य्यकारणयोरभेदनिर्देशो रागक्षयस्य ध्यानत्वासम्भवात्। अत्र ध्यानशब्देन धारणाध्यानसमाधयो योगोक्तास्त्रय एव ग्राह्याः पातञ्जले योगाङ्गानामष्टानामेव विवेकसाक्षात्कारहेतुत्वश्रवणादिति। एतेषां चावान्तरविशेषास्तत्रैव द्रष्टव्याः। इतराणि च पञ्चाङ्गानि स्वयं वक्ष्यति ॥ ३० ॥

ध्याननिष्पत्त्यैव ज्ञानोत्पत्तिर्नारम्भमात्रेणेत्याशयेन ध्याननिष्पत्तेर्लक्षणमाह।

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ॥ ३१ ॥

ध्येयातिरिक्तवृत्तिनिरोधरूपेण सम्प्रज्ञातयोगेन तत्सिद्धिर्ध्यानस्य निष्पत्तिर्ज्ञानाख्यफलोपधानरूपा भवतीत्यर्थः। अतस्तावत्पर्य्यन्तमेव ध्यानं कर्त्तव्यमित्याशयः। इतरवृत्तिनिरोधे सत्येव विषयान्तरसञ्चाराख्यप्रतिबन्धापगमाद्ध्येयसाक्षात्कारो भवतीति कृत्वा योगोऽपि ज्ञाने कारणं योगाङ्गध्यानादिवदित्यपि मन्तव्यम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहातीत्यादिश्रुतिस्मृत्योस्तदवगमादिति ॥ ३१ ॥

ध्यानस्यापि साधनान्याह।

धारणासनस्वकर्म्मणा तत्सिद्धिः ॥ ३२ ॥

वक्ष्यमाणेन धारणादित्रयेण ध्यानं भवतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

धारणादित्रयं क्रमात् सूत्रत्रयेण लक्षयति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ॥ ३३ ॥

प्राणस्येति प्रसिद्धा लभ्यते। प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्येति योगसूत्रे भाष्यकारेण प्राणायामस्य व्याख्यातत्वात्। छर्दिश्च वमनम्। विधारणत्याग इति यावत्। तेन पूरणरेचनयोर्लाभः। विधारणं च कुम्भकम्। तथा च प्राणस्य पूरकरेचककुम्भकैर्योनिरोधो वशीकरणं साधारण्येत्यर्थः। आसनकर्मणोः स्वशब्देन पश्चाल्लक्षणीयतया सूत्रे परिशेषत एव धारणाया लभ्यत्वलाभाद्धारणापदं नोपात्तम्। चित्तस्य धारणा तु समाधिवद्ध्यानशब्देनैव गृहीता इति ॥ ३३ ॥

क्रमप्राप्तमासनं लक्षयति।

स्थिरसुखमासनम् ॥ ३४ ॥

यत् स्थिरं सत् सुखसाधनं भवति स्वस्तिकादि तदासनमित्यर्थः ॥ ३४ ॥

स्वकर्म लक्षयति।

स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ॥ ३५ ॥

सुगमम्। तत्र कर्मशब्देन यमनियमयोर्ग्रहणं जितेन्द्रियत्वरूपः प्रत्याहारोऽपि सर्वाश्रमसाधारणतया कर्ममध्ये प्रवेशनीयः। तथा च पातञ्जलसूत्रे ज्ञानसाधनतया प्रोक्तान्यष्टौ योगाङ्गान्यत्रापि लभ्यानि। यथा तत्सूत्रम्। यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानीति। तेषां च स्वरूपं तत्रैव द्रष्टव्यम् ॥ ३५ ॥

मुख्याधिकारिणो नास्ति बहिरङ्गस्य यमादिपञ्चकस्यापेक्षा केवलाद्धारणाध्यानादित्रयरूपात् संयमादेव ज्ञानं योगश्च भवतीति पातञ्जलसिद्धान्तः। जडभरतादिषु च तथा दृश्यतेऽपि। अतस्तदनुसारेणाचार्योऽप्याह।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैराग्यादभ्यासाच्च ॥ ३६ ॥

केवलाभ्यासात् ध्यानरूपादेव वैराग्यसहिताज्ज्ञानं तत्साधनयोगश्च भवत्युत्तमाधिकारिणामित्यर्थः। तदुक्तं गारुडेऽपि।

आसनस्थानविधयो न योगस्य प्रसाधकाः।
विलम्बजननाः सर्वे विस्तराः परिकीर्त्तिताः॥
शिशुपालः सिद्धिमाप स्मरणाभ्यासगौरवात्।

इति। अथवा वैराग्यध्यानाभ्यासावत्र ध्यानस्यैव हेतुतयोक्तौ चकारश्च धारणासमुच्चयायेति। तदेवं ज्ञानान्मोचो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

अतः परं बन्धो विपर्य्ययादित्युक्तो बन्धकारणं विपर्य्ययो व्याख्यास्यते तत्रादौ विपर्य्ययस्य स्वरूपमाह।

विपर्य्ययभेदाः पञ्च ॥ ३७ ॥

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च योगोक्ता बन्धहेतुविपर्य्ययस्यावान्तरभेदा इत्यर्थः। तेन शुक्त्यादिज्ञानरूपाणां विपर्य्ययाणामसंग्रहेऽपि न क्षतिः। तत्राविद्यानित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरिति योगे प्रोक्ता। एवमस्मिताप्यात्मानात्मनोरेकताप्रत्ययः। शरीराद्यतिरिक्त आत्मा नास्तीत्येवंरूपः। अविद्या तु नैवंरूपा। आत्मनः शरीराशरीरोभयरूपत्वेऽपि शरीरेऽहम्बुद्ध्युपपत्तेः। रागद्वेषौ तु प्रसिद्धावेव। अभिनिवेशश्च मरणादित्रास इति। रागादीनां विपर्य्ययकार्य्यतया विपर्य्ययत्वम् ॥ ३७ ॥

विपर्य्ययस्य स्वरूपमुक्त्वा तत्कारणस्याशक्तेरपि स्वरूपमाह।

अशक्तिरष्टाविंशतिधा तु ॥ ३८ ॥

सुगमम्। एतदपि कारिकया व्याख्यातम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात् तुष्टिसिद्धीनाम्॥ इति।
वाधिर्य्यं कुष्ठितान्धत्वं जडताजिघ्रता तथा।
मूकता कौण्यपङ्गुत्वे क्लैव्योदावर्त्तमुग्धताः॥

इत्येकादशेन्द्रियाणामेकादशाशक्तयः स्वतश्च बुद्धेः सप्तदशाशक्तयः। यथा वक्ष्यमाणानां नवतुष्टीनां विघाता नव तथा वक्ष्यमाणानामष्टसिद्धीनां च विघाता अष्टाविति मिलित्वा चेमाः स्वतः परतश्चाष्टाविंशतिर्बुद्धेरशक्तय इत्यर्थः। तुशब्द एषां विशेषप्रसिद्धिख्यापनार्थः॥ ३८॥

ययोर्विघाते बुद्धेरशक्ती ते तुष्टिसिद्धी सूत्रद्वयेनाह।

तुष्टिर्नवधा॥ ३९॥

स्वयमेव नवधात्वं वक्ष्यति॥ ३९॥

सिद्धिरष्टधा॥ ४०॥

एतदपि स्वयं वक्ष्यति॥ ४०॥

उक्तानां विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्धीनां विशेषजिज्ञासायां क्रमेण सूत्रचतुष्टयं प्रवर्त्तते।

अवान्तरभेदाः पूर्ववत्॥ ४१॥

विपर्ययस्यावान्तरभेदा ये सामान्यतः पञ्चोक्तास्ते पूर्ववत् पूर्वाचार्य्यैर्यथोक्तास्तथैव विशिष्यावधार्य्याः। विस्तरभयान्नेहोच्यन्त इत्यर्थः। ते चाविद्यादयो मयापि सामान्यत एव व्याख्याताः पञ्चेति। विशेषतस्तु द्वाषष्टिभेदास्तदुक्तं कारिकायाम्।

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः॥

इति। अस्यायमर्थः। अष्टस्वव्यक्तमहदहङ्कारपञ्चतन्मात्रेषु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकृतिष्वनात्मबुद्धिरविद्या तमोऽष्टधा भवति। कार्य्यकारणाभेदेन केवलविकृतिष्वात्मबुद्धेरप्यत्रान्तर्भावः। एवमविद्याया विषयभेदेनाष्टविधत्वात् तत्समानविषयकस्यास्मिताख्यमोहस्याष्टविधत्वम्। दिव्यादिव्यभेदेन शब्दादीनां विषयाणां दशत्वात् तद्विषयको रागाख्यो महामोहो दशविधः। अविद्यास्मितयोरष्टौ ये विषया ये रागस्य दश विषयास्तद्विघातकेष्वष्टादशस्वष्टादशधा तामिस्राख्यो द्वेषः। एवं तेषामष्टादशानां विनाशादिदर्शनादष्टादशधान्धतामिस्राख्योऽभिनिवेशो भयमिति। एतेषां च तम आदिसञ्ज्ञा तद्धेतुत्वादिति॥ ४१॥

एवमितरस्याः॥ ४२॥

एवं पूर्ववदेवेतरस्या अशक्तेरप्यवान्तरभेदा अष्टाविंशतिविशेषतोऽवगन्तव्या इत्यर्थः। अशक्तिरष्टाविंशतिधेत्येतस्मिन्नेव सूत्रेऽष्टाविंशतिधात्वं मया व्याख्यातम्॥ ४२॥

आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः॥४३॥

इदं सूत्रं कारिकया व्याख्यातम्।

आध्यात्मिकाश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः।

बाह्या विषयोपरमात् पञ्च नव तुष्टयोऽभिहिताः॥

इति। अस्यायमर्थः। आत्मानं तुष्टिमतः सङ्घातमधिकृत्य वर्त्तन्त इत्याध्यात्मिकास्तुष्टयश्चतस्रः। तत्र प्रकृत्याख्या तुष्टिर्यथा। साक्षात्कारपर्य्यन्तः परिणामः सर्वोऽपि प्रकृतेरेव तं च प्रकृतिरेव करोत्यहं तु कूटस्थः पूर्ण इत्यात्मभावनात् परितोषः। इयं तुष्टिरम्भ इत्युच्यते। ततश्च प्रव्रज्योपादानेन या तुष्टिः सोपादानाख्या सलिलमित्युच्यते। ततश्च प्रव्रज्यायां बहुकालं समाध्यनुष्ठानेन या तुष्टिः सा कालाख्या तुष्टिरोघ इत्युच्यते। ततश्च प्रज्ञानपरमकाष्ठारूपे धर्ममेघसमाधौ सति या

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तुष्टिः सा भाग्याख्या हृष्टिरित्युच्यत इति चतस्र आध्यात्मिकाः। बाह्याः पञ्च तुष्टयो बाह्यविषयेषु पञ्चसु शब्दादिष्वर्जनरक्षणक्षयभोगहिंसादिदोषनिमित्तकोपरमाज्जायन्ते। ताश्च तुष्टयो यथाक्रमं पारं सुपारं पारपारमनुत्तमाम्भ उत्तमाम्भ इति परिभाषिता इति। कश्चित् त्विमां कारिकामन्यथा व्याख्यातवान्। तद्यथा विवेकसाक्षात्कारोऽपि प्रकृतिपरिणाम एवेत्यलं ध्यानाभ्यासेनेत्येवं दृष्ट्वा या ध्यानादिनिवृत्तौ तुष्टिः सा प्रकृत्याख्या। प्रव्रज्योपादानेनैव मोक्षो भविष्यति किं ध्यानादिनेति या तुष्टिः सोपादानाख्या। कृतसंन्यासस्यापि कालेनैव मोक्षो भविष्यत्यलमुद्वेगेनेति या तुष्टिः सा कालाख्या। भाग्यादेव मोक्षो भविष्यति न मोक्षशास्त्रोक्तसाधनैरेवं कृतर्के या तुष्टिः सा भाग्याख्येत्यादिरर्थ इति तन्न। तद्व्याख्याततुष्टीनामभावस्य ज्ञानाद्यनुकूलत्वेनाशक्तिपरिभाषानौचित्यादिति ॥ ४३ ॥

ऊहादिभिः सिद्धिः ॥ ४४ ॥

ऊहादिभेदैः सिद्धिरष्टधा भवतीत्यर्थः। इदमपि सूत्रं कारिकया व्याख्यातम्।

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः॥

इति। अस्यायमर्थः। अत्राध्यात्मिकादिदुःखत्रयप्रतियोगिकत्वात् त्रयो दुःखविघाता मुख्यसिद्धयः। इतरास्तु तत्साधनत्वाद्गौण्यः सिद्धयः। तत्रोहो यथा। उपदेशादिकं विनैव प्राग्भवीयाभ्यासवशात् तत्त्वस्य स्वयमूहनमिति। शब्दस्तु यथा। अन्यदीयपाठमाकर्ण्य स्वयं वा शास्त्रमाकलय्य यज्ज्ञानं जायते तदिति। अध्ययनं च यथा। शिष्याचार्यभावेन

For Private And Personal Use Only

शास्त्राध्ययनाज्ज्ञानमिति। सुहृत्प्राप्तिर्यथा। स्वयमुपदेशार्थं गृहागतात् परमकारुणिकाज्ज्ञानलाभ इति। दानं च यथा। धनादिदानेन परितोषिताज्ज्ञानलाभ इति। एषु च पूर्वस्त्रिविध ऊहशब्दाध्ययनरूपो मुख्यसिद्धेरङ्कुश आकर्षकः। सुहृत्प्राप्तिदानयोरूहादित्रयापेक्षया मन्दसाधनत्वप्रतिपादनायेदमुक्तम्। कश्चित् त्वेतासामष्टसिद्धीनामङ्कुशो निवारकः पूर्वस्त्रिविधो विपर्ययाशक्तितुष्टिरूपो भवति बन्धकत्वादिति व्याचष्टे तन्न। तुष्टभावस्याशक्तितया बाधिर्य्यादिवत् सिद्धिविरोधितालाभेन तुष्टतुष्ट्योः सिद्धिविरोधित्वासम्भवात्॥ ४४॥

ननूहादिभिरेव कथं सिद्धिरुच्यते मन्त्रतपःसमाध्यादिभिरप्यणिमाद्यष्टसिद्धेः सर्वशास्त्रसिद्धत्वादिति तत्राह।

नेतरादितरहानेन विना॥ ४५॥

इतरादूहनादिपञ्चकभिन्नात् तपआदेस्तात्त्विकी न सिद्धिः कुत इतरहानेन विना यतः सा सिद्धिरितरस्य विपर्ययस्य हानं विनैव भवत्यतः संसारापरिपन्थित्वात् सा सिद्धयाभास एव न तु तात्त्विकी सिद्धिरित्यर्थः। तथा चोक्तं योगसूत्रेण। ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धय इति। तदेवं ज्ञानाश्रुतिरित्यारभ्य विस्तरतो बुद्धिगुणरूपः प्रत्ययसर्गः सकार्य्यबन्धो मोक्षरूपपुरुषार्थेन सहोक्तः। एतौ च बुद्धितद्गुणरूपौ सर्गौ प्रवाहरूपेणान्योऽन्यं हेतू बीजाङ्कुरवत्। तथा च कारिका।

न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिर्वृत्तिः।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद्द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः॥

इति। भावो वासनारूपा बुद्धिर्ज्ञानादिगुणा लिङ्गं मह-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तत्त्वं बुद्धिरिति। समष्टिसर्गः प्रत्ययसर्गश्च समाप्तः॥ ४५॥

साम्प्रतं व्यक्तिभेदः कर्मविशेषादिति सङ्क्षेपादुक्ता व्यष्टिसृष्टिर्विस्तरतः प्रतिपाद्यते।

दैवादिप्रभेदा॥ ४६॥

दैवादिः प्रभेदोऽवान्तरभेदो यस्याः सा तथा सृष्टिरिति शेषः। तदेतत् कारिकया व्याख्यातम्।

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्य्यग्योनश्च पञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥

इति। ब्राह्मप्राजापत्यैन्द्रपैत्रगान्धर्वयाक्षराक्षसपैशाचा इत्यष्टविधो दैवः सर्गः। पशुमृगपक्षिसरीसृपस्थावरा इति तैर्य्यग्योनः पञ्चविधः। मानुष्यसर्गश्चैकप्रकार इति। भौतिको भूतानां व्यष्टिप्राणिनां विराजः सकाशात् सर्ग इत्यर्थः॥४६॥

अवान्तरसृष्टेरप्युक्तायाः पुरुषार्थत्वमाह।

आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ॥ ४७॥

चतुर्मुखमारभ्य स्थावरान्ता व्यष्टिसृष्टिरपि विराट्सृष्टिवदेव पुरुषार्था भवति तत्तत्पुरुषाणां विवेकख्यातिपर्य्यन्तमित्यर्थः॥ ४७॥

व्यष्टिसृष्टावपि विभागमाह सूत्रत्रयेण।

ऊर्द्ध्वं सत्त्वविशाला॥ ४८॥

ऊर्द्ध्वं भूर्लोकादुपरि सृष्टिः सत्त्वाधिका भवतीत्यर्थः॥४८॥

तमोविशाला मूलतः॥ ४९॥

मूलतो भूर्लोकादध इत्यर्थः॥ ४९॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मध्ये रजोविशाला ॥ ५० ॥

मध्ये भूर्लोक इत्यर्थः ॥ ५० ॥

नन्वेकस्या एव प्रकृतेः केन निमित्तेन सत्त्वादिविशालतया विचित्राः सृष्टय इत्याकाङ्क्षायामाह।

कर्मवैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत् ॥५१॥

विचित्रकर्मनिमित्तादेव यथोक्ता प्रधानस्य चेष्टा कार्य्यवैचित्र्यरूपा भवति। वैचित्र्ये दृष्टान्तो गर्भदासवदिति। यथा गर्भावस्थामारभ्य यो दासस्तस्य भृत्यवासनापाटवेन नानाप्रकारा चेष्टा परिचर्य्या स्वाम्यर्थे भवति तद्वदित्यर्थः ॥ ५१ ॥

ननु चेदूर्द्ध्वं सत्त्वविशाला सृष्टिरस्ति तर्हि तत एव कृतार्थत्वात् पुरुषस्य किं मोक्षेणेति तत्राह।

आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः ॥५२॥

तत्राप्यूर्द्ध्वगतावपि सत्यामावृत्तिरस्त्यत उत्तरोत्तरयोनियोगादधोऽधो योनिजन्मनः सोऽपि लोको हेय इत्यर्थः ॥ ५२ ॥

किञ्च।

समानं जरामरणादिजं दुःखम् ॥ ५३ ॥

ऊर्द्ध्वाधो गतानां ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषामेव जरामरणादिजं दुःखं साधारणमतोऽपि हेय इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

किं बहुना कारणे लयादपि न कृतकृत्यतेत्याह।

न कारणलयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात् ॥ ५४ ॥

विवेकज्ञानाभावे यदा महदादिषु वैराग्यं प्रकृत्युपासनया भवति तदा प्रकृतौ लयो भवति वैराग्यात् प्रकृतिलय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति वचनात्। तस्मात् कारणलयादपि न कृतकृत्यतास्ति मग्नवदुत्थानात्। यथा जले मग्नः पुरुषः पुनरुत्तिष्ठति एवमेव प्रकृतिलीनाः पुरुषाः ईश्वरभावेन पुनराविर्भवन्ति। संस्कारादेरक्षयेण पुनरागाभिव्यक्तौ विवेकख्यातिं विना दोषदाहानुपपत्तेरित्यर्थः॥ ५४॥

ननु कारणं केनापि न कार्य्यतेऽतः स्वतन्त्रा कथं स्वोपासकस्य दुःखनिदानमुत्थानं पुनः करोति तत्राह।

अकार्य्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्॥५५॥

प्रकृतेरकार्य्यत्वेऽप्यप्रेर्य्यत्वेऽप्यन्येच्छानधीनत्वेऽपि तद्योगः पुनरुत्थानौचित्यं तल्लीनस्य कुतः पारवश्यात् पुरुषार्थतन्त्रत्वात्। विवेकख्यातिरूपपुरुषार्थवशेन प्रकृत्या पुनरुत्थाप्यते स्वलीन इत्यर्थः। पुरुषार्थादयश्च प्रकृतेर्न प्रेरकाः किन्तु प्रवृत्तिस्वभावायाः प्रवृत्तौ निमित्तानीति न स्वातन्त्र्यक्षतिः। तथा च योगसूत्रम्। निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवदिति। वरणभेदः प्रतिबन्धनिवृत्तिः॥५५॥

प्रकृतिलयात् पुरुषस्योत्थाने प्रमाणमप्याह।

स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता॥ ५६॥

स हि पूर्वसर्गे कारणलीनः सर्गान्तरे सर्ववित् सर्वकर्त्तेश्वर आदिपुरुषो भवति प्रकृतिलये तस्यैव प्रकृतिपदप्राप्त्यौचित्यात्। तदेव सक्तःसह कर्मणेति लिङ्गं मनो यत्र निषिक्तमस्येत्यादिश्रुतेरित्यर्थः॥ ५६॥

नन्वेवमीश्वरप्रतिषेधानुपपत्तिस्तत्राह।

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा॥ ५७॥

प्रकृतिलीनस्य जन्येश्वरस्य सिद्धिर्यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप इत्यादिश्रुतिभ्यः सर्वसम्मतैव। नित्येश्वरस्यैव

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विवादास्पदत्वादित्यर्थः। सूत्रद्वयमिदं व्याख्याय पारवश्यमपि प्रतिपादयति स हीति सूत्रेण। स हि परः पुरुषसामान्यं सर्वज्ञानशक्तिमत् सर्वकर्तृताशक्तिमच्च। अयस्कान्तवत् सन्निधिमात्रेण प्रेरकत्वादित्यर्थः। तदा चास्मामाप्तार्थपुरुषसान्निध्यात् तदर्थमनिच्छानधीनाया अपि प्रकृतेः प्रवृत्तिरावश्यकीति। नन्वेवमीश्वरप्रतिषेधविरोधस्तत्राह। ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा। सान्निध्यमात्रेणेश्वरस्य सिद्धिस्तु श्रुतिस्मृतिषु सर्वसम्मतेत्यर्थः।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विभुरश्नुते॥
सृजते च गुणान् सर्वान् क्षेत्रज्ञस्त्वनुपश्यति।
गुणान् विक्रियते सर्वानुदासीनवदीश्वरः॥

इत्यादिश्रुतिस्मृतयश्चैतादृशेश्वरे प्रमाणमिति॥ ५७॥

द्वितीयाध्यायादिमारभ्यैतावत्पर्यन्तं सूत्रव्यूहैः प्रधानसृष्टिः समापिता। इतः परं मोक्षोपपत्त्यर्थं प्रधानसृष्टेर्ज्ञानिपुरुषं प्रत्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तलयाख्या वक्तव्या तदुपपत्त्यर्थमादौ प्रधानसृष्टेः प्रयोजनं द्वितीयाध्यायस्यादिसूत्रे दिङ्मात्रेणोक्तं विस्तरतः प्रतिपादयति।

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्॥ ५८॥

प्रधानस्य स्वत एव सृष्टिर्यद्यपि तथापि परार्थमन्यस्य भोगापवर्गार्थम्। यथोष्ट्रस्य कुङ्कुमवहनं स्वाम्यर्थं कुतोऽभोक्तृत्वादचेतनत्वेन भोगापवर्गासम्भवादित्यर्थः। ननु विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वेत्यनेन स्वार्थापि सृष्टिरुक्तेति चेत् सत्यम्। तथापि पुरुषार्थतां विना स्वार्थतापि न सिध्यति। स्वार्थो हि प्रधानस्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृतभोगापवर्गात् पुरुषादात्मविमोचनमिति। ननु भृत्यतुल्या चेत् प्रकृतिस्तर्हि कथं स्वामिनो दुःखार्थमपि प्रवर्त्तत इति चेन्न। सुखार्थप्रवृत्त्यैव नान्तरीयकदुःखसम्भवाद् दुष्टभृत्यतुल्यत्वाद्वेति ॥ ५८ ॥

ननु प्रधानस्याचेतनस्य स्वतः स्रष्टृत्वमेव नोपपद्यते रथादेः परप्रयत्नेनैव प्रवृत्तिदर्शनादिति तत्राह।

अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ॥५९॥

यथा क्षीरं पुरुषप्रयत्ननिरपेक्षेण स्वयमेव दधिरूपेण परिणमते। एवमचेतनत्वेऽपि परप्रयत्नं विनापि महदादिरूपपरिणामः प्रधानस्य भवतीत्यर्थः। धेनुवद्वत्सायेत्यनेन सूत्रेणास्य न पौनरुक्त्यम्। तत्र। करणप्रवृत्तेरेव विचारितत्वात्। धेनूनां चेतनत्वाच्चेति ॥ ५९ ॥

दृष्टान्तान्तरप्रदर्शनपूर्वकमुक्तार्थे हेतुमाह।

कर्मवद्दृष्टेर्वा कालादेः ॥६०॥

कालादेः कर्मवद्वा स्वतः प्रधानस्य चेष्टितं सिध्यति दृष्टत्वात्। यथैको गच्छति ऋतुरितरश्च प्रवर्त्तत इत्यादिरूपं कालादिकर्म स्वत एव भवत्येवं प्रधानस्यापि चेष्टा स्यात् कल्पनाया दृष्टानुसारित्वादित्यर्थः ॥ ६० ॥

ननु तथापि ममेदं भोगादिसाधनमिति प्रतिसन्धानाभावान्मूढायाः प्रकृतेः कदाचित् प्रवृत्तिरपि न स्याद्विपरीता च प्रवृत्तिः स्यात् तत्राह।

स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानाद्भृत्यवत् ॥६१॥

यथा प्रकृष्टभृत्यस्य स्वभावात् संस्कारादेव प्रतिनियतावश्यकी च स्वामिसेवा प्रवर्त्तते न तु स्वभोगाभिप्रायेण तथैव प्रकृतेश्चेष्टितं संस्कारादेवेत्यर्थः ॥ ६१ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर्माकृष्टेर्वानादितः ॥ ६२ ॥

वाशब्दोऽत्र समुच्चये। यतः कर्मानाद्यतः कर्मभिराकर्षणादपि प्रधानस्यावश्यकी व्यवस्थिता च प्रवृत्तिरित्यर्थः ॥६२॥

तदेवं प्रधानस्य परार्थतः स्रष्टृत्वे सिद्धे परप्रयोजनसमाप्तौ स्वत एव प्रधाननिवृत्त्या मोक्षः सिध्यतीत्याह प्रबट्केन।

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ॥ ६३ ॥

विविक्तपुरुषज्ञानात् परवैराग्येण पुरुषार्थसमाप्तौ प्रधानस्य सृष्टिर्निवर्त्तते। यथा पाके निष्पन्ने पाचकस्य व्यापारो निवर्त्तत इत्यर्थः। इयमेवात्यन्तिकप्रलय इत्युच्यते। तथा च श्रुतिः। तस्याभिध्यानाद्योजनात् तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरिति ॥ ६३ ॥

नन्वेवमेकपुरुषस्योपाधौ विवेकज्ञानोत्पत्त्या प्रकृतेः सृष्टिनिवृत्तौ सर्वमुक्तिप्रसङ्ग इति तत्राह।

इतर इतरवत् तद्दोषात् ॥ ६४ ॥

इतरस्तु विविक्तबोधरहित इतरवद्बद्धवदेव प्रकृत्या तिष्ठति। कुतस्तद्दोषात्। तस्य प्रधानस्यैव तत्पुरुषार्थासमापनाख्यदोषादित्यर्थः। तदुक्तं योगसूत्रे। कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वादिति। तथा च पूर्वसूत्रे या प्रधाननिवृत्तिरुक्ता सा विविक्तबोद्धृपुरुषं प्रत्येवेति भावः। विश्वमायाश्रुतिरपि ज्ञानिनं प्रत्येव मन्तव्या। अजामिति श्रुत्यैकवाक्यत्वादिति ॥ ६४ ॥

सृष्टिनिवृत्तेः फलमाह।

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ॥६५॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वयोः प्रधानपुरुषयोरेवौदासीन्यमेकाकिता। परस्परवियोग इति यावत्। सोऽपवर्गः। अथवा पुरुषस्यैव कैवल्यमहं मुक्तः स्यामित्येव पुरुषार्थतादर्शनादित्यर्थः ॥ ६५ ॥

नन्वेकपुरुषमुक्तावेव विवेकाकारवृत्त्या विरक्ता प्रकृतिः कथमन्यपुरुषार्थं पुनः सृष्टौ प्रवर्त्तताम्। न च प्रकृतेरंशभेदान्नैष दोष इति वाच्यम्। मुक्तपुरुषोपकरणैरपि पृथिव्यादिभिरन्यस्य भोग्यसृष्टिदर्शनादिति तत्राह।

अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यते प्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्यैवोरगः ॥ ६६ ॥

एकस्मिन् पुरुषे विविक्तबोधाद्विरक्तमपि प्रधानं नान्यस्मिन् पुरुषे सृष्ट्युपरागाय विरक्तं भवति किन्तु तं प्रति सृजत्येव। यथा प्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्यैवोरगो भयादिकं न जनयति मूढं प्रति तु जनयत्येवेत्यर्थः। उरगतुल्यत्वं च प्रधानस्य रज्जुतुल्ये पुरुषे समारोपणादिति। एवंविधं रज्जुसर्पादिदृष्टान्तानामाशयमबुद्ध्वैवाबुधाः केचिद्वेदान्तिब्रुवाः प्रकृतेरत्यन्ततुच्छत्वं मनोमात्रत्वं वा तुलयन्ति। एतेन प्रकृतिसत्यतावादिसांख्योक्तदृष्टान्तेन श्रुतिस्मृत्यर्थो बोधनीया न केवलं दृष्टान्तवत्त्वेनायमर्थः सिध्यति ॥ ६६ ॥

कर्मनिमित्तयोगाच्च ॥ ६७ ॥

सृष्टौ निमित्तं यत् कर्म तस्य सम्बन्धादप्यन्यपुरुषार्थं सृजतीत्यर्थः ॥ ६७ ॥

ननु सर्वेषां पुरुषाणामप्रार्थकतया नैरपेक्ष्याविशेषेऽपि कञ्चित् प्रत्येव प्रधानं प्रवर्त्तते कञ्चित् प्रति निवर्त्तत इत्यत्र किं नियामकम्। न च कर्म नियामकं कस्य पुरुषस्य किं कर्मेत्यत्र नियामकाभावादिति तत्राह।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ॥ ६८ ॥

पुरुषाणां नैरपेक्ष्येऽप्ययं मे स्वाम्ययमेवाहमित्यविवेकादेव प्रकृतिः सृष्ट्यादिभिः पुरुषानुपकरोतीत्यर्थः। तथा च अस्मै पुरुषायात्मानमविविच्य दर्शयितुं वासना वर्त्तते तं प्रत्येव प्रधानं प्रवर्त्तत इत्येव नियामकमिति भावः॥ ६८॥

प्रवृत्तिस्वभावत्वात् कथं विवेकेऽपि निवृत्तिरुपपद्यतां तत्राह।

नर्त्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात् ॥ ६९ ॥

पुरुषार्थमेव प्रधानस्य प्रवृत्तिस्वभावो न तु सामान्येन। अतः प्रवृत्तस्यापि प्रधानस्य पुरुषार्थसमाप्तिरूपचरितार्थत्वे सति निवृत्तिर्युक्ता। यथा परिषद्भ्यो नृत्यदर्शनार्थं प्रवृत्ताया नर्त्तक्यास्तत्सिद्धौ निवृत्तिरित्यर्थः॥ ६९॥

निवृत्तौ हेत्वन्तरमाह।

दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ॥ ७० ॥

पुरुषेण परिणामित्वदुःखात्मकत्वादिदोषदर्शनादपि लज्जितायाः प्रकृतेः पुनर्न पुरुषं प्रत्युपसर्पणं कुलवधूवत्। यथा स्वामिना मे दोषो दृष्ट इत्यवधारणेन लज्जिता कुलवधूर्न स्वामिनमुपसर्पति तद्वदित्यर्थः। तदुक्तं नारदीये।

सविकारापि मौढ्येन चिरं भुक्ता गुणात्मना।
प्रकृतिर्ज्ञातदोषेयं लज्जयेव निवर्त्तते॥

इति। एतदेवोक्तं कारिकयापि।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य॥
इति॥ ७०॥

ननु पुरुषार्थं चेत् प्रधानप्रवृत्तिस्तर्हि बन्धमोक्षाभ्यां पुरुषस्य परिणामापत्तिरिति तत्राह।

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते॥ ७१॥

दुःखयोगवियोगरूपौ बन्धमोक्षौ पुरुषस्य नैकान्ततस्तत्त्वतः किन्तु चतुर्थसूत्रवक्ष्यमाणप्रकारेणाविवेकादेवेत्यर्थः॥७१॥

परमार्थतस्तु यथोक्तौ बन्धमोक्षौ प्रकृतेरेवेत्याह।

प्रकृतेराञ्जस्यात् ससङ्गत्वात् पशुवत्॥७२॥

प्रकृतेरेव तत्त्वतो दुःखेन बन्धमोक्षौ ससङ्गत्वाद्दुःखसाधनैर्धर्मादिभिर्लिप्तत्वात्। यथा पशुरज्ज्वा लिप्ततया बन्धमोक्षभागी तद्वदित्यर्थः। एतदुक्तं कारिकया।

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति पुरुषः।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥

इति। द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्ग इति सूत्रे च पुरुषस्यापवर्ग उक्तः स प्रतिबिम्बरूपस्य मिथ्यादुःखस्य वियोग एवेति॥ ७२॥

तत्र कैः साधनैर्बन्धः कैर्वा मोक्ष इत्याकाङ्क्षायामाह।

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद्विमोचयत्येकरूपेण॥ ७३॥

धर्मवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यैः सप्तभीरूपधर्मैर्दुःखहेतुभिः प्रकृतिरात्मानं दुःखेन बध्नाति कोशकारवत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोशकारकृतिर्यथा स्वनिर्मितेनावासेनात्मानं बध्नाति तद्वत्। सैव च प्रकृतिरेकरूपेण ज्ञानेनैवात्मानं दुःखान्मोचयतीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

ननु बन्धमुक्ती अविवेकादिति यदुक्तं तदयुक्तम्। अविवेकस्याहेयानुपादेयत्वात्। लोके दुःखस्य तदभावसुखादेरेव च स्वतो हेयोपादेयत्वात्। अन्यथा दृष्टहानिरित्याशङ्का चतुर्थसूत्रोक्तं स्वयं विवृणोति।

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिः ॥७४॥

अविवेकस्य पुरुषेषु बन्धमोक्षनिमित्तत्वमेव पुरोक्तं न त्वविवेक एव ताविति नातो दृष्टहानिरित्यर्थः। एतच्च प्रथमाध्यायसूत्रेषु स्पष्टम्। अविवेकनिमित्तात् प्रकृतिपुरुषयोः संयोगस्तस्माच्च संयोगादुत्पद्यमानस्य प्राकृतदुःखस्य पुरुषे यः प्रतिबिम्बः स एव दुःखभोगो दुःखसम्बन्धस्तन्निवृत्तिरेव च मोक्षाख्यः पुरुषार्थ इति॥ ७४ ॥

तदेवमादिसर्गमारभ्यात्यन्तिकलयपर्य्यन्तोऽखिलपरिणामः प्रधानतद्विकाराणामेव पुरुषस्तु कूटस्थपूर्णचिन्मात्र एवेत्यध्यायद्वयेन विस्तरतो विवेचितं तस्य विवेकस्य निष्पत्त्युपायेषु सारभूतमभ्यासमाह।

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद्विवेकसिद्धिः ॥ ७५ ॥

प्रकृतिपर्य्यन्तेषु जडेषु नेति नेतीत्यभिमानत्यागरूपात् तत्त्वाभ्यासाद्विवेकनिष्पत्तिर्भवति। इतरत् सर्वमभ्यासस्याङ्गमात्रमित्यर्थः। तथा च श्रुतिः। अथात आदेशो नेति नेति न ह्येतस्मादिति नेत्यन्यत् परमस्ति स एष आत्मा नेति नेतीत्यादिरिति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अव्यक्ताद्यविशेषान्ते विकारेऽस्मिंश्च वर्णिते ।
चेतनाचेतनान्यत्वज्ञानेन ज्ञानमुच्यते ॥

इति । यथा ।

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमसन्निष्ठं भूतावासमिमं त्यजेत् ॥
नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा ।
तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥

इति । एतदेव कारिकयाप्युक्तम् ।

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् ।
अविपर्य्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥

इति । नास्मीत्यात्मनः कर्त्तृत्वनिषेधः । न मे इति सङ्गनिषेधः । नाहमिति तादात्म्यनिषेधः । केवलमित्यस्य विवरणमविपर्य्ययाद्विशुद्धमिति । अतोऽन्तरा विपर्य्येण विप्लुतमित्यर्थः । इदमेव केवलत्वं सिद्धिशब्देन सूत्रे प्रोक्तम् । विवेकख्यातिरविप्लुवा हानोपाय इति योगसूत्रेणैतादृशज्ञानस्यैव मोक्षहेतुत्वसिद्धेरिति ॥ ७५ ॥

विवेकसिद्धौ विशेषमाह ।

अधिकारिप्रभेदान्न नियमः ॥ ७६ ॥

मन्दाद्यधिकारिभेदसत्त्वादभ्यासे क्रियमाणेऽप्यस्मिन्नेव जन्मनि विवेकनिष्पत्तिर्भवतीति नियमो नास्तीत्यर्थः । अत उत्तमाधिकारमभ्यासपाटवेनात्मनः सम्पादयेदिति भावः ॥७६॥

विवेकनिष्पत्त्यैव निस्तारो नान्यथेत्याह ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बाधितानुवृत्त्या मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः ॥ ७७ ॥

सकृत् सम्प्रज्ञातयोगेनात्मसाक्षात्कारोत्तरं मध्यविवेकावस्थो मध्यमविवेकेऽपि सति पुरुषे बाधितानामपि दुःखादीनां प्रारब्धवशात् प्रतिबिम्बरूपेण पुरुषेऽनुवृत्त्या भोगो भवतीत्यर्थः। विवेकनिष्पत्तिश्चापुनरुत्थानादसम्प्रज्ञातादेव भवतीत्यतस्तस्यां सत्यां न भोगोऽस्तीति प्रतिपादयितुं मध्यविवेकत इत्युक्तम्। मन्दविवेकस्तु साक्षात्कारात् पूर्वं श्रवणमननध्यानयात्मरूप इति विभागः ॥ ७७ ॥

जीवन्मुक्तश्च ॥ ७८ ॥

जीवन्मुक्तोऽपि मध्यविवेकावस्थ एव भवतीत्यर्थः ॥ ७८ ॥

जीवन्मुक्तौ प्रमाणमाह।

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ॥ ७९ ॥

शास्त्रेषु विवेकविषये गुरुशिष्यभावश्रवणाज्जीवन्मुक्तसिद्धिरित्यर्थः। जीवन्मुक्तस्यैवोपदेष्टृत्वसम्भवादिति ॥ ७९ ॥

श्रुतिश्च ॥ ८० ॥

श्रुतिश्च जीवन्मुक्तौऽस्ति।

दीक्षयैव नरो मुच्येत् तिष्ठेन्मुक्तोऽपि विग्रहे।

कुलालचक्रमध्यस्थो विच्छिन्नोऽपि भ्रमेद्घटः॥

ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येतीत्यादिरिति। नारदीयस्मृतिरपि।

पूर्वाभ्यासबलात् कार्य्यं न लोको न च वैदिकः।

अपुण्यपापः सर्वात्मा जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥

इति ॥ ८० ॥

ननु श्रवणमात्रेणाप्युपदेष्टृत्वं स्यात् तत्राह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इतरथान्धपरम्परा ॥ ८१ ॥

इतरथा मन्दविवेकस्याप्युपदेष्टृत्वेऽन्धपरम्परापत्तिरित्यर्थः । सामग्र्येणात्मतत्त्वमज्ञात्वा चेदुपदिशेत् कस्मिंश्चिदंशे स्वभ्रमेण शिष्यमपि भ्रान्तीकुर्यात् सोऽप्यन्यं सोऽप्यन्यमित्येवमन्धपरम्परेति ॥ ८१ ॥

ननु ज्ञानेन कर्मक्षये सति कथं जीवनं स्यात् तत्राह ।

चक्रभ्रमणवद्धृतशरीरः ॥ ८२ ॥

कुलालकर्मनिवृत्तावपि पूर्वकर्मवेगात् स्वयमेव कियत्कालं चक्रं भ्रमति । एवं ज्ञानोत्तरं कर्मानुत्पत्तावपि प्रारब्धकर्मवेगेन चेष्टमानं शरीरं धृत्वा जीवन्मुक्तस्तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ८२ ॥

ननु ज्ञानहेतुसम्प्रज्ञातयोगेन भोगादिवासनाक्षये कथं शरीरधारणम् । न च योगस्य संस्काराभिभावकत्वे किं मानमिति वाच्यम् । व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधपरिणाम इति योगसूत्रतस्तत्सिद्धेः । चिरकालीनस्य विषयान्तरावेशस्य विषयान्तरसंस्काराभिभावकतया लोकेऽप्यनुभवाच्चेति तत्राह ।

संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ॥ ८३ ॥

शरीरधारणहेतवो ये विषयसंस्कारास्तेषामल्पावशेषात् तस्य शरीरधारणस्य सिद्धिरित्यर्थः । अत्र चाविद्यासंस्कारलेशस्य सत्ता नापेक्ष्यते । अविद्याया जन्मादिरूपकर्मविपाकारम्भमात्रे हेतुत्वात् । योगभाष्ये व्यासैस्तथा व्याख्यातत्वात् । वीतरागजन्मादर्शनादिति न्यायाच्च । न तु प्रारब्धफलककर्मभोगेऽपीति । यत्र च नियमेनाविद्यापेक्ष्यते स प्रयासविशेषरूपो भोगो मूढेष्वेवास्ति जीवन्मुक्तानां तु भोगाभास एवेति प्रागुक्तम् । यत् तु कश्चिदविद्यासंस्कारलेशोऽपि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवन्मुक्तस्य तिष्ठतीत्याह तन्न। धर्माधर्मोत्पत्तिप्रसङ्गात्। अन्धपरम्पराप्रसङ्गात्। अविद्यासंस्कारलेशसत्ताकल्पने प्रयोजनाभावाच्च। एतच्च ब्रह्ममीमांसाभाष्ये प्रपञ्चितमिति ॥८३॥

शास्त्रवाक्यार्थमुपसंहरति।

विवेकान्निःशेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात् ॥ ८४ ॥

उक्ताया विवेकसिद्धितः परवैराग्यद्वारा सर्ववृत्तिनिरोधेन यदा निश्शेषतो बाधिताबाधितसाधारण्येनाखिलदुःखं निवर्त्तते तदैव पुरुषः कृतकृत्यो भवति। नेतराज्जीवन्मुक्त्यादेरपीत्यर्थः। नेतरादिति वीप्साध्यायसमाप्तौ ॥ ८४ ॥

अत्यन्तलयपर्य्यन्तः कार्य्योऽत्यक्तस्य नात्मनः।
प्रोक्त एवं विवेकोऽत्र परवैराग्यसाधनम् ॥

इति विज्ञानभिक्षुनिर्मिते कापिलसाङ्ख्यप्रवचनस्य भाष्ये वैराग्याध्यायस्तृतीयः।

चतुर्थोऽध्यायः।

शास्त्रसिद्धाख्यायिकाजातमुखेनेदानीं विवेकज्ञानसाधनानि प्रदर्शनीयानीत्येतदर्थं चतुर्थाध्याय आरभ्यते।

राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात् ॥ १ ॥

पूर्वपादशेषसूत्रस्थविवेकोऽनुवर्त्तते। राजपुत्रस्येव तत्त्वोपदेशाद्विवेको जायत इत्यर्थः। अत्रेयमाख्यायिका कश्चिद्राजपुत्रो गण्डर्क्षजन्मना पुरान्निःसारितः शबरेण केनचित् पोषितोऽहं शबर इत्यभिमन्यमान आस्ते तं जीवन्तं ज्ञात्वा कश्चिदमात्यः प्रबोधयति न त्वं शबरो राजपुत्रोऽसीति। स

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यथा झटित्येव चाण्डालाभिमानं त्यक्त्वा तात्त्विकं राजभावमेवालम्बते राजाहमस्मीति। एवमेवादिपुरुषात् परिपूर्णचिन्मात्रेणाभिव्यक्तादुत्पन्नस्त्वं तस्यांश इति कारुणिकोपदेशात् प्रकृत्यभिमानं त्यक्त्वा ब्रह्मपुत्रत्वादहमपि ब्रह्मैव न तु तद्विलक्षणः संसारीत्येवं स्वस्वरूपमेवालम्बत इत्यर्थः। तथा गारुड़े ।

यथैकहेममणिना सर्वं हेममयं जगत् ।
तथैव जातमीशेन जातेनाप्यखिलं भवेत् ॥
ग्रहाविष्टो द्विजः कश्चिच्छूद्रोऽहमिति मन्यते ।
ग्रहनाशात् पुनः स्वीयं ब्राह्मण्यं मन्यते यथा ॥
मायाविष्टस्तथा जीवो देहोऽहमिति मन्यते ।
मायानाशात् पुनः स्वीयं रूपं ब्रह्मास्मि मन्यते ॥
इति ॥ १ ॥

स्त्रीशूद्रादयोऽपि ब्राह्मणेन ब्राह्मणस्योपदेशं श्रुत्वा कृतार्थाः स्युरित्येतदर्थमाख्यायिकान्तरं दर्शयति ।

पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ॥ २ ॥

अर्जुनार्थं श्रीकृष्णेन तत्त्वोपदेशे क्रियमाणेऽपि समीपस्थस्य पिशाचस्य विवेकज्ञानं जातमेवमन्येषामपि भवेदित्यर्थः ॥२॥

यदि च सकृदुपदेशाज्ज्ञानं न जायते तदोपदेशावृत्तिरपि कर्त्तव्येतीतिहासान्तरेणाह ।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ ३ ॥

उपदेशावृत्तिरपि कर्त्तव्या छान्दोग्यादौ श्वेतकेत्वादिकं प्रत्यारुणिप्रभृतीनामसकृदुपदेशेतिहासादित्यर्थः ॥ ३ ॥

वैराग्यार्थं निदर्शनपूर्वकमात्मसङ्घातस्य भङ्गुरत्वादिकं प्रतिपादयति ।

पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वस्य पितापुत्रयोरिवात्मनोऽपि मरणोत्पत्त्योर्दृष्टत्वादनुमितत्वाद्वैराग्येण विवेको भवतीत्यर्थः। तदुक्तम्।

आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ।

इति ॥ ४ ॥

इतः परमुत्पन्नज्ञानस्य विरक्तस्य च ज्ञाननिष्पत्त्यङ्गान्याख्यायिकोक्तदृष्टान्तैर्दर्शयति।

श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ॥५॥

परिग्रहो न कर्त्तव्यो यतो द्रव्याणां त्यागेन लोकः सुखी वियोगेन च दुःखी भवति श्येनवदित्यर्थः। श्येनो हि सामिषः केनाप्यपहृत्यामिषाद्वियोज्य दुःखी क्रियते स्वयं चेत् त्यजति तदा दुःखाद्विमुच्यते। तदुक्तम्।

सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनोऽन्ये निरामिषाः।
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥

इति। तथा मनुनाप्युक्तम्।

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा।
तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥

इति ॥ ५ ॥

अहिनिर्ल्वयिनीवत् ॥ ६ ॥

यथाहिर्जीर्णां त्वचं परित्यजत्यनायासेन हेयबुद्ध्या तथैव मुमुक्षुः प्रकृतिं बहुकालोपभुक्तां जीर्णां हेयबुद्ध्या त्यजेदित्यर्थः। तदुक्तम्। जीर्णां त्वचमिवोरग इति ॥ ६ ॥

त्यक्तां च प्रकृत्यादिकं पुनर्न स्वीकुर्य्यादित्यत्राह।

छिन्नहस्तवद्वा ॥ ७ ॥

यथा छिन्नं हस्तं पुनः कोऽपि नादत्ते तथैवैतत् त्यक्तं पुनर्नाभिमन्येतेत्यर्थः। वाशब्दोऽप्यर्थे ॥ ७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत् ॥८॥

विवेकस्य यदन्तरङ्गसाधनं न भवति स चेद्धर्मोऽपि स्यात् तथापि तदनुचिन्तनं तदनुष्ठाने चित्तस्य तात्पर्य्यं न कर्त्तव्यं यतस्तद्बन्धाय भवति विवेकविस्मारकतया भरतवत्। यथा भरतस्य राजर्षेर्धर्म्यमपि दीनानाथहरिणशावकस्य पोषणमित्यर्थः । तथा च जडभरतं प्रकृत्य विष्णुपुराणे ।

चपलं चपले तस्मिन् दूरगं दूरगामिनि ।
आसीच्चेतः समासक्तं तस्मिन् हरिणपोतके ॥ ८ ॥

बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत् ॥ ९ ॥

बहुभिः सङ्गो न कार्य्यः। बहुभिः सङ्गे हि रागाद्यभिव्यक्त्या कलहो भवति योगभ्रंशकः । यथा कुमारीहस्तशङ्खानामन्योऽन्यसङ्गेन झणत्कारो भवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

द्वाभ्यामपि तथैव ॥ १० ॥

द्वाभ्यां योगेऽपि तथैव विरोधो भवत्यत एकाकिनैव स्थातव्यमित्यर्थः । तदुक्तम् ।

वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्त्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत् तस्मात् कुमार्य्या इव कङ्कणम् ॥

इति ॥ १० ॥

आशा वै वश्यविरसे चित्ते सन्तोषवर्जिते ।
म्लाने वक्त्रमिवादर्शे न ज्ञानं प्रतिबिम्बति ॥

इति वचनान्निराशता योगिनानुष्ठेयेत्याह ।

निराशः सुखी पिङ्गलावत् ॥ ११ ॥

आशां त्यक्त्वा पुरुषः सन्तोषाख्यसुखवान् भूयात् पिङ्गला-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वत्। यथा पिङ्गलानाम वेश्या कान्तार्थिनी कान्तमलब्ध्वा निर्विण्णा सती विहाशायां सुखिनी बभूव तद्वदित्यर्थः। तदुक्तम्।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला॥

इति। नन्वाशानिवृत्त्या दुःखनिवृत्तिः स्यात् सुखं तु कुतः साधनाभावादिति। उच्यते। चित्तस्य सत्त्वप्राधान्येन स्वाभाविकं यत् सुखमाशया पिहितं तिष्ठति तदेवाशाविगमे लब्धवृत्तिकं भवति तेजः प्रतिबद्धजलशैत्यवदिति न तत्र साधनापेक्षा। एतदेव चार्थे सुखमित्युच्यत इति॥ ११॥

योगप्रतिबन्धकत्वादारम्भोऽपि भोगार्थं न कर्त्तव्योऽन्यथैव तदुपपत्तेरित्याह।

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत्॥१२॥

सुखी भवेदिति शेषः। शेषं सुगमम्। तदुक्तम्।

गृहारम्भो हि दुःखाय न सुखाय कथञ्चन।
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते॥ १२॥

शास्त्रेभ्यो गुरुभ्यश्च सार एव ग्राह्योऽन्यथाभ्युपगमवादादिभिरंशतोऽसारभागेऽन्योऽन्यविरोधेनार्थबाहुल्येन चैकाग्रताया असम्भवादित्याह।

बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत्॥ १३॥

कर्त्तव्यमिति शेषः। अन्यत् सुगमम्। तदुक्तम्।

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः।
सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः॥

इति। मार्कण्डेयपुराणे च।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत् स्वार्थसाधकम्।
ज्ञानानां बहुता यैषा योगविघ्नकरी हि सा॥
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्।
असौ कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञानमवाप्नुयात्॥
इति॥ १३॥

साधनान्तरं यथा तथा भवत्वेकाग्रतयैव समाधिपालनद्वारा विवेकसाक्षात्कारो निष्पादनीय इत्याह।

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः॥१४॥

यथा शरनिर्माणायैकचित्तस्येषुकारस्य पार्श्वे राज्ञो गमनेनापि न वृत्त्यन्तरनिरोधो हीयत एवमेकाग्रचित्तस्य सर्वथापि न समाधिहानिर्वृत्त्यन्तरनिरोधक्षतिर्भवति। ततश्च विषयान्तरसञ्चाराभावे ध्येयसाक्षात्कारोऽप्यवश्यं भवतीत्येकाग्रतां कुर्यादित्यर्थः। तदुक्तम्।

तदेवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किञ्चिद्बहिरन्तरं वा।
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे॥
इति॥ १४॥

सत्यां शक्तौ ज्ञानबलाच्छास्त्रकृतनियमो यथा लङ्घ्यते तदा ज्ञानानिष्पत्त्यानर्थक्यं योगिनो भवतीत्याह।

कृतनियमलङ्घनादानर्थक्यं लोकवत्॥१५॥

यः शास्त्रेषु कृतो योगिनां नियमस्तस्योल्लङ्घने ज्ञाननिष्पत्त्यास्योऽर्थो न भवति लोकवत्। यथा लोके भैषज्यादौ विहितपथ्यादीनां लङ्घने तत्तत्सिद्धिर्न भवति तद्वदित्यर्थः। अशक्त्या ज्ञानरक्षार्थं वा लङ्घने तु न ज्ञानप्रतिबन्धः।

अपेतव्रतकर्मा तु केवलं ब्रह्मणि स्थितः।
ब्रह्मभूतश्चरन् लोके ब्रह्मचारीति कथ्यते॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति मोक्षधर्मादिभ्यः। इति वसिष्ठादिस्मृतिभ्यश्च। अत एव विष्णुपुराणादौ वृथा कर्मत्यागिन एव पाषण्डतया निन्दिताः पुंसां जटाधारणमौण्ड्यवतां वृथैवेत्यादिनेति ॥१५॥

नियमविस्मरणेऽप्यानर्थक्यमाह ।

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ॥ १६ ॥

सुगमम्। भेक्याश्चेयमाख्यायिका। कश्चिद्राजा मृगयां गतो विपिने सुन्दरीं कन्यां ददर्श। सा च राज्ञा भार्य्याभावाय प्रार्थिता नियमं चक्रे यदा मह्यं त्वया जलं प्रदर्श्यते तदा मया गन्तव्यमिति। एकदा तु क्रीडया परिश्रान्ता राजानं पप्रच्छ कुत्र जलमिति। राजापि समयं विस्मृत्य जलमदर्शयत्। ततः सा भेकराजदुहिता कामरूपिणी भेकी भूत्वा जलं विवेश ततश्च राजा जालादिभिरन्विष्यापि न तामविन्ददिति ॥ १६ ॥

श्रवणवद्गुरुवाक्यमीमांसाया अप्यावश्यकत्वे इतिहासमाह ।

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ॥ १७ ॥

परामर्शो गुरुवाक्यतात्पर्य्यनिर्णायको विचारस्तं विनोपदेशवाक्यश्रवणेऽपि तत्त्वज्ञाननियमो नास्ति प्रजापतेरुपदेशश्रवणेऽपीन्द्रविरोचनयोर्मध्ये विरोचनस्य परामर्शाभावेन भ्रान्तत्वश्रुतेरित्यर्थः। अतो गुरूपदिष्टस्य मननमपि कार्य्यमिति। दृश्यते चेदानीमप्येकस्यैव तत्त्वमस्युपदेशस्य नानारूपैरर्थैः सम्भावना। अखण्डत्वमवैधर्म्यलक्षणाभेदो विभागश्चेति ॥ १७ ॥

अतएव च परामर्शो दृश्यत इत्याह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ॥ १८ ॥

तच्छब्देनोक्तोच्यमानयोः परामर्शः । तयोरिन्द्रविरोचनयोर्मध्ये परामर्श इन्द्रस्य दृष्टस्येत्यर्थः ॥ १८ ॥

सम्यग्ज्ञानार्थिना च गुरुसेवा बहुकालं कर्त्तव्येत्याह ।

प्रणतिब्रह्मचर्य्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ॥ १९ ॥

तद्वदिन्द्रस्येवान्यस्यापि गुरौ प्रणति वेदाध्ययनसेवादीन् कृत्वैव सिद्धिस्तत्त्वार्थस्फूर्त्तिर्भवति नान्यथेत्यर्थः । तथा च श्रुतिः ।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

इति ॥ १९ ॥

न कालनियमो वामदेववत् ॥ २० ॥

ऐहिकसाधनादेव भवतीत्यादिज्ञानोदये कालनियमो नास्ति वामदेववत् । वामदेवस्य जन्मान्तरीयसाधनेभ्यो गर्भेऽपि यथा ज्ञानोदयस्तथान्यस्यापीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः । तद्धैतत् पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्य्यश्चेति तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवतीत्यादिरिति । अहं मनुरभवमित्यादिकमवैधर्म्यलक्षणाभेदपरं सर्वव्यापकताख्यब्रह्मतापरं वा । सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्व इत्यादिस्मरणात् । स इदं सर्वं भवतीति त्वौपाधिकपरिच्छेदस्यात्यन्तोच्छेदपरमिति ॥ २० ॥

ननु सगुणोपासनाया अपि ज्ञानहेतुत्वश्रवणात् तत एव ज्ञानं भविष्यति किमर्थं दुष्करसूक्ष्मयोगचर्य्येति तत्राह ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्य्येण यज्ञोपासकानामिव ॥ २१ ॥

सिद्धिरित्यनुषज्यते। अध्यस्तरूपैः पुरुषाणां ब्रह्मविष्णुहरादीनामुपासनात् पारम्पर्य्येण ब्रह्मादिलोकप्राप्तिक्रमेण सत्त्वशुद्धिद्वारा वा ज्ञाननिष्पत्तिर्न साक्षात्। यथा याज्ञिकानामित्यर्थः ॥ २१ ॥

ब्रह्मादिलोकपरम्परयापि ज्ञाननिष्पत्तौ नास्ति नियम इत्याह।

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ॥ २२ ॥

निर्गुणात्मन इतरस्याध्यस्तरूपस्य ब्रह्मलोकपर्य्यन्तस्य लाभेऽप्यावृत्तिरस्ति कुतो देवयानपथेन ब्रह्मलोकं गतस्यापि द्युपर्जन्यधरामरयोषिद्रूपाग्निपञ्चके पञ्चाहुतितो जन्मश्रवणात्। छान्दोग्यपञ्चमप्रपाठके। असौ वावलोको गौतमाग्निरित्यादिनेत्यर्थः। यच्च ब्रह्मलोकादनावृत्तिवाक्यं तत् तत्रैव प्रायेणोत्पन्नज्ञानपुरुषविषयकमिति ॥ २२ ॥

ज्ञाननिष्पत्तिर्विरक्तस्यैवेत्यत्र निदर्शनमाह।

विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादनं हंसक्षीरवत् ॥ २३ ॥

विरक्तस्यैव हेयानां प्रकृत्यादीनां हानमुपादेयस्य चात्मन उपादानं भवति। यथा दुग्धजलयोरैक्यभावापन्नयोर्मध्येऽसारजलत्यागेन सारभूतक्षीरोपादानं हंसस्यैव न तु काकादेरित्यर्थः ॥ २३ ॥

सिद्धपुरुषसङ्गादप्येतदुभयं भवतीत्याह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लब्धातिशययोगाद्वा तद्वत् ॥ २४ ॥

लब्धोऽतिशयो ज्ञानकाष्ठा येन तत्सङ्गादप्युक्तं भवति हंसवदेवेत्यर्थः । यथालर्कस्य दत्तात्रेयसङ्गममात्रादेव स्वयं विवेकः प्रादुरभूदिति ॥ २४ ॥

रागिसङ्गो न कार्य्य इत्याह ।

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ॥२५॥

रागापहते पुरुषे कामतः सङ्गो न कर्त्तव्यः शुकवत् । यथा शुकपक्षी प्रकृष्टरूप इति कृत्वा कामचरं न करोति रूपलोलुपैर्बन्धनभयात् तद्वदित्यर्थः ॥ २५ ॥

रागिसङ्गे तु दोषमाह ।

गुणयोगाद्बद्धः शुकवत् ॥ २६ ॥

तेषां सङ्गे तु गुणयोगात् तदीयरागादियोगाद्बद्धः स्यात् शुकवदेव । यथा शुकपक्षी व्याधस्य गुणैः रज्जुभिर्बद्धो भवति तद्वदित्यर्थः । अथवा गुणितया गुणलोलुपैर्बद्धो भवति शुकवदित्यर्थः । अत्रैवोक्तं सौभरिणा ।

स मे समाधिर्जलवासमित्रमत्स्यस्य सङ्गात् सहसैव नष्टः ।
परिग्रहः सङ्गकृतो ममायं परिग्रहोत्थाश्च महाविधित्साः ॥

इति ॥ २६ ॥

वैराग्यस्याप्युपायमवधारयति द्वाभ्याम् ।

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ॥ २७ ॥

यथा मुनेः सौभरेर्भोगान्न रागशान्तिरभूत् । एवमन्येषामपि न भवतीत्यर्थः । तदुक्तं सौभरिणैव ।

आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य ।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसङ्गि ॥

इति ॥ २७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपितु।

दोषदर्शनादुभयोः ॥ २८ ॥

उभयोः प्रकृतितत्कार्य्ययोः परिणामित्वदुःखात्मकत्वादि-दोषदर्शनादेव रागशान्तिर्भवति मुनिवदेवेत्यर्थः। सौभरेर्हि सङ्गदोषदर्शनादेव सङ्गे वैराग्यं श्रूयते।

दुःखं यदेवैकशरीरजन्म तथार्द्धसंख्यं तदिदं प्रसूतम्।
परिग्रहेण क्षितिपात्मजानां सुतैरनेकैर्बहुलीकृतं तत्॥

इति ॥ २८ ॥

रागादिदोषोपहतस्योपदेशग्रहणेऽप्यनधिकारमाह।

न मलिनचेतस्युपदेशवीजप्ररोहोऽजवत् ॥२९॥

उपदेशरूपं यज्ज्ञानवृक्षस्य वीजं तस्याङ्कुरोऽपि रागादि-मलिनचित्ते नोत्पद्यते। अजवत्। यथाजनाम्नि नृपे भार्य्या-शोकमलिनचित्ते वशिष्ठेनोक्तस्याप्युपदेशवीजस्य नाङ्कुर उत्पन्न इत्यर्थः ॥ २९ ॥

किं बहुना।

नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् ॥ ३० ॥

आपातज्ञानमपि मलिनचेतस्युपदेशान्न जायते विषया-न्तरसञ्चारादिभिः प्रतिबन्धात्। यथा मलैः प्रतिबन्धान्मलि-नदर्पणेऽर्थो न प्रतिविम्बति तद्वदित्यर्थः ॥ ३० ॥

यदि वा कथञ्चिज्ज्ञानं जायेत तथाप्युपदेशानुरूपं न भवेदित्याह।

न तज्जस्यापि तद्रूपता पङ्कजवत् ॥ ३१ ॥

तस्मादुपदेशाज्जातस्यापि ज्ञानस्योपदेशानुरूपता न भवति सामग्रयाणानवबोधात्। पङ्कजवत्। यथा वीजस्यो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्तमत्वेऽपि पङ्कदोषाद्बीजानुरूपता पङ्कजस्य न भवति तद्वदित्यर्थः। पङ्कस्थानीयं शिष्यचित्तम् ॥ ३१ ॥

ननु ब्रह्मलोकादिष्वैश्वर्य्येणैव पुरुषार्थतासिद्ध्या किमर्थमेतावता प्रयासेन मोक्षाय ज्ञाननिष्पादनं तत्राह।

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ॥ ३२ ॥

ऐश्वर्य्ययोगोऽपि कृतकृत्यता कृतार्थता नास्ति क्षयातिशयदुःखैरनुगमात्। उपास्यसिद्धिवत्। यथोपास्यानां ब्रह्मादीनां सिद्धियोगेऽपि न कृतकृत्यता तेषामपि योगनिद्रादौ योगाभ्यासश्रवणात् तथैव तदुपासनया प्राप्ततदैश्वर्य्यस्यापीत्यर्थः। उपास्यसिद्धिवदिति वीप्सा अध्यायसमाप्तौ ॥ ३२ ॥

अध्यायत्रितयोक्तस्य विवेकस्यान्तरङ्गकम्।
आख्यायिकाभिः सम्प्रोक्तमत्राध्याये समासतः॥

इति विज्ञानभिक्षुनिर्मिते कापिलसांख्यप्रवचनस्य
भाष्य आख्यायिकाध्यायश्चतुर्थः॥

पञ्चमोऽध्यायः।

स्वशास्त्रसिद्धान्तः पर्य्याप्त इतः परं स्वशास्त्रे परेषां पूर्वपक्षानपाकर्त्तुं पञ्चमाध्याय आरभ्यते। तत्रादावादिसूत्रेऽथशब्देन यन्मङ्गलं कृतं तदर्थमित्याक्षेपं समाधत्ते।

मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ॥ १ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मङ्गलाचरणं यत् कृतं तस्यैतैः प्रमाणैः कर्त्तव्यतासिद्धिरित्यर्थः । इतिशब्दो हेत्वन्तराकाङ्क्षानिरासार्थः ॥ १ ॥

ईश्वरासिद्धेरिति यदुक्तं तन्नोपपद्यते कर्मफलदातृतया तत्सिद्धेरिति ये पूर्वपक्षिणस्तान्निराकरोति ।

नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः ॥ २ ॥

ईश्वराधिष्ठिते कारणे कर्मफलरूपपरिणामस्य निष्पत्तिर्न युक्ता । आवश्यकेन कर्मणैव फलनिष्पत्तिसम्भवादित्यर्थः ॥२॥

ईश्वरस्य फलदातृत्वं न घटतेऽपीत्याह सूत्रैः ।

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् ॥ ३ ॥

ईश्वराधिष्ठातृत्वे स्वोपकारार्थमेव लोकवदधिष्ठानं स्यादित्यर्थः ॥ ३ ॥

भवत्वीश्वरस्याप्युपकारः का क्षतिरित्याशङ्क्याह ।

लौकिकेश्वरवदितरथा ॥ ४ ॥

ईश्वरस्याप्युपकारस्वीकारे लौकिकेश्वरवदेव सोऽपि संसारी स्यात् । अपूर्णकामतया दुःखादिप्रसङ्गादित्यर्थः ॥४॥

तथैव भवत्वित्याशङ्क्याह ।

पारिभाषिको वा ॥ ५ ॥

संसारसत्त्वेऽपि चेदीश्वरस्तर्हि सर्गाद्युत्पन्नपुरुषे परिभाषामात्रमस्माकमिव भवतामपि स्यात् । संसारित्वाप्रतिहतेच्छत्वयोर्विरोधान्नित्यैश्वर्य्यानुपपत्तेरित्यर्थः ॥ ५ ॥

ईश्वरस्याधिष्ठातृत्वे बाधकान्तरमाह ।

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ॥ ६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किञ्च । रागं विना नाधिष्ठातृत्वं सिध्यति प्रवृत्तौ रागस्य प्रतिनियतकारणत्वादित्यर्थः । उपकार इष्टार्थसिद्धिः । रागस्तूत्कटेच्छेति न पौनरुक्त्यम् ॥ ६ ॥

नन्वेवमस्तु रागोऽपीश्वरे तत्राह ।

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

रागयोगेऽपि स्वीक्रियमाणे स नित्यमुक्तो न स्यात् ततश्च ते सिद्धान्तहानिरित्यर्थः । किञ्च । प्रकृतिं प्रत्यैश्वर्यं प्रकृतिपरिणामभूतेच्छादिना न सम्भवति । अन्योऽन्याश्रयात् । नित्येच्छादिकं च प्रकृतौ न युक्तं श्रुतिस्मृतिसिद्धसाम्यावस्थानुपपत्तेः । अतः प्रकारद्वयमवशिष्यते तद्यथा । ऐश्वर्यं किं प्रधानशक्तित्वेनास्मदभिमतानामिच्छादीनां साक्षादेव चेतनसम्बन्धात् । किं वायस्कान्तमणिवत् सन्निधिसत्तामात्रेण प्रेरकत्वादिति ॥ ७ ॥

तत्राद्यं पक्षं दूषयति ।

प्रधानशक्तियोगाच्चेत् सङ्गापत्तिः ॥ ८ ॥

प्रधानशक्तेरिच्छादेः पुरुषे योगात् पुरुषस्यापि धर्मसङ्गापत्तिः । तथा च स यत् तत्र पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्यादिश्रुतिविरोध इत्यर्थः ॥ ८ ॥

अन्त्ये त्वाह ।

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्य्यम् ॥ ९ ॥

अयस्कान्तवत् सन्निधिसत्तामात्रेण चेच्चेतनैश्वर्यं तर्हि सर्वेषामेव तत्तत्सर्गेषु भोक्तृणां पुंसामविशेषेणैश्वर्य्यमस्मदभिप्रेतमेव सिद्धम् । अखिलभोक्तृसंयोगादेव प्रधानेन महदादिसर्जनादिति । ततश्चैक एवेश्वर इति भवत्सिद्धान्तहानिरित्यर्थः ॥ ९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्यादेतत्। ईश्वरसाधकप्रमाणविरोधेनैतेऽसत्तर्का एव। अन्यथैवंविधासत्तर्कसहस्रैः प्रधानमपि बाधितुं शक्यत इति तत्राह।

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः॥ १०॥

तत्सिद्धिर्नित्येश्वरे तावत् प्रत्यक्षं नास्तीत्यनुमानशब्दावेव प्रमाणे वक्तव्ये ते च न सम्भवत इत्यर्थः॥ १०॥

असम्भवमेव प्रतिपादयति सूत्राभ्याम्।

सम्बन्धाभावान्नानुमानम्॥ ११॥

सम्बन्धो व्याप्तिः। अभावोऽसिद्धिः। तथा च महदादिकं सकर्तृकं कार्यत्वादित्याद्यनुमानेष्वप्रयोजकत्वेन व्याप्यत्वासिद्ध्या नेश्वरेऽनुमानमित्यर्थः॥ ११॥

नापि शब्द इत्याह।

श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य॥ १२॥

प्रपञ्चे प्रधानकार्य्यत्वस्यैव श्रुतिरस्ति न चेतनकारणत्वे। यथा।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपाभ्यां व्याक्रियतेत्यादिरित्यर्थः। या च तदैक्षत बहु स्यामित्यादिश्चेतनकारणताश्रुतिः सा सर्गादावुत्पन्नस्य महत्तत्त्वोपाधिकस्य महापुरुषस्य जन्यज्ञानपरा। किं वा बहुभवनानुरोधात् प्रधान एव कूलं पिपतिषतीतिवद्गौणी। अन्यथा साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चेत्यादिश्रुत्युक्तापरिणामित्वस्य पुरुषेऽनुपपत्तेरिति। अयं चेश्वरप्रतिषेध ऐश्वर्य्ये वैराग्यार्थमीश्वरज्ञानं विनापि मोक्षप्रतिपादनार्थं च प्रौढिवादमात्रमिति प्रागेव व्याख्यातम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्यथा जीवव्यावृत्तस्येश्वरनित्यत्वादेर्गौणत्वकल्पनागौरवम् । औपाधिकानां नित्यज्ञानेच्छादीनां महदादिपरिणामानां चाङ्गीकारेण कौटस्थ्याद्युपपत्तेरित्यादिकं ब्रह्ममीमांसायां द्रष्टव्यमिति ॥ १२ ॥

नाविद्यातो बन्ध इति यत् सिद्धान्तितं प्रथमपादे तत्र परमतं विस्तरतः प्रघट्टकेन दूषयति ।

नाविद्याशक्तियोगो निःसङ्गस्य ॥ १३ ॥

परे प्राहुः प्रधानं नास्ति किन्तु ज्ञाननाश्यानाद्यविद्याख्या शक्तिश्चेतने तिष्ठति तत एव चेतनस्य बन्धस्तन्नाशे च मोक्ष इति । तत्रेदमुच्यते । निःसङ्गतया चेतनस्याविद्याशक्तियोगः साक्षान्न सम्भवतीति । अविद्या तद्वासनास्तदाकारता सा च विकारविशेषोऽधिकारहेतुसंयोगरूपं सङ्गं विना न सम्भवतीत्यर्थः ॥ १३ ॥

नन्वविद्यावशादेवाविद्यायोगो वक्तव्यः । तथा चापारमार्थिकत्वान्न तया सङ्ग इति तत्राह ।

तद्योगे तत्सिद्धावन्योऽन्याश्रयत्वम् ॥१४॥

अविद्यायोगादविद्यासिद्धौ चान्योऽन्याश्रयत्वमात्माश्रयत्वम् । अनवस्था वेति शेषः ॥ १४ ॥

ननु वीजाङ्कुरवदनवस्था न दोषायेत्याशङ्क्याह ।

न वीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः ॥ १५ ॥

वीजाङ्कुरवदप्यनवस्था न सम्भवति पुरुषाणां संसारस्याविद्याद्यखिलानर्थरूपस्य सादित्वश्रुतेः । प्रलयसुषुप्त्यादावभावश्रवणादित्यर्थः । विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यतीत्यादिश्रुतिभिर्हि प्रलयादौ बुद्धिवृत्त्यभावेन तदौपाधिकाविद्याविद्याद्यखिलसंसारशून्यचिन्मा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वं पुरुषाणां सिद्धमिति। तस्मादविद्याप्याविद्यकीति वाङ्मात्रम् ॥ १५ ॥

नन्वस्माकमविद्या पारिभाषिकी न तु योगोक्तानात्मन्यात्मबुद्ध्यादिरूपा तथा च भवतां प्रधानवदेवास्माकमपि तस्या अखण्डानादितया पुरुषनिष्ठत्वेऽपि नासङ्गताहानिरित्याशङ्कायां परिकल्पितमविद्याशब्दार्थं विकल्प्य दूषयति।

विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसङ्गः ॥ १६ ॥

यदि विद्यान्यत्वमेवाविद्याशब्दार्थस्तर्हि तस्य ज्ञाननाश्यतया ब्रह्मण आत्मनोऽपि बाधो नाशः प्रसज्यते विद्याभिन्नत्वादित्यर्थः ॥ १६ ॥

अबाधे नैष्फल्यम् ॥ १७ ॥

यदि त्वविद्यारूपमपि विद्यया न बाध्येत तर्हि विद्यावैफल्यम्। अविद्यानिवर्त्तकत्वाभावादित्यर्थः ॥ १७ ॥

पक्षान्तरं दूषयति।

विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम् ॥ १८ ॥

यदि पुनर्विद्यया चेतने बाध्यत्वमेवाविद्यात्वमुच्यते तथा सति जगतः प्रकृतिमहदाद्यखिलप्रपञ्चस्याप्येवमविद्यात्वं स्यात्। अथात आदेशो नेति नेत्यस्थूलमनणिवत्यादिश्रुतिभिर्मिथ्याज्ञानस्येव प्रकृत्यादेरप्यात्मनि बाधितत्वादित्यर्थः। तथा चाखिलप्रपञ्चस्यैवाविद्यात्वे सत्येकस्य ज्ञानेनाविद्यानाशादन्यैरपि प्रपञ्चो न दृश्येतेति भावः। विद्यानाश्यत्वं चाविद्यात्वं वक्तुं न शक्यते विद्यानाश्यत्वेन विद्यानाश्यग्रहासम्भवादात्माश्रयादिति ॥ १८ ॥

तद्रूपत्वे सादित्वम् ॥ १९ ॥

१६

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भवतु वा यथाकथञ्चिद्विद्याबाध्यत्वमेवाविद्यात्वं तथापि तादृशवस्तुनः सादित्वमेव पुरुषेषु न त्वनादित्वं सम्भवति। विज्ञानघन एवेत्याद्युक्तश्रुतिभिः प्रलयादौ पुरुषस्य चिन्मात्रत्वसिद्धेरित्यर्थः। अस्मन्मते च प्रलये पुरुषस्यासंसारित्वेऽपि स्वतन्त्रनित्यप्रधानसंयोगात् पुनर्बन्ध उपपादितस्तथा प्रधानसंयोगेऽपि प्राग्भवीयाविवेक एव वासनादृष्टादिद्वारा निमित्तमित्यप्युक्तम्। तस्माद्योगदर्शनोक्तादन्या नास्त्यविद्या सा च बुद्धिधर्म एव न पुरुषधर्म इति सिद्धम् ॥ १९ ॥

अत्रैवाध्याये कर्मनिमित्ता प्रधानप्रवृत्तिरिति यदुक्तं तत्र परपूर्वपक्षं समाधत्ते प्रघट्टकेन।

न धर्मापलापः प्रकृतिकार्य्यवैचित्र्यात् ॥२०॥

अप्रत्यक्षतया धर्मापलापो न सम्भवति प्रकृतिकार्य्येषु वैचित्र्यान्यथानुपपत्त्या तदनुमानादित्यर्थः ॥ २० ॥

प्रमाणान्तरमप्याह।

श्रुतिलिङ्गादिभिस्तत्सिद्धिः ॥ २१ ॥

पुण्यो वै पुण्येन भवति पापः पापेनेत्यादिश्रुतेः स्वर्गकामोऽश्वमेधेन यजेतेति विध्यादिरूपाल्लिङ्गाद्योगिप्रत्यक्षादिभिश्च तत्सिद्धिरित्यर्थः ॥ २१ ॥

प्रत्यक्षाभावाद्धर्मासिद्धिरिति परस्य हेतुमाभासीकरोति।

न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात् ॥ २२ ॥

प्रत्यक्षाभावादसद्भाव इति नियमो नास्ति प्रमाणान्तरेणापि वस्तूनां विषयीकरणादित्यर्थः ॥ २२ ॥

धर्मवदधर्ममपि साधयति।

उभयत्राप्येवम् ॥ २३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्मवदधर्मेऽप्येवं प्रमाणानीत्यर्थः ॥ २३ ॥

अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ॥ २४ ॥

ननु विध्यन्यथानुपपत्तिरूपयार्थापत्त्या धर्मसिद्धिः सा च नास्त्यधर्मे इति कथं श्रौतलिङ्गातिदेशोऽधर्मे इति चेन्न यतः समानमुभयोर्धर्माधर्मयोर्लिङ्गमस्ति परदारान्न गच्छेदिति निषेधविध्यादेरेवाधर्मलिङ्गत्वादित्यर्थः ॥ २४ ॥

ननु धर्मादिकं चेत् स्वीकृतं तर्हि पुरुषाणां धर्मादिमत्त्वेन परिणामाद्यापत्तिरित्याशङ्कां परिहरति।

अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ॥ २५ ॥

आदिशब्देन वैशेषिकशास्त्रोक्ताः सर्वे आत्मविशेषगुणा गृह्यन्ते। न चैवं प्रलयेऽन्तःकरणाभावाद्धर्मादिकं क्व तिष्ठत्विति वाच्यम्। आकाशवदन्तःकरणस्यात्यन्तविनाशाभावात्। अन्तःकरणं हि कार्य्यकारणोभयरूपमिति प्रागेव व्याख्यातम्। अतः कारणावस्थे प्रकृत्यंशविशेषेऽन्तःकरणे धर्माधर्मसंस्कारादिकं तिष्ठतीति ॥ २५ ॥

स्यादेतत्। प्रकृतिकार्य्यवैचित्र्याच्छ्रुत्यादेश्च धर्मादिसिद्धिरिति यदुक्तं तदयुक्तम्। त्रिगुणात्मकप्रकृतेस्तत्कार्य्याणां च भवतां श्रुत्यैव बाधात्। साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। अथात आदेशो नेति नेति।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसं नित्यमगन्धवच्च यत्।

इत्यादिना। न निरोधो न चोत्पत्तिः। वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यादिना चेति। तदेतत् परिहरति।

गुणादीनां च नात्यन्तबाधः ॥ २६ ॥

गुणानां सत्त्वादीनां यद्धर्माणां च सुखादीनां तत्कार्य्या-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

णामपि महदादीनां स्वरूपतो नास्ति बाध: किन्तु संसर्गत एव चेतने बाधोऽयस्यौष्ण्यबाधवत्। तथा कालत एवावस्थादिभिर्बाधोगुणाद्यखिलपरिणामिन इत्यर्थ: ॥ २६ ॥

कुत: पुन: स्वरूपत एव बाधो न भवति स्वप्नमनोरथादिपदार्थवदित्याकाङ्क्षायामाह।

पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्ति: ॥ २७ ॥

अत्र विशिष्य पञ्चीकरणाय विवादविषयैकदेशस्य सुखमात्रस्य ग्रहणं सर्वविषयोपलक्षकम्। सुखादिसंवित्तिरिति पाठस्तु समीचीन:। पञ्चावयवाश्च न्यायस्य प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि तेषां योगान्मेलनात् सुखाद्यखिलपदार्थसिद्धिरित्यर्थ:। प्रयोगश्चायम्। सुखं सत्। अर्थक्रियाकारित्वात्। यद्यदर्थक्रियाकारि तत् तत् सत्। यथा चेतना:। पुलकादिरूपार्थक्रियाकारि च सुखं तस्मात् सदिति। चेतनानां चाविकारित्वेऽपि विषयप्रकाश एवार्थक्रियेति। नास्तिकं प्रति च व्यतिरेक्यनुमानं कर्त्तव्यं तत्र च शशशृङ्गादिर्दृष्टान्त इति ॥ २७ ॥

प्रत्यक्षातिरिक्तं प्रमाणमेव न भवति व्याप्यत्वाद्यसिद्धेरिति चार्वाक: पुन: शङ्कते।

न सकृद्ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धि: ॥ २८ ॥

सकृत् सहचारग्रहणात् सम्बन्धो व्याप्तिर्न सिध्यति भूयस्त्वं चाननुगतम्। अतो व्याप्तिग्रहासम्भवान्नानुमानेनार्थसिद्धिरित्यर्थ: ॥ २८ ॥

समाधत्ते।

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्ति: ॥ २९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्मसाहित्यं धर्मतायां साहित्यम्। सहचार इति यावत्। तथा चोभयोः साध्यसाधनयोरेकतरस्य साधनमात्रस्य वा नियतोऽव्यभिचरितो यः सहचारः स व्याप्तिरित्यर्थः। उभयोरिति समव्याप्तिपक्षे प्रोक्तं नियमश्चानुकूलतर्केण ग्राह्य इति न व्याप्तिग्रहासम्भव इति भावः॥ २९॥

व्याप्तिर्वक्ष्यमाणशक्त्यादिरूपं पदार्थान्तरं न भवतीत्याह।

न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः॥ ३०॥

नियतधर्मसाहित्यातिरिक्ता व्याप्तिर्न भवति व्याप्तित्वाश्रयस्य वस्तुनोऽपि कल्पनाप्रसङ्गात्। अस्माभिस्तु सिद्धवस्तुन एव व्याप्तित्वमात्रं क्लृप्तमित्यर्थः॥ ३०॥

परमतमाह।

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्य्याः॥ ३१॥

अपरे त्वाचार्य्या व्याप्यस्य स्वशक्तिजन्यं शक्तिविशेषरूपं तत्त्वान्तरमेव व्याप्तिरित्याहुः। निजशक्तिमात्रं तु यावद्द्रव्यस्थायितया न व्याप्तिः। देशान्तरगतस्य धूमस्यापि वह्न्यव्याप्यत्वात्। देशान्तरगमनेन च सा शक्तिर्नाश्यत इति नोक्तलक्षणेऽतिव्याप्तिः। स्वमते तूत्पत्तिकालावच्छिन्नत्वेन धूमो विशेषणीय इति भावः॥ ३१॥

आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः॥३२॥

बुद्ध्यादिषु प्रकृत्यादिव्याप्यताव्यवहारादाधारताशक्तिर्व्यापकताधेयताशक्तिमत्त्वं च व्याप्यत्वमिति पञ्चशिख इत्यर्थः॥ ३२॥

नन्वाधेयशक्तिः किमर्थं कल्प्यते व्याप्यस्य वस्तुनः स्वरूपशक्तिरेव व्याप्तिरस्तु तत्राह।

न स्वरूपशक्तिर्नियमः पुनर्वादप्रसक्तेः॥ ३३॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वरूपशक्तिस्तु नियमो व्याप्तिर्न भवति पौनरुक्त्यप्रसङ्गात्। घटः कलश इतिवद्बुद्धिर्व्याप्येत्यत्राप्यर्थाभेदेनेत्यर्थः। स्वरूपमिति वक्तव्ये शक्तिपदोपादानं व्याप्ते व्याप्यधर्मतोपपादनाय ॥ ३३ ॥

पौनरुक्त्यं स्वयमेव विवृणोति ।

विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः ॥ ३४ ॥

पूर्वसूत्र एव व्याख्यातप्रायमिदम् ॥ ३४ ॥

दूषणान्तरमाह ।

पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ॥ ३५ ॥

पल्लवादिषु वृक्षादिव्याप्यतास्ति स्वरूपशक्तिमात्रन्तु तस्य लक्षणं न सम्भवति। छिन्नपल्लवेऽपि स्वरूपशक्तेरनपायेन तदानीमपि व्याप्यतापत्तेरित्यर्थः। आधेयशक्तिस्तु छेदकाले विनष्टेति न तदानीं व्याप्तिरिति भावः ॥ ३५ ॥

ननु किं पञ्चशिखेन निजशक्त्युद्भवो व्याप्तिरेव नोच्यते तर्हि धूमस्य वह्न्याधेयत्वाभावादङ्गारव्याप्यतापत्तिरिति तत्राह ।

आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ॥ ३६ ॥

आधेयशक्तेर्व्याप्तित्वसिद्धौ निजशक्त्युद्भवोऽपि व्याप्तित्वेन सिद्ध एव समानन्यायात्। युक्तिसाम्यादित्यर्थः। अननुगमस्तु नानार्थशब्दवन्न दोषाय। एवं स्वमतेऽपि नानाविधसञ्चारा एव व्याप्तयो बोध्याः। न चैवमप्यनुमितिहेतुत्वे व्याप्तीनामननुगमः स्यादिति वाच्यम्। तृणारणिमण्यादिवत् कार्य्यगतवैजात्याद्युपपत्तेरिति। पञ्चावयवयोगादगुणादिसिद्धिरिति यदुक्तं तदुपपादनाय व्याप्तिनिर्वचनेनानुमानप्रामाण्ये बाधकमपास्तम् ॥ ३६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इदानीं पञ्चावयवरूपशब्दस्य ज्ञानजनकत्वोपपत्तये शब्द-शक्त्यादिनिर्वचनेन तदनुपपत्तिरूपं शब्दप्रामाण्ये परेषां बाधकमपास्यते।

वाच्यवाचकसम्बन्धः शब्दार्थयोः ॥३७॥

अर्थे वाच्यताख्या शक्तिः शब्दे वाचकताख्या शक्तिरस्ति सैव तयोः सम्बन्धोऽनुयोगितावत्। तज्ज्ञानाच्छब्देनार्थोपस्थितिरित्यर्थः॥ ३७॥

शक्तिग्राहकान्याह।

त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः॥ ३८॥

आप्तोपदेशो वृद्धव्यवहारः प्रसिद्धपदसामानाधिकरण्यम्। इत्येतैस्त्रिभिरुक्तसम्बन्धो गृह्यत इत्यर्थः॥ ३८॥

न कार्य्ये नियम उभयथा दर्शनात्॥३९॥

स च शक्तिग्रहः कार्य्य एव भवतीति नियमो नास्ति लोके कार्य्यवदकार्य्येऽपि वृद्धव्यवहारादिदर्शनादित्यर्थः। यथाहि गामानयेत्यादिकार्य्यपरवाक्याद्वृद्धस्य गवानयनादिव्यवहारो दृश्यते। एवमेव पुत्रस्ते जात इत्यादिसिद्धपरवाक्यादपि पुलकादिव्यवहारो दृश्यत इति। सिद्धार्थशब्दप्रामाण्यसिद्धौ च विवेके वेदान्तप्रामाण्यं सिद्धमित्याशयः॥३९॥

ननु भवतु लोके सिद्धे शक्तिग्रहोऽर्थप्रत्ययादिदर्शनात्। वेदे तु कथं भविष्यत्यकार्य्यबोधनवैयर्थ्यादिति तत्राह।

लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः॥ ४०॥

लोके शब्दशक्तिव्युत्पन्नस्य पुरुषस्य तदनुसारेणैव वेदार्थप्रतीतिः। न हि लोके शक्तिभिन्ना वेदे च भिन्ना य एव लौकिकास्त एव वैदिका इति न्यायात्। अतो लोके सिद्धार्थपरत्वसिद्धौ वेदेऽपि तत् सिध्यतीत्यर्थः॥ ४०॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अत्र शङ्कते ।

न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद्वेदस्य तदर्थस्याप्यतीन्द्रियत्वात् ॥ ४१ ॥

ननु त्रिभिराप्तोपदेशादिभिर्वेदशब्देन शक्तिग्रहः सम्भवति वेदस्यापौरुषेयत्वे न तदर्थेष्वाप्तोपदेशासम्भवात् । तथा वेदार्थस्यातीन्द्रियतया तत्र वृद्धव्यवहारस्य प्रसिद्धपदसामानाधिकरण्यस्य च ग्रहीतुमशक्यत्वादित्यर्थः ॥ ४१ ॥

तत्रातीन्द्रियार्थत्वमादौ निराकरोति ।

न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ॥४२॥

यदुक्तं तन्न । यतो देवतोद्देश्यकद्रव्यत्यागादिरूपस्य यज्ञदानादेः स्वरूपत एव धर्मत्वं वेदविहितत्वं वैशिष्ट्यात् प्रकृष्टफलकत्वात् । यज्ञादिकं चेच्छादिरूपत्वान्नातीन्द्रियम् । न तु यज्ञादिविषयकापूर्वस्य धर्मत्वं येन वेदविहितस्यातीन्द्रियता स्यादित्यर्थः । ननु तथापि देवताद्यतीन्द्रियार्थघटितत्वमस्तीति चेन्न । अतीन्द्रियेष्वपि पदार्थतावच्छेदकेन सामान्यरूपेण प्रतीतेर्वक्ष्यमाणत्वादिति ॥ ४२ ॥

यच्चोक्तमपौरुषेयत्वे नाप्तोपदेशाभाव इति तदपि निराकरोति ।

निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ॥ ४३ ॥

अपौरुषेयत्वेऽपि वेदानां स्वाभाविकी यार्थेषु शक्तिरस्ति सैवाप्तैर्वृद्धपरम्पराभिर्व्युत्पत्त्यास्य शब्दस्यायमर्थ इत्येवंरूपया व्यवच्छिद्यते शिष्येभ्योऽर्थान्तराद्व्यावर्त्योपदिश्यते न त्वाधुनिकशब्दवत् स्वयं सङ्केत्यते येन पौरुषेयत्वापेक्षा स्यादित्यर्थः ॥ ४३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ननु तथाप्यतीन्द्रियदेवताफलादिषु कथं शक्तिग्रहो वैदिकपदानां स्यात् तत्राह ।

योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ॥ ४४ ॥

प्रत्यक्षाप्रत्यक्षेषु पदार्थेषु सामान्यधर्मपुरस्कारेण तत्सिद्धिः शक्तिग्रहो भवति साधारण्येन पदानां प्रतीतिजनकत्वस्यानुभवसिद्धत्वात् । विशेषस्त्वतीन्द्रियोऽपूर्व एव वाक्यार्थो न च तस्य ग्रहणं प्रागपेक्ष्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

शब्दप्रामाण्यप्रसङ्गेनैव शब्दगतं विशेषमवधारयति ।

न नित्यत्वं वेदानां कार्य्यत्वश्रुतेः ॥ ४५ ॥

स तपोऽतप्यत तस्मात् तपस्तेपानात् त्रयो वेदा अजायन्तेत्यादिश्रुतेर्वेदानां न नित्यत्वमित्यर्थः । वेदनित्यतावाक्यानि च सजातीयानुपूर्वीप्रवाहानुच्छेदपराणि ॥ ४५ ॥

तर्हि किं पौरुषेया वेदा नेत्याह ।

न पौरुषेयत्वं तत्कर्त्तुः पुरुषस्याभावात् ॥४६॥

ईश्वरप्रतिषेधादिति शेषः । सुगमम् ॥ ४६ ॥

अपरः कर्त्ता भवत्वित्याकाङ्क्षायामाह ।

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ॥ ४७ ॥

जीवन्मुक्तधुरीणो विष्णुर्विशुद्धसत्त्वतया निरतिशयसर्वज्ञोऽपि वीतरागत्वात् सहस्रशाखवेदनिर्माणायोग्यः । अमुक्तस्त्वसर्वज्ञत्वादेवायोग्य इत्यर्थः ॥ ४७ ॥

नन्वेवमपौरुषेयत्वान्नित्यत्वमेवागतं तत्राह ।

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ॥४८॥

स्पष्टम् ॥ ४८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नन्वङ्कुरादिष्वपि कार्य्यत्वेन घटादिवत् पौरुषेयत्वमनुमेयं तत्राह ।

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ॥४९॥

यत् पौरुषेयं तच्छरीरजन्यमिति व्याप्तिर्लोके दृष्टा तस्या-बाधादिरेवं सति स्यादित्यर्थः ॥ ४९ ॥

नन्वादिपुरुषोच्चरितत्वाद्वेदा अपि पौरुषेया एवेत्याह ।

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरु-षेयम् ॥ ५० ॥

दृष्ट इवादृष्टेऽपि यस्मिन् वस्तुनि कृतबुद्धिर्बुद्धिपूर्वकत्वबुद्धि-र्जायते तदेव पौरुषेयमिति व्यवह्रियत इत्यर्थः। एतदुक्तं भवति न पुरुषोच्चरिततामात्रेण पौरुषेयत्वं श्वासप्रश्वासयोः सुषुप्तिकालीनयोः पौरुषेयत्वव्यवहाराभावात् । किन्तु बुद्धि-पूर्वकत्वेन वेदास्तु निःश्वासवदेवादृष्टवशादबुद्धिपूर्वका एव स्वयम्भुवः सकाशात् स्वयं भवन्ति । अतो न ते पौरुषेयाः। तथा च श्रुतिः ॥ तस्यैतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्य-दृग्वेद इत्यादिरिति ॥ ५० ॥

नन्वेवं यथार्थवाक्यार्थज्ञानपूर्वकत्वाच्छुकवाक्यस्येव वेदा-नामपि प्रामाण्यं न स्यात् तत्राह ।

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ॥५१॥

वेदानां निजा स्वाभाविकी या यथार्थज्ञानजननशक्ति-स्तस्या मन्त्रायुर्वेदादावभिव्यक्तेरुपलम्भादखिलवेदानामेव स्वत एव प्रामाण्यं सिध्यति न वक्तृयथार्थज्ञानमूलकत्वादिनेत्यर्थः । तथा च न्यायसूत्रम् । मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्य-मिति। गुणादीनाञ्च नात्यन्तबाध इति प्रतिज्ञायां न्यायेन सुखादिसिद्धेरित्येको हेतुरुपन्यस्तः प्रपञ्चितश्च ॥ ५१ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साम्प्रतं तस्यामेव हेत्वन्तरमाह।

नासतः ख्यानं नृश्टङ्गवत् ॥ ५२ ॥

आस्तां तावत् पञ्चावयवेन सुखादिसिद्धिः। ज्ञानमात्रादपि तन्सिद्धिः। अत्यन्तासत्त्वे सुखादीनां ज्ञानमेव नोपपद्यते नरश्टङ्गादीनामभानादित्यर्थः। तथा च ब्रह्मसूत्रम्। नाभाव उपलब्धेरिति। शुक्तिरजतस्वप्नमनोरथादौ च मनःपरिणामरूप एवार्थः प्रतीयते नात्यन्तासन्निति वक्ष्यति ॥ ५२ ॥

नन्वेवं गुणादिरत्यन्तं सन्नेव भवतु तथा च नात्यन्तबाध इत्यन्तपदवैयर्थ्यमिति तत्राह।

न सतो बाधदर्शनात् ॥ ५३ ॥

अत्यन्तसतोऽपि गुणादेर्भानं न युक्तम्। विनाशादिकाले बाधदर्शनात्। चैतन्ये भासमानस्य जगतश्चैतन्य एव बाधदर्शनाच्च। अथात आदेशो नेति नेति नेह नानास्ति किञ्चन यत्र देवा न देवा माता न मातेत्यादिश्रुतिभिर्न्यायैश्चेत्यर्थः ॥ ५३ ॥

नन्वेवमपि सदसद्भ्यां भिन्नमेव जगद्भवतु तथाप्यत्यन्तबाधप्रतिषेधोपपत्तिरिति तत्राह।

नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ॥ ५४ ॥

सत्त्वेनासत्त्वेन चानिर्वचनीयं तादृशस्यापि भानं न घटते तदभावात्। सदसद्भिन्नवस्तुप्रसिद्धेरित्यर्थः। दृष्टानुसारेणैव कल्पनाया औचित्यादिति भावः ॥ ५४ ॥

नन्वेवं किमन्यथाख्यातिरेवेष्टा नेत्याह।

नान्यथाख्यातिः स्ववचोव्याघातात् ॥ ५५ ॥

अन्यद्वस्त्वन्यरूपेण भासत इत्यपि न युक्तं स्ववचो व्याघा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वात्। अन्यत्रान्यरूपस्य नृश्वृङ्गतुल्यत्वमन्यथा शब्देनोच्यते-ऽन्यथा च तस्य भानमुच्यत इति स्ववच एव व्याहतम्। असतो भानासम्भवस्यान्यथाख्यातिवादिभिरपि वचनादित्यर्थः। पुरोवर्त्तिन्यसत्त्वेऽन्यत्र तत्सत्ताया भानाप्रयोजकत्वमिति भावः। न च सर्वत्रासतो भाने सामग्री न सम्भवति सन्निकर्षाद्यभावादित्यतः क्वचित् सत्तामात्रमपेक्ष्यत इति वाच्यम्। अनादिवासनाधाराया एव भ्रमहेतुत्वसम्भवादिति ॥ ५५ ॥

नात्यन्तबाध इति पूर्वोक्तं विवृण्वानः स्वसिद्धान्तमुपसंहरति।

सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात् ॥ ५६ ॥

सदसत्ख्यातिरेव सर्वेषां गुणादीनां कुतो बाधाबाधात् तत्र स्वरूपेणाबाधः सर्ववस्तूनां नित्यत्वात् संसर्गतस्तु बाधः सर्ववस्तूनां चैतन्येऽस्ति यथा पटादिषु लौहित्यादेस्तद्वत्। तथावस्थाभिरपि बाधोऽखिलपरिणामिनां कालादिष्वित्यर्थः। बाधश्च प्रतिपन्नधर्मिणि निषेधबुद्धिविषयत्वम्। असत्त्वस्वभावः सोऽप्यधिकरणस्वरूप इति। न च सदसत्त्वयोर्विरोध इति वाच्यम्। प्रकारभेदेनाविरोधात्। यथाहि लौहित्यं विम्बरूपेण सत्स्फटिकगतप्रतिविम्बरूपेण चासदिति दृष्टम्। यथा वा रजतं वणिग्वीथीस्थरूपेण सच्छुक्त्यध्यस्तरूपेण चासत् तथैव सर्वं जगत् स्वरूपतः सत् चैतन्यादावध्यस्तरूपेण चासदिति। तदुक्तम्।

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्त्तते।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥

इति। एवमेवावस्थाभेदेनापि सदसत्त्वमविरुद्धम्। यथाहि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृक्षादिः प्ररूढ़ाद्यवस्थाभिः सन्नप्यङ्कुराद्यवस्थाभिरसन् भवति तथैव प्रकृत्यादिकं सदसदात्मकमिति । तदुक्तम् ।

अव्यक्तं कारणं यत् तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥

इति । एतच्चास्माभिर्ब्रह्ममीमांसाभाष्ये योगवार्त्तिके च प्रपञ्चितमिति दिक् ॥ ५६ ॥

अयं विचारः पर्य्याप्त इदानीं शब्दविचारः प्रसङ्गागत आगन्तुकतयान्ते प्रस्तूयते ।

प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः ॥५७॥

प्रत्येकवर्णेभ्योऽतिरिक्तं कलश इत्यादिरूपमखण्डमेकपदं स्फोट इति योगैरभ्युपगम्यते कम्बुग्रीवाद्यवयवेभ्योऽतिरिक्तो घटाद्यवयवीव स च शब्दविशेषः पदाख्योऽर्थस्फुटीकरणात् स्फोट इत्युच्यते स शब्दोऽप्रामाणिकः । कुतः प्रतीत्यप्रतीतिभ्याम् । स शब्दः किं प्रतीयते न वा । आद्ये येन वर्णसमुदायेनानुपूर्वीविशेषविशिष्टेन सोऽभिव्यज्यते तस्यैवार्थप्रत्यायकत्वमस्तु किमन्तर्गडुना तेन । अन्त्ये त्वज्ञातस्फोटस्य नास्त्यर्थप्रत्यायनशक्तिरिति व्यर्था स्फोटकल्पनेत्यर्थः ॥ ५७ ॥

पूर्वं वेदानां नित्यत्वं प्रतिषिद्धमिदानीं वर्णनित्यत्वमपि प्रतिषेधति ।

न शब्दनित्यत्वं कार्य्यताप्रतीतेः ॥ ५८ ॥

स एवायं गकार इत्यादिप्रत्यभिज्ञाबलाद्वर्णनित्यत्वं न युक्तम् । उत्पन्नो गकार इत्यादिप्रत्ययेनानित्यत्वसिद्धेरित्यर्थः । प्रत्यभिज्ञा च तज्जातीयताविषयिणी । अन्यथा घटादेरपि प्रत्यभिज्ञया नित्यतापत्तेरिति ॥ ५८ ॥

शङ्कते ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ॥५९॥

ननु पूर्वसिद्धसत्ताकस्यैव शब्दस्य ध्वन्यादिभिर्याभिव्यक्ति-स्तन्मात्रमुत्पत्तिः प्रतीतेर्विषयः। अभिव्यक्तौ दृष्टान्तो दीपेनेव घटस्येति ॥ ५९ ॥

परिहरति।

सत्कार्य्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ॥६०॥

अभिव्यक्तिर्यद्यनागतावस्थात्यागेन वर्त्तमानावस्थालाभ इत्युच्यते तदा सत्कार्य्यसिद्धान्तः। तादृशनित्यत्वं च सर्व-कार्य्याणामिवेति सिद्धसाधनमित्यर्थः। यदि च वर्त्तमानतया सत एव ज्ञानमात्ररूपिण्यभिव्यक्तिरुच्यते तदा घटादीनामपि नित्यतापत्तिः। कारणव्यापारेण ज्ञानस्यैवोत्पत्तिप्रतीतिविषयत्वौचित्यादिति भावः ॥ ६० ॥

आत्माद्वैते पूर्वानुक्तमपि बाधकमुपन्यसनीयमित्येतदर्थमात्माद्वैतनिरासः पुनरारभ्यते।

नाद्वैतमात्मनो लिङ्गात् तद्भेदप्रतीतेः ॥६१॥

यद्यप्यात्मनामन्योऽन्यं भेदवाक्यवदभेदवाक्यान्यपि सन्ति तथापि नाद्वैतं नात्यन्तमभेदः। अजादिवाक्यस्थैः प्रकृतित्यागात्यागादिलिङ्गैर्भेदस्यैव सिद्धेरित्यर्थः। न ह्यत्यन्ताभेदे तानि लिङ्गान्युपपद्यन्ते। अभेदवाक्यानि तु साम्यादिश्रुत्येकवाक्यतया वैधर्म्यादिलक्षणाभेदपरतयोपपद्यन्ते। अभिमानादिनिवृत्त्यन्यथानुपपत्त्यापि तत्परत्वावधारणाच्चेति ॥ ६१ ॥

आत्मनामभेदे लिङ्गं बाधकमुक्तम्। आत्मैवेदं सर्वं ब्रह्मैवेदं सर्वमिति श्रुत्यात्मनोऽनात्मभिरद्वैते तु प्रत्यक्षमपि बाधकमस्तीत्याह।

नानात्मनापि प्रत्यक्षबाधात् ॥ ६२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनात्मनापि भोग्यप्रपञ्चेनात्मनो नाद्वैतं प्रत्यक्षेणापि बाधात् । आत्मनः सर्वभोग्याभेदे घटपटयोरप्यभेदः स्यात् । घटादेः पटाद्यभिन्नात्माभेदात् । स च भेदग्राहकप्रत्यक्षबाधित इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

शिष्यबुद्धिवैशद्याय प्राप्तमप्यर्थं विशदयति ।

नोभाभ्यां तेनैव ॥ ६३ ॥

उभाभ्यां समुच्चिताभ्यामप्यात्मनात्मभ्यां नात्यन्ताभेदस्तेनैव हेतुद्वयेनेत्यर्थः ॥ ६३ ॥

नन्वेवमात्मैवेदमित्यादिश्रुतीनां का गतिरिति तत्राह ।

अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ॥ ६४ ॥

अविवेकानामविवेकिपुरुषान् प्रति तत्राद्वैतेऽन्यपरत्वमुपासनार्थकानुवाद इत्यर्थः । लोके हि शरीरशरीरिणोर्भोग्यभोक्त्रोश्चाविवेकेनाभेदो व्यवह्रियतेऽहं गौरो ममात्मा भद्रसेन इत्यादिः । अतस्तमेव व्यवहारमनूद्य तानेव प्रति तथोपासनां श्रुतिर्विदधाति सत्त्वशुद्ध्याद्यर्थमिति । अत एव परमार्थदशायामुपास्यानामात्मत्वं प्रतिषेधति श्रुतिः ।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

इत्यादिनेति ॥ ६४ ॥

एकात्मवादिनां जगदुपादानकारणमपि न सम्भवतीत्याह ।

नात्माविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं निःसङ्गत्वात् ॥ ६५ ॥

केवल आत्मा आत्माश्रिता वाविद्या समुच्चितं वा कपालद्वयवदुभयं न जगदुपादानं सम्भवति । आत्मनोऽसङ्गत्वात् । सङ्गाख्यो हि यः संयोगविशेषस्तेनैव द्रव्याणां विकारो भवति ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतोऽसङ्गत्वात् केवलस्यात्मनोऽद्वितीयस्य नोपादानत्वं नाविद्याद्वारापि सम्भवति। असङ्गत्वेनाविद्यायोगस्य प्रागेव निरस्तत्वात्। प्रत्येकोपादानत्ववदेवोभयोपादानत्वमप्यसङ्गत्वादेवासम्भवीत्यर्थः। यदि चाविद्या द्रव्यरूपा पुरुषाश्रिता गगने वायुवदिष्यते तदात्माद्वैतहानिः। तथा प्रकृतिरेव सेति सिद्धसाधनं च। तादृशं चाविभागेनाद्वैतमस्माकमपीष्टमेव। सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेत्यादिश्रुत्यापि चाविभागरूपमेवाद्वैतं प्रतिपाद्यते। न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत् पश्येदिति श्रुत्यन्तरात्। तथा चोक्तम्।

आसीज्ज्ञानमयोऽप्यर्थ एकमेवाविकल्पितम्।
तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिस्त्वोभयात्मिका॥
ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते।

इति। अविकल्पितमविभक्तम्। तस्माद्वेदान्तानामखण्डात्माद्वैतं नार्थः। तथाप्याधुनिका वेदान्तिनोऽत्यपूर्वपक्षजातमेव ब्रह्ममीमांसासिद्धान्ततया कल्पयन्ति। तत् तु ब्रह्मसूत्राननुकत्वेन प्रत्युत तद्विरोधेन चास्माभिस्तत्रैव निराकृतमिति। अत्र च ब्रह्ममीमांसासिद्धान्तो न दूष्यते। अपि तु वेदान्तेष्वापाततः सम्भावितोऽर्थ एव निराक्रियत इति स्मर्त्तव्यम्। एवमुत्तरसूत्रेष्वपि॥ ६५॥

प्रकाशस्वरूप आत्मेति स्वयं सिद्धान्तितं तत्र सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेति श्रुतेरानन्दोऽप्यात्मनः स्वरूपमिति पूर्वपक्षं निराकरोति।

नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात्॥६६॥

एकधर्मिण आनन्दचैतन्योभयरूपत्वं न भवति दुःखज्ञान-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काले सुखाननुभवेन सुखज्ञानयोर्भेदादित्यर्थः। न च ज्ञानविशेषः सुखमिति वक्तुं शक्यते। आत्मस्वरूपज्ञानस्याखण्डत्वात्। अत एव चैतन्यानुभवकाले सुखस्यावरणमपि वक्तुं न शक्यते। अखण्डत्वेनानन्दावरणे दुःखं जानामीत्यनुभवानुपपत्तेः। न ह्यात्मनोऽशभेदोऽस्ति येनानन्दांशावरणेऽपि चैतन्यांशो मायादिति। न च श्रुतिबलेनैतेऽसत्तर्का इति वाच्यम्। नानन्दं न निरानन्दमित्यादिश्रुत्या दुःखमसुखं ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकमित्यादिस्मृत्या चानन्दाभावस्यापि प्रतिपादितत्वेन तर्कस्यैवावादात्तव्यत्वादिति ॥ ६६ ॥

नन्वेवमानन्दरूपताश्रुतेः का गतिस्तत्राह।

दुःखनिवृत्तिर्गौणः ॥ ६७ ॥

दुःखनिवृत्त्यात्मनि श्रौत आनन्दशब्दो गौण इत्यर्थः। तदुक्तम्। सुखं दुःखसुखात्यय इति। न निरानन्दमिति श्रुतिश्चौपाधिकानन्दपरा सत्यसङ्कल्पत्वादिश्रुतिवदिति। यत् तु निरुपाधिप्रियत्वेनात्मनः सुखरूपत्वानुमानं कश्चिदाह। तन्न। दुःखाभावरूपतयापि प्रेमोपपत्तेः। सुखत्वादिवदात्मत्वस्यापि प्रेमप्रयोजकत्वाच्च। अन्यथा परसुखेऽपि प्रेमापत्तेरिति ॥ ६७ ॥

गौणप्रयोगे वीजमाह।

विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ॥ ६८ ॥

मन्दानज्ञान् प्रति दुःखनिवृत्तिरूपामात्मस्वरूपमुक्तिं सुखत्वेन श्रुतिः स्तौति प्ररोचनार्थमित्यर्थः ॥ ६८ ॥

अन्तःकरणोपपत्तेः पूर्वोक्ताया आञ्जस्येनोपपत्तये मनोवैभवपूर्वपक्षमपाकरोति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा वास्यादिवत् चक्षुरादिवत् ॥ ६९ ॥

मनसोऽन्तःकरणसामान्यस्य न विभुत्वं करणत्वात् । वास्यादिवत् । वाशब्दो व्यवस्थितविकल्पे । इन्द्रियत्वादप्यन्तःकरणविशेषस्य तृतीयस्य न विभुत्वमित्यर्थः । देहव्यापिज्ञानादिकं तु मध्यमपरिमाणेनैवोपपद्यत इति ॥ ६९ ॥

अत्राप्रयोजकत्वशङ्कायामनुकूलतर्कमाह ।

सक्रियत्वाद्गतिश्रुतेः ॥ ७० ॥

आत्मनो लोकान्तरगमनश्रवणेन तदुपाधिभूतस्यान्तःकरणस्य सक्रियत्वसिद्धेर्न विभुत्वं सम्भवतीत्यर्थः ॥ ७० ॥

कार्य्यत्वोपपत्तये मनसो निरवयवत्वमपि निराकरोति ।

न निर्भागत्वं तद्योगाद्घटवत् ॥ ७१ ॥

तच्छब्दः पूर्वसूत्रस्थेन्द्रियं परामृशति । मनसो न निरवयवत्वम् । अनेकेन्द्रियेष्वेकदा योगात् । किन्तु घटवन्मध्यमपरिमाणं सावयवमित्यर्थः । कारणावस्थं चान्तःकरणमणवेवेति बोध्यम् ॥ ७१ ॥

मनःकालादीनां नित्यत्वं प्रतिषेधति ।

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ॥ ७२ ॥

सुगमम् । कारणावस्थं चान्तःकरणाकाशादिकं प्रकृतिरेवोच्यते । न तु मन आदिकं व्यवसायाद्यसाधारणधर्माभावात् ॥ ७२ ॥

ननु ।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
अस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इत्यादिश्रुतिभिः पुम्प्रकृत्योरपि सावयवत्वादनित्यत्वमिति तत्राह ।

न भागलाभो भोगिनो निर्भागत्वश्रुतेः ॥७३॥

भोगिनः पुरुषस्य प्रधानस्य चावयवो न युज्यते निरवयवत्वश्रुतेः ।

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।

इत्यादिनेत्यर्थः । उक्तश्रुतिश्चाकाशजलयोरिव पितापुत्रचेतनयोरिव च विभागमात्रेणांशांशिभावं बोधयतीति ॥७३॥

दुःखनिवृत्तिर्मोक्ष इत्युक्तं तदवधारणाय तत्र मोक्षे परेषां मतानि निराकरोति ।

नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात् ॥ ७४ ॥

आत्मन्यानन्दरूपोऽभिव्यक्तिरूपश्च धर्मो नास्ति स्वरूपं च नित्यमेवेति न साधनसाध्यम् । अतो नानन्दाभिव्यक्तिर्मोक्ष इत्यर्थः ॥ ७४ ॥

न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ॥ ७५ ॥

अशेषविशेषगुणोच्छेदोऽपि न मुक्तिस्तद्वत् निर्धर्मत्वादेवेत्यर्थः । ननु तर्हि दुःखनिवृत्तिरेव कथं मोक्ष उक्तो दुःखाभावस्यापि धर्मत्वादिति चेन्न । अस्माभिर्भोग्यतासम्बन्धेनैव दुःखाभावस्य पुरुषार्थतावचनादिति ॥ ७५ ॥

न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ॥ ७६ ॥

ब्रह्मलोकगतिरपि न मोक्षः । आत्मनो निष्क्रियत्वेन गत्यभावात् । लिङ्गशरीराभ्युपगमे च न मोक्षो घटत इत्यर्थः ॥ ७६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ॥ ७७ ॥

क्षणिकज्ञानमेवात्मा तस्य विषयाकारता बन्धस्तद्वासनाख्योपरागस्य नाशो मोक्ष इति यन्नास्तिकमतं तदपि न क्षणिकत्वादिदोषेण मोक्षस्यापुरुषार्थत्वादित्यर्थः ॥ ७७ ॥

नास्तिकस्यैव मुक्त्यन्तरं दूषयति ।

न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ॥७८॥

ज्ञानरूपस्यात्मनः सामग्र्येणैवोच्छित्तिरपि न मोक्षः । आत्मनाशस्य लोके पुरुषार्थत्वादर्शनादिभ्य इत्यर्थः ॥ ७८ ॥

एवं शून्यमपि ॥ ७९ ॥

ज्ञाने ज्ञेयात्मकाखिलप्रपञ्चनाशोऽप्येवमात्मनाशेनापुरुषार्थत्वान्न मोक्ष इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

संयोगाश्च वियोगान्ता इति न देशादिलाभोऽपि ॥ ८० ॥

प्रकृष्टदेशधनाङ्गनादिस्वाम्यमपि न मोक्षो यतः ।

संयोगाश्च वियोगान्ता मरणान्तं च जीवनम् ।

इति श्रूयत इत्यर्थः । तथा च विनाशित्वात् स्वाम्यं न मुक्तिरिति ॥ ८० ॥

न भागियोगो भागस्य ॥ ८१ ॥

भागस्यांशस्य जीवस्य भागिनि अंशिनि परमात्मनि लयो न मोक्षः । संयोगा हि वियोगान्ता इत्युक्तहेतोः । ईश्वरानभ्युपगमाच्च । तथा स्वलयस्यापुरुषार्थत्वाच्चेत्यर्थः ॥ ८१ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यंभावित्वात् तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ॥ ८२ ॥

अणिमाद्यैश्वर्य्यसम्बन्धोऽपि न मुक्तिः। ऐश्वर्य्यान्तरसम्बन्धवदेव तस्याप्युच्छेदनियमादित्यर्थः ॥ ८२ ॥

नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ॥ ८३ ॥

इन्द्राद्यैश्वर्य्यलाभोऽपि न मुक्तिरितरैश्वर्य्यवत् चयिष्णुत्वादित्यर्थः ॥ ८३ ॥

इन्द्रियाणामाहङ्कारिकत्वं यदुक्तं तत्र परविप्रतिपत्तिं निराकरोति।

न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहङ्कारिकत्वश्रुतेः ॥ ८४ ॥

सुगमा योजना। पूर्वं चैतद्व्याख्यातम् ॥ ८४ ॥

प्रकृत्यादिकमपि तत्त्वमस्तीत्याशयेन परेषां पदार्थप्रतिनियमं तन्मात्रज्ञानान्मुक्तिं च निराकरोति।

न षट्पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ॥ ८५ ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवाया एव पदार्था इति यद्वैशेषिकाणां नियमो यश्च तज्ज्ञानान्मोक्ष इत्यभ्युपगमः। सोऽप्रामाणिकः। प्रकृत्याद्यतिरेकात्। पृथिव्यादिनवद्रव्येभ्यः प्रकृतेरतिरिक्तत्वेत्यर्थः। गन्धादिमत्त्वेनैव हि पृथिव्यादिव्यवहारो गन्धादिश्च साम्यावस्थायां नास्ति। अतः पृथिवीत्वादिजातिरपि घटत्वादिवत् कार्य्यमात्रवृत्तिरिति। तदुक्तम्।

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि-
र्नासीत् तमो ज्योतिरभून्न चान्यत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दादिवुद्ध्याद्युपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥

इति ॥ ८५ ॥

षोड़शादिष्वप्येवम् ॥ ८६ ॥

न्यायपाशुपतादिमतेषु षोडशादिष्वपि न नियमो न वा तन्मात्रज्ञानान्मुक्तिः। उक्तरूपेण पदार्थाधिक्यादित्यर्थः। अस्म-न्मते तु नित्यं पदार्थद्वयमेव। नित्यानित्यसाधारणास्तु पदार्थाः पञ्चविंशतिरेवेति नियमः। पञ्चविंशतिद्रव्येष्वेव गुण-कर्मसामान्यशक्त्यादीनामन्तर्भाव इति ॥ ८६ ॥

पञ्चभूतानां पूर्वोक्तकार्य्यत्वोपपत्त्यर्थं वैशेषिकाद्यभ्युपगतं पार्थिवाद्यणुनित्यत्वमपाकरोति।

नाणुनित्यता तत्कार्य्यत्वश्रुतेः ॥ ८७ ॥

पृथिव्याद्यणूनां नित्यता नास्ति तेषामणूनामपि कार्य्यत्व-श्रुतेरित्यर्थः। यद्यप्यस्माभिः सा श्रुतिर्न दृश्यते कालनुप्तत्वा-दिना तथाप्याचार्य्यवाक्यान्मनुस्मरणाच्चानुमेया। यथा मनुः।

अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां च याः स्मृताः।
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः।

इति। दशार्द्धानां पृथिव्यादिपञ्चभूतानाम्। न चात्र वाक्येऽणुशब्देन द्व्यणुकाद्येव ग्राह्यमिति वाच्यम्। सङ्कोचे प्रमाणाभावादिति। अत्राणुशब्दो भूतपरमाणुपर एव। वैशे-षिकाद्यभिमतं च तस्य नित्यत्वमनेन सूत्रेण निराक्रियते। न त्वणुपरिमाणद्रव्यसामान्यस्य नित्यत्वं रजोगुणस्य चाञ्चल्या-नुरोधेनाणुत्वसिद्धेः। मध्यमपरिमाणत्वे नित्यत्वस्य विभुत्वे च क्रियाया अनुपपत्तेरिति ॥ ८७ ॥

ननु निरवयवस्य परमाणोः कथं कार्य्यत्वं घटते तत्राह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न निर्भागत्वं कार्य्यत्वात् ॥ ८८ ॥

श्रुतिसिद्धकार्य्यत्वान्यथानुपपत्त्या पृथिव्याद्यणूनां न निरवयवत्वमित्यर्थः। अत एव तन्मात्राख्यसूक्ष्मद्रव्याख्येव पार्थिवाद्यणूनामवयवा इति पातञ्जलभाष्ये व्यासदेवैः प्रतिपादितम्। पृथिवीपरमाणुजलपरमाणुरित्यादिव्यवहारस्तु पृथिव्यादीनामपकर्षकाष्ठाभिप्रायेणैव। अतः प्रकृतिपर्य्यन्तमणुत्वेऽपि न च्यतिरिति। यद्यपि तन्मात्रेष्वपि गन्धाद्यस्ति तथापि तस्याप्रत्यक्षतया न पृथिवीत्वादिनियामकत्वम्। व्यङ्ग्यगन्धादेरेव पृथिवीत्वादिसिद्धेः। अतो न तन्मात्राणि पृथिव्यादयः। तेषु च सूक्ष्मभूतव्यवहारो भूतसाक्षात्कारणत्वादिनैवेत्यपि बोध्यम् ॥ ८८ ॥

प्रकृतिपुरुषसाक्षात्कारो न सम्भवति रूपस्य द्रव्यसाक्षात्कारहेतुत्वादिति नास्तिकाक्षेपं निराकरोति।

न रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षनियमः ॥ ८९ ॥

रूपादेव निमित्तात् प्रत्यक्षतेति नियमो नास्ति। धर्मादिनापि साक्षात्कारसम्भवादित्यर्थः। व्यञ्जकानियमस्याञ्जनादौ दृष्टत्वेनादोषत्वात्। अतो वह्निद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षं प्रत्येवोद्भूतरूपं व्यञ्जकमिति भावः ॥ ८९ ॥

नन्वेवं किमणुपरिमाणं वस्त्वस्ति न वेत्याकाङ्क्षायां परिमाणनिर्णयं करोति।

न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगात् ॥९०॥

अणु महद्दीर्घं ह्रस्वमिति परिमाणचातुर्विध्यं नास्ति। द्वैविध्यं तु वर्त्तत एव। द्वाभ्यां तद्योगात्। द्वाभ्यामिवाणुमहत्परिमाणाभ्यां चातुर्विध्यसम्भवादित्यर्थः। महत्परिमाणस्यावान्तरभेदावेव हि ह्रस्वदीर्घौ। अन्यथा वक्रादिरूपैः परि-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माणानन्त्यप्रसङ्गादिति। तत्रास्मन्नयेऽणुपरिमाणमाकाशस्य कारणं गुणविशेषं वर्जयित्वा भूतेन्द्रियाणां मूलकारणेषु सत्त्वादिगुणेषु मन्तव्यम्। अन्यत्र यथायोग्यं मध्यमादिपरममहत्त्वान्तपरिमाणानि तानि च महत्त्वस्यैवावान्तरभेदा इति ॥९०॥

पुरुषैकत्वं सामान्येनेति कण्ठत एवोक्तं प्रकृतेरेकत्वं सामान्येनेत्यर्थादुक्तं तदर्थं सामान्येषु नास्तिकविप्रतिपत्तिं निराकरोति।

अनित्यत्वेऽपि स्थिरतायोगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य॥ ९१ ॥

व्यक्तीनामनित्यत्वेऽपि स एवायं घट इति स्थिरतायोगेन यत् प्रत्यभिज्ञानं तत् सामान्यस्य सामान्यविषयकमेव तत् प्रत्यभिज्ञानमित्यर्थः ॥९१ ॥

तस्मान्न सामान्यापलापो युक्त इत्याह।

न तदपलापस्तस्मात् ॥ ९२ ॥

सुगमम् ॥ ९२ ॥

नन्वेतद्व्यावृत्तिरूपेणाभावेनैव प्रत्यभिज्ञोपपादनीया सैव च सामान्यशब्दार्थोऽस्तु तत्राह।

नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः॥ ९३ ॥

स एवायमिति भावप्रत्ययान्निवृत्तिरूपत्वं न सामान्यस्येत्यर्थः। अन्यथा हि नायमघट इत्येव प्रतीयेत। किञ्चान्यव्यावृत्तिशब्दस्याघटव्यावृत्तिरित्यर्थो वाच्यः। तत्राघटत्वं घटसामान्यभिन्नत्वमिति सामान्याभ्युपगम एवापतित इति ॥९३॥

ननु सादृश्यनिबन्धना प्रत्यभिज्ञा भविष्यति तत्राह।

न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः ॥९४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भूयोऽवयवादिसामान्यादतिरिक्तं न सादृश्यमस्ति प्रत्यक्षत एव सामान्यरूपतयोपलम्भादित्यर्थः ॥ ९४ ॥

ननु स्वाभाविकी शक्तिरेव सादृश्यमस्तु न तु तत् सामान्यमित्याशङ्कामपाकरोति।

निजशक्त्यभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः ॥ ९५ ॥

वस्तुनः स्वाभाविकशक्तिविशेषोत्पादोऽपि न सादृश्यं शक्त्युपलब्धितः सादृश्योपलब्धेर्विलक्षणत्वात्। शक्तिज्ञानं हि नान्यधर्मिज्ञानसापेक्षं सादृश्यज्ञानं पुनः प्रतियोगिज्ञानमपेक्षतेऽभावज्ञानवदिति ज्ञानयोर्वैलक्षण्यमित्यर्थः। किञ्च धर्मिणः शक्तिसामान्यं न सादृश्यं बाल्यावस्थायामपि युवसादृश्यापत्तेः। किन्तु युवादिकालीनः शक्तिविशेषो युवादिसादृश्यमिति वक्तव्यं तथा च प्रतिव्यक्त्यनन्तशक्तिकल्पनापेक्षया सर्वव्यक्तिसाधारणैकसामान्यकल्पनैव युक्तेति ॥ ९५ ॥

ननु तथापि घटादिसंज्ञकत्वमेव घटादिव्यक्तीनां सादृश्यमस्तु तत्राह।

न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि ॥ ९६ ॥

यथोक्तः संज्ञासंज्ञिनोः सम्बन्धोऽपि न सादृश्यं वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेरेवेत्यर्थः। संज्ञासंज्ञिभावमजानतोऽपि सादृश्यज्ञानादिति ॥ ९६ ॥

अपिच।

न सम्बन्धनित्यतोभयानित्यत्वात् ॥ ९७ ॥

संज्ञासंज्ञिनोरनित्यत्वात् तत्सम्बन्धस्यापि न नित्यता। अतः कथं तेनातीतवस्तुसादृश्यं वर्त्तमानवस्तुनि स्यादित्यर्थः ॥ ९७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ननु सम्बन्ध्यनित्यत्वेऽपि सम्बन्धो नित्यः स्यात् किमत्र बाधकं तत्राह ।

नातः सम्बन्धो धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात् ॥९८॥

कादाचित्कविभागे सत्येव सम्बन्धः सिध्यति। अन्यथा वक्ष्यमाणरीत्या स्वरूपेणैवोपपत्तौ सम्बन्धकल्पनानवकाशात्। स च कादाचित्को विभागो न सम्बन्धिनित्यत्वे सम्भवति। अतः सम्बन्धग्राहकप्रमाणेनैव बाधान्न नित्यः सम्बन्ध इत्यर्थः ॥९८॥

नन्वेवं नित्ययोर्गुणगुणिनोर्नित्यः समवायो नोपपद्येत तत्राह ।

न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ॥ ९९ ॥

सुगमम् ॥ ९९ ॥

ननु वैशिष्ट्यप्रत्यक्षं विशिष्टबुद्ध्यन्यथानुपपत्तिश्च प्रमाणं तत्राह ।

उभयत्राप्यन्यथासिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ॥ १०० ॥

उभयत्रापि वैशिष्ट्यप्रत्यक्षे तदनुमाने च स्वरूपेणैवान्यथासिद्धेर्न तदुभयं समवाये प्रमाणमित्यर्थः। अयं भावः। यथा समवायवैशिष्ट्यबुद्धिः समवायस्वरूपेणैवेष्यतेऽनवस्थाभयादिति तत्र प्रत्यक्षानुमाने अन्यथासिद्धे। एवं गुणगुणिप्रभृतीनां विशिष्टबुद्धिरपि गुणादिस्वरूपेणैवेष्यताम्। अतस्तत्रापि प्रत्यक्षानुमाने अन्यथासिद्धे इति। नन्वेवं संयोगोऽपि न सिध्यति भूतलादौ घटादिप्रत्ययस्यापि स्वरूपेणैवान्यथासिद्धेरिति चेन्न। वियोगकालेऽपि भूतलघटयोः स्वरूपतादवस्थ्येन विशिष्टबुद्धिप्रसङ्गात्। समवायस्थले च समवेतस्य कदापि स्वाश्रयवि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

योगो नास्तीति नायं दोषः। कश्चित् तु तादात्म्यसम्बन्धेनाव समवायस्यान्यथासिद्धिमाह तन्न। शब्दमात्रभेदात्। तादात्म्यं ह्यत्र नात्यन्तं वक्तव्यम्। गुणवियोगेऽपि गुणिसत्त्वात्। वैशिष्ट्या-प्रत्ययाच्च। किन्तु भेदाभेदबुद्धिनियामकः सम्बन्धविशेष एव अगत्या वक्तव्यः। तथाच तस्य समवाय इति वा तादात्म्यमिति वा नाममात्रं भिन्नम्। सम्बन्धिद्वयातिरिक्तः सम्बन्धस्तु सिद्ध एवेति। यदि च तादात्म्यं स्वरूपमेवोच्यते तदास्माभिरपि तदेवोक्तमिति शब्दमात्रभेद इति ॥ १०० ॥

प्रकृतेः क्षोभात् प्रकृतिपुरुषसंयोगस्तस्मात् सृष्टिरिति सिद्धान्तः। तत्रायं नास्तिकानामाक्षेपो नास्ति क्षोभाख्या कस्यापि क्रिया सर्वं वस्तु क्षणिकं यत्रोत्पद्यते तत्रैव विनश्य-तीत्यतो न देशान्तरसंयोगोन्नेया क्रिया सिध्यतीति तत्राह।

नानुमेयत्वमेव क्रियाया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतो-रेवापरोक्षप्रतीतेः ॥ १०१ ॥

न देशान्तरसंयोगादिना क्रियाया अनुमेयत्वमेव। यतो नेदिष्ठस्य निकटस्थस्य द्रष्टुः क्रियाक्रियावतोः प्रत्यक्षेणापि प्रतीतिरस्ति वृक्षश्चलतीत्यादिरित्यर्थः॥ १०१ ॥

द्वितीयाध्याये शरीरस्य पाञ्चभौतिकत्वादिरूपैर्मतभेदा-एवोक्ता न तु विशेषोऽवधृतः। अत्रापरपक्षं प्रतिषेधति।

न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादाना-योगात् ॥ १०२ ॥

बहूनां भिन्नजातीयानां चोपादानत्वं घटपटादिस्थले न दृष्टमिति सजातीयमेवोपादानम्। इतरञ्च भूतचतुष्टय-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुपष्टम्भकमित्याशयेन पाञ्चभौतिकव्यवहारः। एकोपादानत्वेऽपि पृथिव्येवोपादानं सर्वशरीरस्येति वक्ष्यति ॥ १०२ ॥

स्थूलमेव शरीरमिति केचित् तन्निराकरोति।

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात् ॥ १०३ ॥

इन्द्रियाश्रयत्वं शरीरत्वम्।

यन्मूर्त्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट्।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्त्तिं मनीषिणः॥

इति मनुवाक्यात्। एतादृशं च शरीरं स्थूलं प्रत्यक्षमेवेति न नियमः। कुतः। आतिवाहिकस्याप्रत्यक्षतया सूक्ष्मस्य भौतिकस्य शरीरान्तरस्यापि सत्त्वादित्यर्थः। लोकाल्लोकान्तरं लिङ्गदेहमतिवाहयतीत्यातिवाहिकम्। भूताश्रयतां विना चित्रादिवद्गमनाभावस्य प्रागेवोक्तत्वात्। इदं च सूत्रं तस्यैव स्पष्टीकरणमात्रार्थम्। लिङ्गस्य च शरीरत्वं भोगाश्रयतया पुरुषप्रतिबिम्बाश्रयतया वेति बोध्यम्। आतिवाहिकशरीरे च प्रमाणम्।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष बलाद्यमः।

इति श्रुतिस्मृती। न हि लिङ्गशरीरस्य सकलशरीरव्यापिनः स्वतोऽङ्गुष्ठमात्रत्वं सम्भवति। अत आधारस्याङ्गुष्ठमात्रमर्थात् सिध्यति। यथा दीपस्य सर्वगृहव्यापित्वेऽपि कलिकाकारत्वं तैलवर्त्त्यादिसूक्ष्मांशस्य दशोपरि सम्पिण्डितस्य पार्थिवभागस्य कलिकाकारतया तथैव लिङ्गदेहस्य देहव्यापि-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वेऽप्यङ्गुष्ठपरिमाणत्वं सूक्ष्मभूतस्याङ्गुष्ठपरिमाणत्वेनानुमेय-मिति ॥ १०३ ॥

गोलकेभ्योऽतिरिक्तानीन्द्रियाणि प्रागुक्तानि तदुपपादना-येन्द्रियाणामप्राप्तप्रकाशकत्वं निराकरोति ।

नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्व-प्राप्तेर्वा ॥ १०४ ॥

स्वासम्बद्धार्थानीन्द्रियाणि न प्रकाशयन्ति । अप्राप्तेः । प्रदीपादीनामप्राप्तप्रकाशकत्वादर्शनात् । अप्राप्तप्रकाशकत्वे व्यवहितादिसर्ववस्तुप्रकाशकत्वप्रसङ्गाच्चेत्यर्थः । अतो दूरस्थ-सूर्य्यादिसम्बन्धार्थं गोलकातिरिक्तमिन्द्रियमिति भावः । कर-णानां चार्थप्रकाशकत्वं पुरुषेऽर्थसमर्पणद्वारैव । स्वतो जड-त्वात् । दर्पणस्य मुखप्रकाशकत्ववत् । अथवार्थप्रतिबिम्बोद्-ग्रहणमेवार्थप्रकाशकत्वमिति ॥ १०४ ॥

नन्वेवं चक्षुषस्तैजसत्वमेव युक्तं तेजस एव किरणरूपेणाशु दूरापसर्पणदर्शनादिति शङ्कां निराकरोति ।

न तेजोऽपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तितस्तत्-सिद्धेः ॥ १०५ ॥

तेजसोऽपसर्पणं दृष्टमिति कृत्वा तैजसं चक्षुर्न वाच्यम् । कुतः । अतैजसत्वेऽपि प्राणवदेव वृत्तिभेदेनापसर्पणोपपत्तेरि-त्यर्थः । यथा हि प्राणः शरीरं सन्त्यज्यैव नासाग्राद्बहिः किय-द्दूरं प्राणनाख्यवृत्त्यापसरति । एवमेवातैजसद्रव्यमपि चक्षुर्देह-मसन्त्यज्यापि वृत्त्याख्यपरिणामविशेषेण झटित्येव दूरस्थं सूर्य्यादिकं प्रत्यपसरेदिति ॥ १०५ ॥

नन्वेवम्भूतवृत्तौ किं प्रमाणं तत्राह ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राप्तार्थप्रकाशलिङ्गाद्वृत्तिसिद्धिः ॥ १०६ ॥

सुगमम् ॥ १०६ ॥

देहमपरित्यज्यापि गमनोपपत्तये वृत्तेः स्वरूपं दर्शयति ।

भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीति ॥ १०७ ॥

सम्बन्धार्थं सर्पतीति हेतोश्चक्षुरादेर्भागो विस्फुलिङ्गवद्विभक्तांशो रूपादिवद्गुणश्च न वृत्तिः। किन्तु तदेकदेशभूता भागगुणाभ्यां भिन्ना वृत्तिः। विभागे हि सति तद्द्वारा चक्षुषः सूर्यादिसम्बन्धो न घटते गुणत्वे च सर्पणाख्यक्रियानुपपत्तेरित्यर्थः। एतेन बुद्धिवृत्तिरपि प्रदीपशिखावद्द्रव्यरूप एव परिणामः स्वच्छतयार्थाकारतोद्ग्राही निर्मलवस्त्रवदिति सिद्धम् ॥ १०७ ॥

नन्वेवं वृत्तीनां द्रव्यत्वे कथमिच्छादिरूपबुद्धिगुणेषु वृत्तिव्यवहारस्तत्राह ।

न द्रव्ये नियमस्तद्योगात् ॥ १०८ ॥

वृत्तिर्द्रव्यमेवेति नियमो नास्ति। कुतः। तद्योगात्। तत्र वृत्तौ योगार्थसत्त्वात्। वृत्तिर्वर्तनजीवन इति हि यौगिकोऽयं शब्दः। जीवनं च स्वस्थितिहेतुर्व्यापारः। जीवबलप्राणधारणयोरित्यनुशासनात्। वैश्यवृत्तिः शूद्रवृत्तिरित्यादिव्यवहाराच्च। तत्र यथा द्रव्यरूपया वृत्त्या बुद्धिर्जीवति तथेच्छादिभिरपीति तेऽपि वृत्तयः सर्वनिरोधेनैव चित्तमरणादित्यर्थः ॥ १०८ ॥

इन्द्रियाणां भौतिकत्वस्यापि श्रवणात् कदाचिल्लोकविशेषभेदेन श्रुतिव्यवस्था शङ्क्येत तत्राह ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न देशभेदेऽप्यन्योपादानतास्मदादिवन्नियमः॥ १०९॥

न ब्रह्मलोकादिदेशभेदतोऽपीन्द्रियाणामहङ्कारातिरिक्तोपादानकत्वं किन्त्वस्मदादीनां भूर्लोकस्थानामिव सर्वेषामेवाहङ्कारिकत्वनियमः। देशभेदेनैकस्यैव लिङ्गशरीरस्य सञ्चारमात्रश्रवणादित्यर्थः॥ १०९॥

नन्वेवं भौतिकत्वश्रुतिः कथमुपपद्यतां तत्राह।

निमित्तव्यपदेशात् तद्व्यपदेशः॥ ११०॥

निमित्तेऽपि प्राधान्यविवक्षयोपादानत्वव्यपदेशो भवति। यथेन्धनादग्निरिति। अतो भूतोपादानत्वव्यपदेश इत्यर्थः। तेज आदिभूतोपष्टम्भेनैव हि तदनुगताहङ्काराच्चक्षुरादीन्द्रियाणि सम्भवन्ति। यथा पार्थिवोपष्टम्भेन तदनुगतात् तेजसोऽग्निर्भवतीति। अन्नमयं हि सौम्य मन इत्यादिश्रुतिस्तदुक्तयुक्तिश्चात्र प्रमाणम्॥ ११०॥

स्थूलशरीरगतं विशेषं प्रसङ्गादवधारयति।

ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसाङ्कल्पिकसांसिद्धिकं चेति न नियमः॥ १११॥

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्ति। अण्डजं जीवजमुद्भिज्जमितिश्रुतावण्डजादिरूपं शरीरत्रैविध्यं प्रायिकाभिप्रायेणोक्तं न तु नियमः। यत ऊष्मजादि षड्विधमेव शरीरं भवतीत्यर्थः। तत्रोष्मजा दन्दशूकादयः। अण्डजाः पक्षिसर्पादयः। जरायुजा मनुष्यादयः। उद्भिज्जाः वृक्षादयः। सङ्कल्पजाः सनकादयः। सांसिद्धिका मन्त्रतप आदिसिद्धिजाः। यथा रक्तबीजशरीरोत्पन्नशरीरादय इति॥१११॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरीरस्यैकमात्रभूतोपादानकत्वं पूर्वोक्तमनेनैव प्रसङ्गेन विशिष्याह ।

सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत् ॥ ११२ ॥

सर्वेषु शरीरेषु पृथिव्येवोपादानम् । असाधारण्यात् । आधिक्यादिभिरुत्कर्षात् । अत्रापि शरीरे पञ्चचतुरादिभौतिकत्वव्यपदेशः पूर्ववत् । इन्द्रियाणां भौतिकत्ववदुपष्टम्भकत्वमात्रेणेत्यर्थः ॥ ११२ ॥

ननु प्राणस्य शरीरे प्राधान्यात् प्राण एव देहारम्भकोऽस्तु तत्राह ।

न देहारम्भकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तितस्तत्सिद्धेः ॥ ११३ ॥

प्राणो न देहारम्भकः । इन्द्रियं विना प्राणानवस्थानेनान्वयव्यतिरेकाभ्यामिन्द्रियाणां शक्तिविशेषादेव प्राणसिद्धेः प्राणोत्पत्तेरित्यर्थः । अयं भावः । करणवृत्तिरूपप्राणः करणवियोगे न तिष्ठति । अतो मृतदेहे करणाभावेन प्राणाभावान्न प्राणा देहारम्भक इति ॥ ११३ ॥

नन्वेवं प्राणस्य देहाकारणत्वे प्राणं विनापि देह उत्पद्येत तत्राह ।

भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसङ्गात् ॥ ११४ ॥

भोक्तुः प्राणिनोऽधिष्ठानाद्व्यापारादेव भोगायतनस्य शरीरस्य निर्माणं भवति । अन्यथा प्राणव्यापाराभावे शुक्रशोणितयोः पूतिभावप्रसङ्गात् । मृतदेहवदित्यर्थः । तथा च रस-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सञ्चारादिव्यापारविशेषैः प्राणो देहस्य निमित्तकारणं धारकत्वादिति भावः॥ ११४॥

ननु प्राणस्यैवाधिष्ठानत्वं सम्भवति व्यापारवत्त्वात्। न प्राणिनः कूटस्थत्वात्। निर्व्यापारस्याधिष्ठाने प्रयोजनाभावाच्चेति तत्राह।

भृत्यद्वारा स्वाम्यधिष्ठितिर्नैकान्तात्॥११५॥

देहनिर्माणे व्यापाररूपमधिष्ठानं स्वामिनश्चेतनस्यैकान्तात् साक्षान्नास्ति किन्तु प्राणरूपभृत्यद्वारा। यथा राज्ञः पुरनिर्माण इत्यर्थः। तथा च प्राणस्याधिष्ठातृत्वं साक्षात् पुरुषस्याधिष्ठातृत्वं प्राणसंयोगमात्रेणेति सिद्धम्। कुलालादीनां घटादिनिर्माणेष्वप्येवम्। विशेषस्त्वयं तत्र चेतनस्य बुद्ध्यादेश्चाप्युपयोगोऽस्ति बुद्धिपूर्वकसृष्टित्वादिति। यद्यपि प्राणाधिष्ठानादेव देहनिर्माणं तथापि प्राणद्वारा प्राणिसंयोगोऽप्यपेक्ष्यते पुरुषार्थमेव प्राणेन देहनिर्माणादित्याशयेन भोक्तुरधिष्ठानादित्युक्तम्॥ ११५॥

विमुक्तमोक्षार्थं प्रधानस्येत्युक्तं प्राक् तत्र कथमात्मा नित्यमुक्तो बन्धमुक्तो बन्धदर्शनादिति परेषामाक्षेपे नित्यमुक्तिमुपपादयितुमाह।

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता॥ ११६॥

समाधिरसम्प्रज्ञातावस्था। सुषुप्तिश्चात्र समग्रसुषुप्तिः। मोक्षश्च विदेहकैवल्यम्। आस्ववस्थासु पुरुषाणां ब्रह्मरूपता बुद्धिवृत्तिविलयतस्तदौपाधिकपरिच्छेदविगमेन स्वस्वरूपपूर्णतयावस्थानम्। यथा घटध्वंसे घटाकाशस्य पूर्णतेत्यर्थः। तदेतदुक्तम्। तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थ इति। तथा च ब्रह्मत्वमेव पुरुषाणां स्वभावो नैमित्तिकत्वाभावात् स्फटिकस्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शीलारमिव। बुद्धिवृत्तिसम्बन्धकाले तु परिच्छिन्नचिद्रूपत्वेना-भिव्यक्त्या परिच्छेदाभिमानः। तथा वृत्तिप्रतिविम्बवशाद्दुःखादिमालिन्यमिव च भवतीति तत् सर्वमौपाधिकमेव। उपाध्याख्यनिमित्तान्वयव्यतिरेकानुविधानात् स्फटिकलौहित्य-वदिति भावः। तथा च योगसूत्रम्। वृत्तिसारूप्यमितरत्रेति। अस्मच्छास्त्रे च ब्रह्मशब्द औपाधिकपरिच्छेदमालिन्यादिर-हितपरिपूर्णचेतनसामान्यवाची न तु ब्रह्ममीमांसायामिवै-श्वर्य्योपलक्षितपुरुषमात्रवाचीति विवेक्तव्यम्। अत्रैते श्लोकाः शिष्यव्युत्पत्त्यर्थमुच्यन्ते।

चिदाकाशेऽनभिव्यक्ते नानाकारैरितस्ततः।
धीरटन्ती सह व्यक्त्या चिदटन्तीं प्रदर्शयेत्॥
वस्तुतस्तु सदा पूर्णमेकरूपं च चिन्नभः।
वृत्तिशून्यप्रदेशेषु दृश्याभावान्न पश्यति॥
चक्षुषो रूपवत् पुंसो दृश्या वृत्तिर्हि नेतरत्।
समाध्यादौ च सा नास्तीत्यतः पूर्णः पुमांस्तदा॥११६॥

तर्हि कः सुषुप्तिसमाधिभ्यां मोक्षस्य विशेषस्तत्राह।

द्वयोः सबीजमन्यत्र तद्धतिः॥ ११७॥

द्वयोः समाधिसुषुप्त्योः सबीजं बन्धबीजसहितं ब्रह्मत्वम-न्यत्र मोक्षे बीजस्याभाव इति विशेष इत्यर्थः। ननु चेत् समा-ध्यादौ बन्धबीजमस्ति तर्हि तेनैव परिच्छेदात् कथं ब्रह्मत्व-मिति चेन्न। बन्धबीजस्य कर्मादेस्तदानीमुपाधावेवाव-स्थानात्। न तु चेतनेषु पुरुषे च तेषामप्रतिविम्बनादिति। जाग्रदाद्यवस्थायां तु बुद्धिवृत्तिप्रतिविम्बवशादौपाधिको बन्ध इत्यसकृदावेदितम्॥ ननु पातञ्जले तद्भाष्ये चासम्प्रज्ञात-योगो निर्बीज उक्तः। अत्र कथं सबीज उच्यत इति चेन्न।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असम्प्रज्ञाते क्रमेण वीजक्षयो भवतीत्याशयेनैव तत्र निर्वीजत्ववचनात्। अन्यथा सर्वासामेवासम्प्रज्ञातव्यक्तीनां निर्वीजत्वे व्युत्थानानुपपत्तेरिति॥ ११७॥

ननु समाधिसुषुप्ती दृष्टे स्तो मोक्षे तु किं प्रमाणमिति नास्तिकाक्षेपं परिहरति।

द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्न तु द्वौ॥ ११८॥

समाधिसुषुप्तिदृष्टान्तेन मोक्षस्यापि दृष्टत्वादनुमितत्वान्न तु द्वौ सुषुप्तिसमाधी एव। किन्तु मोक्षोऽप्यस्तीत्यर्थः। अनुमानं चेत्थम्। सुषुप्त्यादौ यो ब्रह्मभावस्तत्त्यागश्चित्तागताद्रागादिदोषवशादेव भवति। स चेद्दोषो ज्ञानेन नाशितस्तर्हि सुषुप्त्यादिसदृशस्यैवावस्था स्थिरा भवति सैव मोक्ष इति॥११८॥

ननु वासनाख्यवीजसत्त्वेऽपि वैराग्यादिना वासनाकौण्ठ्यादर्थाकारा वृत्तिः समाधौ मा भवतु सुषुप्ते तु वासनाप्राबल्यादर्थज्ञानं भविष्यत्येवेति न सुषुप्तौ ब्रह्मरूपता युक्तेति तत्राह।

वासनयानर्थख्यापनं दोषयोगेऽपि न निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम्॥ ११९॥

यथा वैराग्ये तथा निद्रादोषयोगेऽपि सति वासनया न स्वार्थख्यापनं स्वविषयस्मारणं भवति। यतो न निमित्तस्य गुणीभूतस्य संस्कारस्य बलवत्तरनिद्रादोषबाधकत्वं सम्भवतीत्यर्थः। बलवत्तर एव हि दोषो वासनां दुर्बलां स्वकार्य्यकुण्ठां करोतीति भावः॥ ११९॥

संस्कारलेशतो जीवन्मुक्तस्य शरीरधारणमिति तृतीयाध्याये प्रोक्तम्। तत्रायमाक्षेपः। जीवन्मुक्तस्य शश्वदेकस्मिन्नप्यर्थेऽस्मदादीनामिव भोगो दृश्यते सोऽनुपपन्नः प्रथमं भोग-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुत्याद्यैव पूर्वसंस्कारनाशात् संस्कारान्तरस्य च ज्ञानप्रतिबन्धेन कर्मवदनुदयादिति तत्राह ।

एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्त्तको न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा बहुकल्पनाप्रसक्तेः ॥ १२० ॥

येन संस्कारेण देवादिशरीरभोग आरब्धः स एक एव संस्कारस्तच्छरीरसाध्यस्य प्रारब्धभोगस्य समापकः । स च कर्मवदेव भोगसमाप्तिनाश्यो न तु प्रतिक्रियं प्रतिभोगव्यक्तिसंस्कारनानात्वं बहुव्यक्तिकल्पनागौरवप्रसङ्गादित्यर्थः । कुलालचक्रभ्रमणस्थलेऽप्येवं वेगाख्यः संस्कार एक एव भ्रमणसमाप्तिपर्य्यन्तस्थायी बोध्यः ॥ १२० ॥

उद्भिज्जं शरीरमस्तीत्युक्तं तत्र बाह्यबुद्ध्यभावाच्छरीरत्वं नास्तीति नास्तिकाक्षेपमपाकरोति ।

न बाह्यबुद्धिनियमो वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतितृणवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत् ॥ १२१ ॥

न बाह्यज्ञानं यत्रास्ति तदेव शरीरमिति नियमः किन्तु वृक्षादीनामन्तःसंज्ञानामपि भोक्तृभोगायतनत्वं शरीरत्वं मन्तव्यम् । यतः पूर्ववत् पूर्वोक्तो यो भोक्त्रधिष्ठानं विना मनुष्यादिशरीरस्य पूतिभावस्तद्वदेव वृक्षादिशरीरेष्वपि शुष्कतादिकमित्यर्थः । तथा च श्रुतिः । अस्य यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यतीत्यादिरिति । न बाह्यबुद्धिनियम इत्यंशस्य पृथक्सूत्रत्वेऽपि सूत्रद्वयमेकीकृत्येत्थमेव व्याख्येयम् । सूत्रभेदस्तु दैर्घ्यभयादिति बोध्यम् ॥ १२१ ॥

स्मृतेश्च ॥ १२२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥

इत्यादिस्मृतेरपि वृक्षादिषु भोक्तृभोगायतनत्वमित्यर्थः॥ १२२॥

ननु वृक्षादिष्वप्येवं चेतनत्वेन धर्माधर्मोत्पत्तिप्रसङ्गस्तत्राह।

न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः॥ १२३॥

न देहमात्रेण धर्माधर्मोत्पत्तियोग्यत्वं जीवस्य। कुतः। वैशिष्ट्यश्रुतेः। ब्राह्मणादिदेहविशिष्टत्वेनैवाधिकारश्रवणादित्यर्थः॥ १२३॥

देहभेदेनैव कर्माधिकारं दर्शयन् देहत्रैविध्यमाह।

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः॥ १२४॥

त्रयाणामुत्तमाधममध्यमानां सर्वप्राणिनां त्रिप्रकारो देहविभागः। कर्मदेहभोगदेहोभयदेहा इतीत्यर्थः। तत्र कर्मदेहः परमर्षीणां भोगदेह इन्द्रादीनामुभयदेहश्च राजर्षीणामिति। अत्र प्राधान्येन त्रिधा विभागः। अन्यथा सर्वस्यैव भोगदेहत्वापत्तेः॥ १२४॥

चतुर्थमपि शरीरमाह।

न किञ्चिदप्यनुशयिनः॥ १२५॥

विद्यादनुशयं द्वेष्यं पश्चात्तापानुतापयोः।

इतिवाक्यादनुशयो वैराग्यम्। विरक्तानां शरीरमेतत्त्रयविलक्षणमित्यर्थः। यथा दत्तात्रेयजडभरतादीनामिति॥ १२५॥

१८

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उक्तस्येश्वराभावस्य स्थापनाय पराभ्युपगतं ज्ञानेच्छाकृत्यादिनित्यत्वं प्रतिषेधति।

न बुद्ध्यादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत्॥ १२६ ॥

बुद्धिरत्राध्यवसायाख्या वृत्तिः। तथा च ज्ञानेच्छाकृत्यादीनामाश्रयविशेषे परैरीश्वरोपाधितयाभ्युपगतेऽपि नित्यत्वं नास्ति। अस्मदादिबुद्धिदृष्टान्तेन सर्वेषामेव बुद्धीच्छादीनामनित्यत्वानुमानात्। यथा लौकिकवह्निदृष्टान्तेनावरणतेजसोऽप्यनित्यत्वानुमानमित्यर्थः॥ १२६ ॥

आस्तां तावज्ज्ञानेच्छादेर्नित्यत्वं तदाश्रय ईश्वरोपाधिरेवासिद्ध ईश्वरस्यासिद्धेरित्यत आह।

आश्रयासिद्धेश्च ॥ १२७ ॥

सुगमम्॥ १२७ ॥

नन्वेवं ब्रह्माण्डादिसर्जनसमर्थं सर्वज्ञत्वादिकं कथं जन्यं सम्भाव्येतापि लोके तपआदिभिरेवमैश्वर्यादर्शनादिति तत्राह।

योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः॥ १२८ ॥

औषधादिसिद्धिदृष्टान्तेन योगजा अप्यणिमादिसिद्धयः सृष्ट्याद्युपयोगिन्यः सिध्यन्तीत्यर्थः॥ १२८ ॥

पुरुषसिद्धिप्रतिकूलतया भूतचैतन्यवादिनं प्रत्याचष्टे।

न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च ॥ १२९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संहतभावावस्थायामपि पञ्चभूतेषु चैतन्यं नास्ति विभागकाले प्रत्येकं चैतन्यादृष्टेरित्यर्थः। तृतीयाध्याये चेदं स्वसिद्धान्तविधयोक्तम्। अत्र च परमतनिराकरणायेति न पौनरुक्त्यं दोषायेति। वीप्साध्यायसमाप्तौ॥ १२८॥

स्वसिद्धान्तविरुद्धार्थभाषिणो ये कुवादिनः।
पञ्चमे तान् निराकृत्य स्वसिद्धान्तो दृढीकृतः॥

इति विज्ञानभिक्षुनिर्मिते कापिलसांख्यप्रवचनस्य भाष्ये परपक्षनिर्जयाध्यायः पञ्चमः।

षष्ठोऽध्यायः।

अध्यायचतुष्केण समस्तशास्त्रार्थं प्रतिज्ञाय पञ्चमाध्याये परपक्षनिराकरणेन प्रसाध्येदानीं तमेव सारभूतशास्त्रार्थं षष्ठाध्यायेन सङ्कलयन्नुपसंहरति। उक्तार्थानां हि पुनस्तन्त्राख्ये विस्तरे कृते शिष्याणामसन्दिग्धाविपर्यस्तो दृढतरो बोध उत्पद्यत इत्यतः स्थूणानिखननन्यायादनुक्तयुक्त्याद्युपन्यासाच्च नात्र पौनरुक्त्यं दोषाय।

अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात्॥ १॥

जानामीत्येवं प्रतीयमानतया पुरुषः सामान्यतः सिद्ध एवास्ति बाधकप्रमाणाभावात्। अतस्तद्विवेकमात्रं कर्त्तव्यमित्यर्थः॥ १॥

तत्र विवेके प्रमाणद्वयमाह सूत्राभ्याम्।

देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात्॥ २॥

असावात्मा द्रष्टा देहादिप्रकृत्यन्तेभ्योऽत्यन्तं भिन्नो वैचित्र्यात्। परिणामित्वापरिणामित्वादिवैधर्म्यादित्यर्थः। प्रकृ-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वादयस्तावत् प्रत्यक्षानुमानागमैः परिणामितयैव सिद्धाः पुरुषस्यापरिणामित्वं तु सदा ज्ञातविषयत्वादनुमीयते । तथाहि यथा चक्षुषो रूपमेव विषयो न सन्निकर्षसाम्येऽपि रसादिरेवं पुरुषस्य स्वबुद्धिवृत्तिरेव विषयो न तु सन्निकर्षसाम्येऽप्यन्यद्वस्त्विति फलबलात् कॢप्तम् । बुद्धिवृत्त्यारूढतयैव त्वन्यज्ज्ञेयं भवति पुरुषस्य न स्वतः । सर्वदा सर्वभानापत्तेः । ताश्च बुद्धिवृत्तयो नाज्ञातास्तिष्ठन्ति ज्ञानेच्छासुखादीनामज्ञातसत्तास्वीकारे तेष्वपि घटादाविव संशयादिप्रसङ्गादहं अहं जानामि न वा सुखी न वेत्यादिरूपेण । अतस्तेषां सदा ज्ञातत्वात् तद्द्रष्टा चेतनोऽपरिणामीत्यायातम् । चेतनस्य परिणामित्वे कदाचिदाम्यपरिणामिन सत्या अपि बुद्धिवृत्तेरदर्शनेन संशयाद्यापत्तेरिति । एवं पारार्थ्यापारार्थ्यादिकमपि पूर्वोक्तं वैधर्म्यजातं बोध्यम् ॥ २ ॥

षष्ठीव्यपदेशादपि ॥ ३ ॥

ममेदं शरीरं ममेयं बुद्धिरित्यादेर्विदुषां षष्ठीव्यपदेशादपि देहादिभ्य आत्मा भिन्नः । अत्यन्ताभेदे षष्ठ्यनुपपत्तेरित्यर्थः । तदुक्तं विष्णुपुराणे ।

त्वं किमेतच्छिरः किन्नु शिरस्तव तथोदरम् ।
किमु पादादिकं त्वं वै तवैतद्धि महीपते ! ॥
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूय व्यवस्थितः ।
कोऽहमित्यत्र निपुणो भूत्वा चिन्तय पार्थिव ! ॥

इति । न च स्थूलोऽहमित्यादिरपि विद्वद्व्यपदेशोऽस्तीति वाच्यम् । श्रुत्या बाधिततया ममात्मा भद्रसेन इतिवद्गौणत्वेनैव तदुपपत्तेरिति ॥ ३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ननु पुरुषस्य चैतन्यं राहोः शिरः शिलापुत्रस्य शरीरमित्यादिव्यपदेशवदयमपि भवतु तत्राह ।

न शिलापुत्रवद्धर्मिग्राहकमानबाधात् ॥४॥

शिलापुत्रस्य शरीरमित्यादिवदयं षष्ठीव्यपदेशो न भवति शिलापुत्रादिस्थले धर्मिग्राहकप्रमाणेन बाधाद्विकल्पमात्रम् । मम शरीरमिति व्यपदेशे तु प्रमाणबाधो नास्ति देहात्मताया एव बाधादित्यर्थः । यस्तु शास्त्रेषु ममकारप्रतिषेधः न स्वाख्यस्यानित्यतया वाचारम्भणमात्रत्वे नासत्यतापर एवेति भावः । पुरुषस्य चैतन्यमित्यत्राप्यस्ति धर्मिग्राहकमानबाधः । अनवस्थाभयेन लाघवाच्च देहादिव्यतिरिक्ततयात्मसिद्धौ चैतन्यस्वरूपतावगाहनादिति ॥ ४ ॥

देहादिव्यतिरिक्ततया पुरुषमवधार्य तन्मुक्तिमवधारयति ।

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता ॥ ५ ॥

सुगमम् ॥ ५ ॥

ननु दुःखनिवृत्त्या सुखस्यापि निवर्त्तनात् तुल्यायव्ययत्वेन न सा पुरुषार्थ इति तत्राह ।

यथा दुःखात् क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ॥ ६ ॥

विषयविधया हेतुतायां पञ्चम्यौ क्लेशश्चात्र द्वेषः । यथा दुःखे द्वेषो बलवत्तरो नैवं सुखेऽभिलाषो बलवत्तरोऽपि तु तदपेक्षया दुर्बल इत्यर्थः । तथा च सुखाभिलाषं बाधित्वापि दुःखद्वेषो दुःखनिवृत्तावेवेच्छां जनयतीति न तुल्यायव्ययत्वमिति । तदुक्तम् ।

अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति । या तु नरकादिदुःखदर्शनेऽपि क्षुद्रसुखप्रवृत्तिः सा रागादिदोषवशादेवेति ॥ ६ ॥

सुखापेक्षया दुःखस्य बहुलत्वादपि दुःखनिवृत्तिरेव पुरुषार्थ इत्याह ।

कुत्रापि कोऽपि सुखीति ॥ ७ ॥

अनन्तवृक्षवृक्षपशुपक्षिमनुष्यादिमध्ये स्वल्पो मनुष्यदेवादिरेव सुखी भवतीत्यर्थः । इति हेतौ ॥ ७ ॥

तदपि कादाचित्कं क्वाचित्कसुखं मधुविषसम्पृक्तान्नवद्विचारकाणां हेयमेवेत्याह ।

तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः ॥ ८ ॥

तदपि पूर्वसूत्रोक्तं सुखमपि दुःखमिश्रितमित्यतो दुःखकोटौ सुखदुःखविवेचका निःक्षिपन्त इत्यर्थः । तदुक्तं योगसूत्रेण ।

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुण-
वृत्तिविरोधाच्च सर्वमेव दुःखं विवेकिनः ।

इति । विष्णुपुराणेऽपि ।

यद्यत् प्रीतिकरं पुंसां वस्तु मैत्रेय ! जायते ।
तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति ॥

इति ॥ ८ ॥

केवला दुःखनिवृत्तिर्न पुरुषार्थः किन्तु सुखोपरक्तेति मतमपाकरोति ।

सुखलाभाभावादपुरुषार्थत्वमिति चेन्न द्वैविध्यात् ॥ ९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुखलाभाभावान्मोचाख्यदुःखाभावस्यापुरुषार्थत्वमिति चेन्न। पुरुषार्थस्य द्वैविध्यात्। द्विप्रकारत्वात्। सुखत्वदुःखाभावत्वाभ्यामित्यर्थः। सुखी स्यां दुःखी न स्यामिति हि पृथगेव लोकानां प्रार्थना दृश्यत इति॥ ९॥

शङ्कते।

निर्गुणत्वमात्मनोऽसङ्गत्वादिश्रुतेः॥ १०॥

नन्वात्मनो निर्गुणत्वं सुखदुःखमोहाद्यखिलगुणशून्यत्वं नित्यमेव सिद्धम्। असङ्गत्वश्रुतेः। विकारहेतुसंयोगाभावश्रवणात्। तं विना च गुणाख्यविकारासम्भवात्। अतो न दुःखनिवृत्तिरपि पुरुषार्थो घटत इत्यर्थः। ननु संयोगं विना स्वयमेव विकारो भवत्विति चेन्न।

दाहाय नानलो वह्नेर्नापः क्लेदाय चाम्भसः।
तद्द्रव्यमेव तद्द्रव्यविकाराय न वै यतः॥
किञ्च स्वयं विकारित्वे मोक्षो नैवोपपद्यते।
स्वयं मोहविकारेण पुनर्बन्धप्रसङ्गतः॥

इति। तथा चोक्तं कौर्मे।

यद्यात्मा मलिनोऽस्वच्छो विकारी स्यात् स्वभावतः।
न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि॥

इति॥ १०॥

समाधत्ते।

परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात्॥ ११॥

सुखदुःखादिगुणानां चित्तधर्मत्वेऽपि तत्रात्मनि सिद्धिः प्रतिबिम्बरूपेणावस्थितिः। अविवेकान्निमित्तात्। प्रकृतिपुरुषसंयोगद्वारेत्यर्थः। एतच्च प्रथमाध्याये प्रतिपादितम्। निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिरिति तृतीयाध्यायसूत्रे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चेति। तथा च स्फटिके लौहित्यमिव पुरुषे प्रतिबिम्बरूपेण दुःखसत्त्वात् तन्निवृत्तिरेव पुरुषार्थः। प्रतिबिम्बद्वारकदुःख-सम्बन्धस्यैव भोगतया प्रतिबिम्बरूपेणैव दुःखस्य हेयत्वादिति ॥ ११ ॥

अविवेकमूलः पुरुषे गुणबन्धोऽविवेकस्तु किम्मूलक इत्या-काङ्क्षायामाह।

अनादिरविवेकोऽन्यथा दोषद्वयप्रसक्तेः ॥१२॥

अगृहीतासंसर्गकमुभयविषयकज्ञानमविवेकः। स च प्रवाहरूपेणानादिश्चित्तधर्मः प्रलये वासनारूपेण तिष्ठति। अन्यथा तस्य सादित्वे दोषद्वयप्रसङ्गात्। सादित्वे हि स्वत एवोत्पादे मुक्तस्यापि बन्धापत्तिः। कर्मादिजन्यत्वे च कर्मा-दिकं प्रत्यपि कारणत्वेनाविवेकान्तरान्वेषणेऽनवस्थेत्यर्थः। अयं चाविवेको वृत्तिरूपः प्रतिबिम्बात्मना पुरुषधर्म इव भवतीत्यतः पुरुषस्य बन्धप्रयोजक इति प्रागेवोक्तं वक्ष्यते च ॥ १२ ॥

ननु चेदनादिस्तर्हि नित्यः स्यादिति तत्राह।

न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः ॥१३॥

आत्मवन्नित्योऽखण्डानादिर्न भवति किन्तु प्रवाहरूपेणा-नादिः। अन्यथानादिभावस्योच्छेदानुपपत्तेरित्यर्थः ॥ १३ ॥

बन्धकारणमुक्त्वा मोक्षकारणमाह।

प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्य ध्वान्तवत् ॥१४॥

अस्य बन्धकारणस्याविवेकस्य शुक्तिरजतादिस्थले प्रति-नियतं यत्राशकारणं विवेकस्तन्नाश्यत्वं तमोवत्। अन्धकारो हि प्रतिनियतेनालोकेनैव नाश्यते नान्यसाधनेनेत्यर्थः। तदुक्तं विष्णुपुराणे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभ्रान्तम इवाज्ञानं दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम्।
यथा सूर्य्यस्तथा ज्ञानं यद्विप्रर्षे विवेकजम्॥

इति॥ १४॥

विवेकेनैवाविवेको नाश्यत इति प्रतिनियमस्य ग्राहकमप्याह।

अत्रापि प्रतिनियमोऽन्वयव्यतिरेकात्॥१५॥

ध्वान्तालोकयोरिव प्रकृतेऽपि प्रतिनियमः शुक्तिरजतादिष्वन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव ग्राह्य इत्यर्थः। अथवैवं व्याख्येयम्। ननु विवेकस्यापि किं प्रतिनियतं कारणं तत्राह। अत्रापि विवेकेऽपि कारणनियमोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव सिद्धः। श्रवणमनननिदिध्यासनरूपमेव कारणं न तु कर्मादीनि। कर्मादिकं तु बहिरङ्गमेवेत्यर्थः॥ १५॥

बन्धस्य स्वाभाविकत्वादिकं न सम्भवतीति प्रथमपादोक्तं स्मारयति।

प्रकारान्तरासम्भवादविवेक एव बन्धः॥१६॥

बन्धोऽत्र दुःखयोगाख्यबन्धकारणम्। शेषं सुगमम्॥१६॥

ननु मुक्तेरपि कार्य्यतया विनाशापत्त्या पुनर्बन्धः स्यादिति तत्राह।

न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः॥१७॥

भावकार्य्यस्यैव विनाशितया मोक्षस्य नाशो नास्ति न स पुनरावर्त्तत इति श्रुतेरित्यर्थः। अपिशब्दः पूर्वसूत्रोक्तार्थसमुच्चये॥ १७॥

अपुरुषार्थत्वमन्यथा॥ १८॥

अन्यथा मुक्तस्यापि पुनर्बन्धे प्रलयवदेव मोक्षस्यापुरुषार्थत्वं परमपुरुषार्थत्वाभावो वा स्यादित्यर्थः॥ १८॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपुरुषार्थत्वे हेतुमाह।

अविशेषापत्तिरुभयोः॥ १९॥

भाविबन्धत्वसाम्येनोभयोर्मुक्तबद्धयोर्विशेषो न स्यात्। ततश्चापुरुषार्थत्वमित्यर्थः॥ १९॥

नन्वेवं बद्धमुक्तयोर्विशेषाभ्युपगमे नित्यमुक्तत्वं कथमुच्यते तत्राह।

मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परः॥ २०॥

वक्ष्यमाणान्तरायस्य ध्वंसादतिरिक्तः पदार्थो न मुक्तिरित्यर्थः। यथाहि स्वभावशुक्लस्य स्फटिकस्य जपोपाधिनिमित्तं रक्तत्वं शौक्ल्यावरकरूपं विघ्नमात्रं न तु जवोपधानेन शौक्ल्यं नश्यति जवापाये चोत्पद्यते। तथैव स्वभावनिर्दुःखस्यात्मनो बुद्ध्युपाधिकं दुःखप्रतिबिम्बं तदावरकरूपं विघ्नमात्रं न तु बुद्ध्युपधानेन दुःखं जायते तदपाये च नश्यतीति। अतो नित्यमुक्त आत्मा बन्धमोक्षौ तु व्यावहारिकावित्यविरोध इति॥ २०॥

नन्वेवं बन्धमोक्षयोर्मिथ्यात्वे मोक्षस्य पुरुषार्थताप्रतिपादकश्रुत्यादिविरोध इत्याह।

तत्राप्यविरोधः॥ २१॥

तत्राप्यन्तरायध्वंसस्य मोक्षत्वेऽपि पुरुषार्थत्वाविरोध इत्यर्थः। दुःखयोगवियोगावेव हि पुरुषे कल्पितौ न तु दुःखभोगोऽपि। भोगस्य प्रतिबिम्बरूपेण दुःखसम्बन्ध इत्यत प्रतिबिम्बरूपेण दुःखनिवृत्तिर्यथार्थैव पुरुषार्थः। स एवान्तरायध्वंसः। तादृशस्य मोक्षो यथार्थ एवेति भावः॥ २१॥

नन्वन्तरायध्वंसमात्रं चेन्मुक्तिस्तर्हि श्रवणमात्रेणैव तत्सिद्धिः स्यात्। अज्ञानप्रतिबद्धकण्ठचामीकरसिद्धिवदिति तत्राह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अधिकारिवैविध्यान्न नियमः ॥ २२ ॥

उत्तममध्यमाधमास्त्रिविधा ज्ञानाधिकारिणः। तेन श्रवणमात्रानन्तरमेव मानससाक्षात्कारः सर्वेषामिति न नियम इत्यर्थः। अतो मन्दाधिकारदोषादिरोचनादीनां श्रवणमात्राच्चित्तविलायनक्षमं मानसज्ञानं नोत्पन्नम्। न तु श्रवणस्य ज्ञानजननासामर्थ्यादिति ॥ २२ ॥

न केवलं श्रवणमात्रं ज्ञाने दृष्टकारणमन्यदपीत्याह।

दार्ढ्यार्थमुत्तरेषाम् ॥ २३ ॥

श्रवणादुत्तरेषां मनननिदिध्यासनादीनामन्तरायध्वंसस्यात्यन्तिकत्वरूपदार्ढ्यार्थं नियम इत्यनुषज्यते ॥ २३ ॥

उत्तराण्येव साधनान्याह।

स्थिरसुखमासनमिति न नियमः ॥२४॥

आसने पद्मासनादिनियमो नास्ति। यतः स्थिरं सुखं च यत् तदेवासनमित्यर्थः ॥ २४ ॥

मुख्यं साधनमाह।

ध्यानं निर्विषयं मनः ॥ २५ ॥

वृत्तिशून्यं यदन्तःकरणं भवति तदेव ध्यानं योगश्चित्तवृत्तिनिरोधरूप इत्यर्थः। एतत्साधनत्वेन ध्यानस्य वक्ष्यमाणत्वादिति ॥ २५ ॥

ननु योगायोगयोः पुरुषस्यैकरूप्यात् किं योगेनेत्याशङ्क्य समाधत्ते।

उभयथाप्यविशेषश्चेन्नैवमुपरागनिरोधाद्विशेषः ॥ २६ ॥

उपरागनिरोधाद्वृत्तिप्रतिबिम्बापगमाद्योगावस्थायामयो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गावस्थातो विशेषः पुरुषस्येति सिद्धान्तदलार्थः। शेषं व्याख्यातप्रायम् ॥ २६ ॥

ननु निःसङ्गे कथमुपरागस्तत्राह।

निःसङ्गेऽप्युपरागोऽविवेकात् ॥ २७ ॥

निःसङ्गे यद्यपि पारमार्थिक उपरागो नास्ति तथाप्युपराग इव भवतीति कृत्वा प्रतिबिम्ब एवोपराग इति व्यवह्रियते उपरागविवेकिभिरित्यर्थः ॥ २७ ॥

एतदेव विवृणोति।

जवास्फटिकयोरिव नोपरागः किन्त्वभिमानः ॥ २८ ॥

यथा जवास्फटिकयोर्नोपरागः किन्तु जवाप्रतिबिम्बवशादुपरागाभिमानमात्रं रक्तः स्फटिक इति तथैव बुद्धिपुरुषयोर्नोपरागः। किन्तु बुद्धिप्रतिबिम्बवशादुपरागाभिमानोऽविवेकवशादित्यर्थः। अत उपरागतुल्यतया वृत्तिप्रतिबिम्ब एव पुरुषोपराग इति सूत्रद्वयपर्य्यवसितोऽर्थः। स एव च दुःखात्मकवृत्तेरुपरागो दुःखनिवृत्त्याख्यमोक्षस्यान्तरायस्तस्य च ध्वंसश्चित्तलयात् सोऽपि च चित्तवृत्तिनिरोधाख्येनासम्प्रज्ञातयोगेनेत्यतो योगादेवान्तरायध्वंसो भवतीति योगशास्त्रस्यापि सिद्धान्तः ॥ २८ ॥

ध्यानं निर्विषयं मन इति योग उक्तस्तस्य साधनान्याचक्षाण एव यथोक्तोपरागस्य निरोधोपायमाह।

ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ॥ २९ ॥

समाधिद्वारा ध्यानं योगस्य कारणं ध्यानस्य च कारणं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धारणा तस्याश्च कारणमभ्यासश्चित्तस्थैर्य्यसाधनानुष्ठानमभ्यासस्यापि कारणं विषयवैराग्यं तस्यापि दोषदर्शनयमनियमादिकमिति पातञ्जलोक्तप्रक्रियया तन्निरोध उपरागनिरोधो भवति चित्तवृत्तिनिरोधाख्ययोगद्वारेत्यर्थः ॥ २८ ॥

चित्तनिष्ठध्यानादिना पुरुषस्योपरागनिरोधे पूर्वाचार्य्यसिद्धं द्वारं दर्शयति ।

लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्येत्याचार्य्याः ॥ ३० ॥

ध्यानादिना चित्तस्य निद्रावृत्तेः प्रमाणादिवृत्तेश्च निवृत्त्या पुरुषस्यापि वृत्त्युपरागनिरोधो भवति । बिम्बनिरोधे प्रतिबिम्बस्यापि निरोधादिति पूर्वाचार्य्या आहुरित्यर्थः । यथा पतञ्जलिर्योगश्चित्तवृत्तिनिरोधस्तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं वृत्तिसारूप्यमितरत्रेति सूत्रत्रयेणैतदेवाह । तथा ।

नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा बुद्धिसन्निधिमत्तया ।
यथा यथा भवेद्बुद्धिरात्मा तद्वदिहेष्यते ॥

इत्यादिस्मृतयोऽप्येतदाहुरिति । तदेवमसम्प्रज्ञातयोगादेव मोक्षान्तरायध्वंस इति प्रवृत्तकार्थः ॥ ३० ॥

ध्यानादौ गुहादिस्थाननियमो नास्तीत्याह ।

न स्थाननियमश्चित्तप्रसादात् ॥ ३१ ॥

चित्तप्रसादादेव ध्यानादिकम् । अतस्तत्र न गुहादिस्थाननियम इत्यर्थः । शास्त्रे त्वौत्सर्गिकाभिप्रायेणैवारण्यगिरिगुहादिस्थानं योगस्योद्दिष्टमिति । अत एव ब्रह्मसूत्रमपि । एकाग्रता तत्राविशेषादिति ॥ ३१ ॥

समाप्तो मोक्षविचार इदानीं पुरुषापरिणामित्वाय जगत्कारणं विचारयति ।

प्रकृतेराद्योपादानतान्येषां कार्य्यत्वश्रुतेः ॥ ३२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महदादीनां कार्य्यत्वश्रवणात् तेषां मूलकारणतया प्रकृतिः सिध्यतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

पुरुष एवोपादानं भवतु तत्राह ।

नित्यत्वेऽपि नात्मनो योगत्वाभावात् ॥३३॥

गुणवत्त्वं सङ्गित्वं चोपादानयोग्यता तयोरभावात् पुरुषस्य नित्यत्वेऽपि नोपादानत्वमित्यर्थः ॥ ३३ ॥

ननु बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूता इत्यादिश्रुतेः पुरुषस्य कारणत्वावगमाद्विवर्त्तादिवादा आश्रयणीया इत्याशङ्क्याह ।

श्रुतिविरोधान्न कुतर्कापसदस्यात्मलाभः ॥३४॥

पुरुषकारणतायां ये ये पक्षाः सम्भावितास्ते सर्वे श्रुतिविरुद्धा इत्यतस्तदभ्युपगन्तॄणां कुतार्किकाधमानामात्मस्वरूपज्ञानं न भवतीत्यर्थः। एतेनात्मनि सुखदुःखादिगुणोपादानत्ववादिनोऽपि कुतार्किका एव तेषामप्यात्मयथार्थज्ञानं नास्तीत्यवगन्तव्यम्। आत्मकारणताश्रुतयश्च शक्तिशक्तिमदभेदेनोपासनार्था एव। अजामेकामित्यादिश्रुतिभिः प्रधानकारणतासिद्धेः। यदि चाकाशस्याभ्राद्यधिष्ठानकारणतावदात्मनः कारणत्वमुच्यते तदा तन्न निराकुर्मः परिणामस्यैव प्रतिषेधादिति ॥ ३४ ॥

स्थावरजङ्गमादिषु पृथिव्यादीनामेव कारणत्वदर्शनात् कथं प्रकृतेः सर्वोपादानत्वं तत्राह ।

पारम्पर्य्येऽपि प्रधानानुवृत्तिरणुवत् ॥३५॥

स्थावरादिषु परम्परया कारणत्वेऽपि तेषु प्रधानस्यानुमानादुपादानत्वमक्षतम्। यथाङ्कुरादिद्वारकत्वेऽपि स्थावरादिषु पार्थिवाद्यणूनामनुगमादुपादानत्वमित्यर्थः ॥ ३५ ॥

वनन्यायेन प्रकृतेर्व्यापकत्वे प्रमाणमाह ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वत्र कार्य्यदर्शनाद्विभुत्वम् ॥ ३६ ॥

अव्यवस्थया सर्वत्र विकारदर्शनात् प्रधानस्य विभुत्वम्। यथाणोर्घटादिव्यापित्वमित्यर्थः। एतच्च प्रागेव व्याख्यातम् ॥ ३६ ॥

ननु परिच्छिन्नत्वेऽपि यत्र कार्य्यमुत्पद्यते तत्र गच्छतीति वक्तव्यं तत्राह।

गतियोगेऽप्याद्यकारणताहानिरणुवत् ॥३७॥

गतिस्वीकारेऽपि परिच्छिन्नतया मूलकारणत्वाभावः पार्थिवाद्यणुदृष्टान्तेनेत्यर्थः। अथवेत्थं व्याख्येयम्। ननु त्रिगुणात्मकप्रधानस्यान्योऽन्यसंयोगार्थं श्रुतिस्मृतिषु क्रिया चोभाख्या श्रूयते क्रियावत्त्वाच्च तन्त्वादिदृष्टान्तेन मूलकारणत्वाभाव इत्याशङ्क्य परिहरति। गतियोगेऽप्याद्यकारणताहानिरणुवत्। गतिः क्रिया तत्सत्त्वेऽपि मूलकारणताया अहानिर्यथा वैशेषिकमते पार्थिवाद्यणूनामित्यर्थः ॥ ३७ ॥

ननु पृथिव्यादीनां नवानामेव द्रव्याणां दर्शनात् कथं पृथिवीत्वादिशून्यं प्रधानाख्यं द्रव्यं घटेत। न च प्रधानं द्रव्यमेव मास्त्विति वाच्यम्। संयोगविभागपरिणामादिभिर्द्रव्यत्वसिद्धेरिति तत्राह।

प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य न नियमः ॥ ३८ ॥

प्रसिद्धनवद्रव्याधिक्यमेव प्रधानस्यातो नवैव द्रव्याणीति न नियम इत्यर्थः। अष्टानामेव कार्य्यत्वश्रवणं चात्र तर्क इति भावः ॥ ३८ ॥

किं सत्त्वादयो गुणा एव प्रकृतिरथवा गुणत्रयरूपद्रव्यत्रयाधारभूता प्रकृतिरिति संशयेऽवधारयति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात् ॥ ३९ ॥

सत्त्वादिगुणानां प्रकृतिधर्मत्वं नास्ति प्रकृतिस्वरूपत्वादित्यर्थः। यद्यपि श्रुतिस्मृतिषूभयमेव श्रूयते तथापि तर्कतः स्वरूपत्वमेवावधार्य्यते न तु धर्मत्वम्। तथाहि सत्त्वादित्रयं किं प्रकृतेः कार्य्यरूपो धर्मोऽथवाकाशस्य वायुवत् संयोगमात्रेण नित्य एव धर्मः स्यात्। आद्ये एकस्या एव प्रकृतेर्द्रव्यान्तरसङ्गं विना विचित्रगुणत्रयोत्पत्त्यसम्भवः। दृष्टविरुद्धकल्पनानौचित्यं च। अन्त्ये नित्येभ्य एव सत्त्वादिभ्योऽन्योऽन्यसङ्गेन विचित्रसकलकार्य्योपपत्तौ तदतिरिक्तप्रकृतिकल्पनावैयर्थ्यमिति सत्त्वादीनां प्रकृतिकार्य्यत्वादिवचनानि चांशतः प्रकाशादिकार्य्योपहिततयाभिव्यक्त्यादिकमेव बोधयन्ति। यथा पृथिवीतो ह्रीपोत्पत्तिरिति ॥ ३९ ॥

प्रधानप्रवृत्तेः प्रयोजनमवधारयति निष्प्रयोजनप्रवृत्त्यभ्युपगमे मोक्षानुपपत्तेरिति।

अनुपभोगेऽपि पुमर्थं सृष्टिः प्रधानस्योष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ॥ ४० ॥

तृतीयाध्यायस्थे प्रधानसृष्टिः परार्थेत्यादिसूत्रे व्याख्यातमिदम् ॥ ४० ॥

विचित्रसृष्टौ निमित्तकारणमाह।

कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ॥ ४१ ॥

कर्म धर्माधर्मौ। सुगममन्यत् ॥ ४१ ॥

ननु भवतु प्रधानात् सृष्टिः प्रलयस्तु कस्मात्। न ह्येकस्मात् कारणाद्विरुद्धकार्य्यद्वयं घटते तत्राह।

साम्यवैषम्याभ्यां कार्य्यद्वयम् ॥ ४२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सत्त्वादिगुणत्रयं प्रधानं तेषां च वैषम्यं न्यूनातिरिक्तभावेन संहननं तदभावः साम्यं ताभ्यां हेतुभ्यामिकस्मादेव सृष्टिप्रलयरूपं विरुद्धकार्य्यद्वयं भवतीत्यर्थः। स्थितिस्तु सृष्टिमध्ये प्रविष्टेत्याशयेन तत्कारणत्वं प्रधानस्य न पृथग्विचारितम्॥ ४२॥

ननु प्रधानस्य सृष्टिस्वाभाव्याज्ज्ञानोत्तरमपि संसारः स्यात् तत्राह।

विमुक्तबोधान्न सृष्टिः प्रधानस्य लोकवत् ॥ ४३ ॥

विमुक्ततया पुरुषसाक्षात्काराद्धेतोः प्रधानस्य तत्पुरुषार्थं पुनः सृष्टिर्न भवति। कृतार्थत्वात्। लोकवत्। यथा लोका अमात्यादयो राज्ञोऽर्थं सम्पाद्य कृतार्थाः सन्तो न पुनः राजार्थं प्रवर्त्तन्ते तथैव प्रधानमित्यर्थः। विमुक्तमोक्षार्थं हि प्रधानप्रवृत्तिरित्युक्तम्। स च ज्ञानान्निष्पन्न इति भावः॥ ४३॥

ननु प्रधानस्य सृष्ट्युपरमो नास्ति। अज्ञानां संसारदर्शनात्। तथा च प्रधानसृष्ट्या मुक्तस्यापि पुनर्बन्ध स्यात् तत्राह।

नान्योपसर्पणेऽपि मुक्तोपभोगो निमित्ताभावात् ॥ ४४ ॥

कार्य्यकारणमज्ञातादिसृष्ट्यान्यान् प्रति प्रधानस्योपसर्पणेऽपि न मुक्तस्योपभोगो भवति। निमित्ताभावात्। उपभोगे निमित्तानां स्वोपाधिसंयोगविशेषतत्कारणाविवेकादीनामभावादित्यर्थः। इदमेव हि मुक्तं प्रति प्रधानसृष्ट्युपरमो यत् तद्भोगहेतोः स्वोपाधिपरिणामविशेषस्य जन्माख्यस्यानुत्पादनमिति॥ ४४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नन्वियं व्यवस्था तदा घटेत यदि पुरुषबहुत्वं स्यात् तदेव त्वात्माद्वैतश्रुतिबाधितमित्याशङ्क्याह ।

पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः ॥ ४५ ॥

ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्तीत्यादिश्रुत्युक्तः बन्धमोक्षव्यवस्थात एव पुरुषबहुत्वं सिध्यतीत्यर्थः ॥ ४५ ॥

नन्पाधिभेदाद्बन्धमोक्षव्यवस्था स्यात् तत्राह ।

उपाधिश्चेत् तत्सिद्धौ पुनर्द्वैतम् ॥४६॥

उपाधिश्चेत् स्वीक्रियते तर्ह्युपाधिसिद्धैव पुनरद्वैतभङ्ग इत्यर्थः वस्तुतस्तूपाधिभेदेऽपि व्यवस्था न सम्भवतीति प्रथमाध्याय एव प्रपञ्चितम् ॥ ४६ ॥

ननूपाधयोऽप्याविद्यका इति न तैरद्वैतभङ्ग इत्याशङ्कायामाह ।

द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोधः ॥ ४७ ॥

पुरुषोऽविद्येति द्वाभ्यामप्यङ्गीकृताभ्यामद्वैतप्रमाणस्य श्रुतेर्विरोधस्तदवस्थ एवेत्यर्थः ॥ ४७ ॥

अपरमपि दूषणद्वयमाह ।

द्वाभ्यामप्यविरोधान्न पूर्वमुत्तरं च साधकाभावात् ॥ ४८ ॥

द्वाभ्यामप्यङ्गीकृताभ्यां हेतुभ्यां पूर्वं पूर्वपक्षो भवतां न घटते । अस्माभिरपि प्रकृतिः पुरुषश्चेति द्वयोरेवाङ्गीकारात् । विकारस्यानित्यतया वाचारम्भणमात्रताया अस्माभिरपीष्टत्वात् । ननु पुरुषनानात्वस्वीकारात् प्रकृतेर्नित्यत्वस्वीकारा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्यैवास्याद्वैविरोध इत्याशङ्क्य दूषणान्तरमाह। उत्तरं चेत्यादिना। अद्वैतवादिनामुत्तरं सिद्धान्तश्च न घटते। आत्मसाधकप्रमाणस्याभावात्। तदङ्गीकारे च तेनैवाद्वैतहानिरिति जितं नैरात्म्यवादिभिरित्यर्थः॥ ४८॥

ननु स्वप्रकाशत आत्मा सेत्स्यति तत्राह।

प्रकाशतस्तत्सिद्धौ कर्मकर्तृविरोधः॥४९॥

चैतन्यरूपप्रकाशतश्चैतन्यसिद्धौ कर्मकर्तृविरोध इत्यर्थः। प्रकाश्यप्रकाशसम्बन्धे हि प्रकाशनमालोकादिषु दृष्टं स्वस्य साक्षात् स्वस्मिन् सम्बन्धश्च विरुद्ध इति। अस्मन्मते तु बुद्धिवृत्त्याख्यप्रमाणाङ्गीकारात् तद्द्वारा प्रतिबिम्बरूपस्य स्वस्य बिम्बरूपे स्वस्मिन् सम्बन्धो घटते। यथा सूर्य्ये जलद्वारा प्रतिबिम्बरूपस्वसम्बन्ध इति भावः। आत्मनः स्वप्रकाशत्वश्रुतिस्त्वनन्योपाधिकप्रकाशादिपरा बोध्या॥ ४९॥

ननु नास्ति कर्मकर्तृविरोधः स्वनिष्ठप्रकाशधर्मद्वारा स्वस्य स्वसम्बन्धसम्भवात्। यथा वैशेषिकाणां स्वनिष्ठज्ञानद्वारा स्वस्य स्वयं विषय इति तत्राह।

जड़व्यावृत्तो जड़ं प्रकाशयति चिद्रूपः॥५०॥

चेतने प्रकाशरूपधर्मः सूर्य्यादिष्विव नास्ति किन्तु चित्स्वरूप एव पदार्थो जड़ं प्रकाशयति। यतो जड़व्यावृत्तिमात्रेण चिदित्युच्यते न तु जड़विलक्षणधर्मवत्तयेत्यर्थः। अत एव निर्धर्मतया स एष नेति नेतीत्येव श्रुत्योपदिश्यते न तु विधिमुखतयेति। तथा च स्मृतिरपि।

इदं तदिति निर्देष्टुं गुरुणापि न शक्यते।

इति। जड़व्यावृत्ताविति पाठेऽपि हेतौ सप्तम्यायमेवार्थः। अस्मिंश्च सूत्रे जड़मेव प्रकाशयति चिद्रूपो नत्वात्मानमिति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नार्थः। तथा सति हि तस्याश्रयत्वेन साधकाभावरूपं बाधकं परैरुपन्यासानर्हम्। स्वस्यापि तुल्यन्यायत्वादिति॥५०॥

नन्वेवं प्रमाणाद्यनुरोधेन द्वैतसिद्धावद्वैतश्रुतेः का गतिस्तत्राह।

न श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धेः॥ ५१॥

अद्वैतश्रुतिविरोधस्तु नास्ति रागिणां पुरुषातिरिक्ते वैराग्यायैव श्रुतिभिरद्वैतसाधनात्। पुरुषज्ञान इव द्वैताभावज्ञाने स्वतन्त्रफलान्तराश्रवणात्। तच्च वैराग्यं सदद्वैतेनैवोपपद्यते सत्त्वं च कूटस्थत्वमित्यर्थः। अत एव श्रुतिरपि सदद्वैतमेव छान्दोग्ये प्रतिपादितवतीति भावः॥ ५१॥

न केवलमुक्तयुक्त्या वाद्वैतवादिनो हेया अपितु जगदसत्यताग्राहकप्रमाणाभावेनापीत्याह।

जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वाद्बाधकाभावात्॥ ५२॥

निद्रादिदोषदुष्टान्तःकरणादिजन्यत्वेन स्वाप्नविषयशङ्खपीतिमादीनामसत्यत्वं लोके दृष्टं तच्च महदादिप्रपञ्चे नास्ति। तत्कारणस्य प्रकृतेर्हिरण्यगर्भबुद्धेश्चादुष्टत्वात्। यथापूर्वमकल्पयदित्यादिश्रवणात्। ननु नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादिश्रुत्या बाधितत्वेनाविद्यादिनाम्ना कश्चनानादिर्दोषः कल्पनीयस्तत्राह। बाधकाभावादिति। अयं भावः। नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादिश्रुतयो याः परैः प्रपञ्चबाधकतयाभिप्रेयन्ते ताः प्रकरणानुसारेण विभागादिप्रतिषेधिका एव न तु प्रपञ्चात्यन्ततुच्छतापराः। स्वस्यापि बाधापत्त्या स्वार्थासाधकत्वप्रस-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ङ्गात्। न हि स्वप्नकालीनशब्दस्य बाधे तज्ज्ञापितोऽप्यर्थः पुनर्न सन्दिह्यत इति। तस्मादात्मविघातकतया श्रुतयो न प्रपञ्चस्यात्यन्तबाधपरा इति। तत्र नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादिश्रुतेर्ब्रह्मविभक्तं किमपि नास्तीत्यर्थः। सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वं इत्यादिस्मृत्येकवाक्यत्वात्। वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यादिश्रुतेस्तु नित्यतारूपपारमार्थिकसत्ताविरहोऽर्थः अन्यथा मृत्तिकादृष्टान्तासिद्धेः न हि लोके मृत्तिकाविकाराणामत्यन्ततुच्छत्वं सिद्धं येन दृष्टान्तता स्यादिति।

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

इत्यादिश्रुतेस्त्वात्मातिरिक्तस्य कूटस्थनित्यतारूपातिपरमार्थसत्ताविरहोऽर्थः। किञ्चात्मनो निरोधाद्यभावोऽर्थः। अन्यथैतादृशज्ञानस्य मोक्षफलकत्वप्रतिपादनविरोधात्। न हि मोक्षो मिथ्येति प्रतिपाद्य मोक्षस्य फलत्वमप्रमत्तः प्रतिपादयतीति। याश्चात्मैक्यश्रुतयस्तास्तु प्रथमाध्याय एव व्याख्याताः। ब्रह्ममीमांसाभाष्ये चैता अन्याश्च श्रुतयोऽस्माभिर्व्याख्याता इति दिक्॥ ५२॥

न केवलं वर्त्तमानदशायामेव प्रपञ्चः सन्नपितु सदैवेत्याह।

प्रकारान्तरासम्भवात् सदुत्पत्तिः ॥५३॥

पूर्वोक्तयुक्तिभिरसदुत्पादासम्भवात् सूक्ष्मरूपेण सदेवोत्पद्यतेऽभिव्यक्तं भवतीत्यर्थः॥ ५३॥

कर्त्तृत्वभोक्तृत्वयोर्वैयधिकरण्येऽपि व्यवस्थामुपपादयति सूत्राभ्याम्।

अहङ्कारः कर्ता न पुरुषः॥ ५४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभिमानवृत्तिकमन्तःकरणमहङ्कारः स एव कृतिमान्। अभिमानोत्तरमेव प्रायशः प्रवृत्तिदर्शनात्। न तु पुरुषोऽपरिणामित्वादित्यर्थः। पूर्वं च धर्मादिकं बुद्धेरिति यदुक्तं तदेकस्यैवान्तःकरणस्य वृत्तिमात्रभेदाशयेन ॥ ५४ ॥

चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात् ॥५५॥

अहङ्कारस्य कर्तृत्वेऽपि भोगश्चित्येव पर्यवसन्नो भवति। अहङ्कारस्य संहतत्वेन परार्थत्वात्। नन्वेवमन्यनिष्ठकर्मणान्यस्य भोगे पुरुषविशेषनियमो न स्यात् तत्राह। तत्कर्मार्जितत्वादिति। अहङ्कारेणार्जितं तस्याश्चितौ यत् कर्म तज्जन्यत्वाद्भोगस्येत्यर्थः। तथा च योऽहङ्कारो यं पुरुषमादायाचेतनेऽहं ममेति वृत्तिं करोति तस्याहङ्कारस्य कर्म तस्यात्मन उच्यते। तेनैव च कर्मणा तत्रात्मनि भोगोऽर्ज्यत इति नातिप्रसङ्ग इत्याशयः ॥ ५५ ॥

ब्रह्मलोकान्तगतिभिर्नास्ति निष्कृतिरिति पूर्वोक्ते कारणं दर्शयति।

चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्तिर्निमित्तसद्भावात् ॥५६॥

निमित्तमविवेककर्मादिकम्। सुगममन्यत् ॥ ५६ ॥

ननु तत्तल्लोकवासिजनोपदेशादनावृत्तिः स्यात् तत्राह।

लोकस्य नोपदेशात् सिद्धिः पूर्ववत् ॥५७॥

यथा पूर्वस्य मनुष्यलोकस्योपदेशमात्रान्न सिद्धिर्ज्ञाननिष्पत्तिरेवं तत्तल्लोकस्थलोकस्योपदेशमात्रात् तद्गतानां ज्ञाननिष्पत्तिर्न नियमेन भवतीत्यर्थः ॥ ५७ ॥

नन्वेवं ब्रह्मलोकादनावृत्तिरिति श्रुतेः का गतिस्तत्राह।

पारम्पर्य्येण तत्सिद्धौ विमुक्तिश्रुतिः ॥५८॥

ब्रह्मलोकादिगतानां श्रवणमननादिपरम्परया प्रायशो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्ञानसिद्धौ सत्यां विमुक्तिश्रवणम्। न तु साक्षाद्गतिमा-त्रेणेत्यर्थः। प्रायिकत्वादन्यलोकाद्विशेष इति॥ ५८॥

परिपूर्णत्वेऽप्यात्मनो गतिश्रुतिमुपपादयति।

गतिश्रुतेश्च व्यापकत्वेऽप्युपाधियोगाद्भोगदे-शकाललाभो व्योमवत्॥ ५९॥

व्यापकत्वेऽप्यात्मनो गतिश्रवणानुरोधेन भोगदेशस्य काल-वशाल्लाभः सिध्यति। व्योमवदुपाधियोगेनेत्यर्थः। यथा ह्याका-शस्य पूर्णत्वेऽपि देशविशेषगतिर्घटाद्युपाधियोगाद्व्यवह्रियते तथैवेति। तथा च श्रुतिः।

घटसंवृतमाकाशं नीयमाने घटे यथा।
घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः॥

इति॥ ५९॥

भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगायतननिर्माणमिति यदुक्तं तत् प्रपञ्च-यति सूत्राभ्याम्।

अनधिष्ठितस्य पूतिभावप्रसङ्गान्न तत्सिद्धिः॥ ६०॥

भोक्त्रनधिष्ठितस्य शुक्रादेः पूतिभावप्रसङ्गान्न पूर्वोक्त-भोगायतन सिद्धिरित्यर्थः॥ ६०॥

नन्वधिष्ठानं विनैवादृष्टद्वारा भोक्तृभ्यो भोगायतननिर्माणं भवतु तत्राह।

अदृष्टद्वारा चेदसम्बद्धस्य तदसम्भवाज्जला-दिवदङ्कुरे॥ ६१॥

शुक्रादौ साक्षादसम्बद्धस्यादृष्टस्य शरीरादिनिर्माणे भोक्तृ-द्वारत्वासम्भवाद्बीजासम्बद्धानां जलादीनामङ्कुरोत्पत्तौ कर्ष-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कादिद्वारत्ववदित्यर्थः । अतः स्वाश्रयसंयोगसम्बन्धेनैवादृष्ट-सम्बन्धः शुक्रादिषु वक्तव्यः। तथा च सिद्धमदृष्टवदात्मसंयोग-रूपेणाधिष्ठानस्य भोगोपकरणनिर्माणहेतुत्वमिति भावः ॥६१॥

वैशेषिकादिनयेनादृष्टस्य सम्बन्धघटकतयात्मनोऽधिष्ठा-तृत्वं स्थापितं स्वसिद्धान्ते त्वदृष्टादीनामात्मधर्मत्वाभावात् तद्द्वारा भोक्तुर्हेतुत्वमेव न सम्भवतीत्याह ।

निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहङ्कारधर्मा ह्येते ॥ ६२ ॥

भोक्तुर्निर्गुणत्वेनादृष्टासम्भवाच्च नादृष्टद्वारकत्वम् । हि यस्मा-देतेऽदृष्टादयोऽहङ्कारस्यान्तःकरणसामान्यस्यैव धर्मा इत्यर्थः । तथा चास्मन्मते द्वारनैरपेक्ष्येण संयोगमात्रेण साक्षादेव भोक्तु-रधिष्ठानं सिध्यतीति भावः ॥ ६२ ॥

ननु चेत् पुरुषो व्यापकस्तर्हि

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥

इति श्रुतिप्रतिपादितं जीवपरिच्छिन्नत्वमनुपपन्नम् तथे-श्वरप्रतिषेधात् पुरुषाणां चैकरूप्याज्जीवात्मपरमात्मविभागो-ऽपि शास्त्रीयोऽनुपपन्न इति । तामिमामाशङ्कां परिहर्तुमाह

विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकात् ॥६३॥

जीवबलप्राणधारणयोरिति व्युत्पत्त्या जीवत्वं प्राणित्वं तच्चाहङ्कारविशिष्टपुरुषस्य धर्मो न तु केवलपुरुषस्य । कुतः । अन्वयव्यतिरेकात् । अहङ्कारवतामेव सामर्थ्यातिशयप्राणधा-रणयोर्दर्शनात् । तच्छून्यानां च चित्तवृत्तिनिरोधस्यैव दर्श-नात् । प्रवृत्तिहेतुरागोत्पादकस्याहङ्कारस्याभावादित्यर्थः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथा चान्तःकरणोपाधिकं जीवस्य परिच्छिन्नत्वं परमात्मा-ख्यात् केवलपुरुषाद्भिन्नत्वं चेति भावः। अनेन सूत्रेण विशि-ष्टस्य भोक्तृत्वं वा त्वमहम्प्रत्ययगोचरत्वं वा नोक्तम्। साक्षात्-काररूपस्य भोगस्याहङ्कारधर्मत्वाभावात्। त्वमहन्धर्मिपुर-स्कारेण विवेकानुपपत्तेश्च। किन्तु।

यदा त्वभेदविज्ञानं जीवात्मपरमात्मनोः।
भवेत् तदा मुनिश्रेष्ठाः पाशच्छेदो भविष्यति॥
आत्मानं द्विविधं प्राहुः परापरविभेदतः।
परस्तु निर्गुणः प्रोक्त अहङ्कारयुतोऽपरः॥

इत्यादिवाक्यशतोक्तो जीवात्मपरमात्मविभाग एव प्रद-र्शितः। तत्र जीवतायामहङ्कार उपलक्षणमेवेति॥ ६३॥

इदानीं महदहङ्कारयोः कार्य्यभेदं प्रतिपिपादयिषुरादाव-हङ्कारकार्य्यमाह।

अहङ्कारकर्त्रधीना कार्य्यसिद्धिर्नेश्वराधीना प्रमाणाभावात्॥ ६४॥

अहङ्काररूपो यः कर्त्ता तदधीनैव कार्य्यसिद्धिः सृष्टिसंहा-रनिष्पत्तिर्भवति। तादृशबलस्याहङ्कारकार्य्यत्वात्। अनह-ङ्कृतेषु तत्सामर्थ्यादर्शनात्। न तु वैशेषिकाद्युक्तानहङ्कृतपर-मेश्वराधीना। अनहङ्कृतस्रष्टृत्वे नित्येश्वरे च प्रमाणाभावा-दित्यर्थः। अहं बहु स्यां प्रजायेयेति ह्यहङ्कारपूर्विकैव सृष्टिः श्रूयते तत्राहंशब्दस्यानुकरणमात्रत्वे प्रमाणाभाव इति। अनेन सूत्रेणाहङ्कारोपाधिकं ब्रह्मरुद्रयोः सृष्टिसंहारकर्त्तृत्वं श्रुतिस्मृतिसिद्धमपि प्रतिपादितम्॥ ६४॥

ननु भवत्वहङ्कारोऽन्येषां कर्त्ताहङ्कारस्य तु कः कर्त्ता तत्राह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अदृष्टोद्भूतिवत् समानत्वम् ॥ ६५ ॥

यथा सर्गादिषु प्रकृतिक्षोभककर्माभिव्यक्तिः कालविशेषमात्राद्भवति तदुद्बोधककर्मान्तरस्य कल्पनेऽनवस्थाप्रसङ्गात् तथैवाहङ्कारः कालमात्रनिमित्तादेव जायते न तु तस्यापि कर्त्रन्तरमस्तीति समानत्वमावयोरित्यर्थः ॥ ६५ ॥

महतोऽन्यत् ॥ ६६ ॥

अहङ्कारकार्य्यात् सृष्ट्यादेर्यदन्यत् पालनादिकं तन्महत्तत्त्वाद्भवति। विशुद्धसत्त्वतयाभिमानरागाद्यभावेन परानुग्रहमात्रप्रयोजनकत्वादित्यर्थः। अनेन च सूत्रेण महत्तत्त्वोपाधिकं विष्णोः पालकत्वमुपपादितम्। महत्तत्त्वोपाधिकत्वात् तु विष्णुर्महान् परमेश्वरो ब्रह्मेति च गीयते तदुक्तम्।

यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम्।

इति। अत्र शास्त्रे कारणब्रह्म तु पुरुषसामान्यं निर्गुणमेवेष्यते। ईश्वरानभ्युपगमात्। तत्र च कारणशब्दः स्वशक्तिप्रकृत्युपाधिको वा निमित्तकारणतापरो वा पुरुषार्थस्य प्रकृतिप्रवर्त्तकत्वादिति मन्तव्यम् ॥ ६६ ॥

अविवेकनिमित्तकः प्रकृतिपुरुषयोर्भोग्यभोक्तृभाव इति प्रागुक्तम्। तत्राविवेक एव किन्निमित्तक इत्याकाङ्क्षायामविवेकधाराकल्पनेऽनवस्थापत्तिरित्याशङ्कायाः प्रामाणिकत्वेन परिहारः सर्ववादिसाधारण इत्याह।

कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिर्बीजाङ्कुरवत् ॥ ६७ ॥

येषां साङ्ख्यैकदेशिनां प्रकृतेः पुरुषस्य च स्वस्वामिभावो भोग्यभोक्तृभावः कर्मनिमित्तकस्तन्मतेऽपि स प्रवाहरूपेणाना-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिरेव। बीजाङ्कुरवत् प्रामाणिकत्वादित्यर्थः। आकस्मिकत्वे मुक्तस्यापि पुनर्भोगापत्तेरिति ॥ ६७ ॥

अविवेकनिमित्तकत्वमतेऽप्येतदनादित्वं समानमित्याह।

अविवेकनिमित्तो वा पञ्चशिखः ॥ ६८ ॥

अविवेकनिमित्तो वा स्वस्वामिभाव इति पञ्चशिख आह। तन्मतेऽप्यनादिरित्यर्थः। एतदेव स्वमतं प्रागुक्तत्वात्। अविवेकश्च प्रलयेऽपि कर्मवदेवास्ति वासनारूपेणेति। विवेकप्रागभावोऽविवेक इति मते तु बीजाङ्कुरवदनादित्वं न घटते। अखण्डप्रागभावस्यैवाखिलभोगहेतुत्वादिति ॥ ६८ ॥

लिङ्गशरीरनिमित्तक इति सनन्दनाचार्य्यः ॥ ६९ ॥

सनन्दनाचार्य्यस्तु लिङ्गशरीरनिमित्तकः प्रकृतिपुरुषयोर्भोग्यभोक्तृभाव इत्याह। लिङ्गशरीरद्वारैव भोगादिति। तन्मतेऽप्यनादिः स इत्यर्थः। यद्यपि प्रलये लिङ्गशरीरं नास्ति तथापि तत्कारणमविवेककर्मादिकं पूर्वसर्गीयलिङ्गशरीरजन्यमस्ति तद्द्वारा बीजाङ्कुरतुल्यत्वं स्वस्वामिभावलिङ्गशरीरयोरित्याशयः ॥ ६९ ॥

शास्त्रवाक्यार्थमुपसंहरति।

यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ॥ ७० ॥

कर्मनिमित्तो वाविवेकादिनिमित्तो वा भवतु प्रकृतिपुरुषयोर्भोग्यभोक्तृभावः सर्वथाप्यनादितया दुरुच्छेद्यस्य तस्यो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

च्छेदः परमपुरुषार्थ इत्यर्थः। तदेतदादौ प्रतिज्ञातं त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थ इति। नन्वत्र सुखदुःखसाधारणभोगनिवृत्तिः पुरुषार्थ उच्यते तत्र दुःखमात्रनिवृत्तिरिति कथं तत्रोक्तस्यात्रोपसंहार इति चेन्न। शब्दभेदेऽप्यर्थाभेदात्। सुखं हि तावद्दुःखपक्षे निक्षिप्तमिति सुखभोगोऽपि दुःखभोग एव दुःखभोगोऽपि प्रतिबिम्बरूपेण पुरुषे दुःखसम्बन्ध एव स्वतो नित्यनिर्दुःखत्वेन च प्रथमसूत्रेऽपि प्रतिबिम्बरूपेणैव दुःखनिवृत्तिर्विवक्षितेत्येक एवार्थ उपक्रमोपसंहारसूत्रयोरिति। बहुलांशस्य द्विरावृत्तिः शास्त्रसमाप्त्यर्था ॥ ७० ॥

शास्त्रमुख्यार्थविस्तारस्तन्त्राख्येऽनुक्तपूरणैः।
षष्ठाध्याये कृतः पश्चाद्वाक्यार्थस्योपसंहृतः ॥

तदिदं सांख्यशास्त्रं कपिलमूर्त्तिर्भगवान् विष्णुरखिललोकहिताय प्रकाशितवान् यत् तत्र वेदान्तिब्रुवः कश्चिदाह।
सांख्यप्रणेता कपिलो न विष्णुः। किन्त्वग्न्यवतारः कपिलान्तरम्।

अग्निः स कपिलो नाम सांख्यशास्त्रप्रवर्त्तकः।
इति स्मृतेरिति। तल्लोकव्यामोहनमात्रम्।
एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन् मुमुक्षूणां दुराशयात्।
प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शनम् ॥

इत्यादिस्मृतिषु विष्ण्ववतारस्य देवहूतिपुत्रस्यैव सांख्योपदेष्टृत्वावगमात्। कपिलद्वयकल्पनागौरवाच्च। तत्र चाग्निशब्दोऽन्याख्यशक्त्यावेशादेव प्रयुक्तः। यथा

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः।

इति श्रीकृष्णवाक्यकालशक्त्यावेशादेव कालशब्दः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्यथा विश्वरूपप्रदर्शकशास्त्रस्यापि विषयवतारकत्वाद्भेदा-पत्तेरिति दिक्।

सांख्यकुल्याः समापूर्य्य वेदान्तमथितामृतैः।
कपिलर्षिर्ज्ञानयज्ञे ऋषीनापाययत् पुरा॥
तद्वचःश्रद्धया तस्मिन् गुरौ च स्थिरभावतः।
तत्प्रसादलवेनेदं तच्छास्त्रं विवृतं मया॥

इति श्रीविज्ञानभिक्षुविरचिते कापिलसांख्यप्रवचनस्य भाष्ये तन्त्राध्यायः षष्ठः॥

इति सांख्यप्रवचनभाष्यं समाप्तम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only